शिव तत्व बोध



ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

शिव तत्त्व बोध

–ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

संकलिता
दिव्य भारती परिव्राजिका

सम्पादिका
ब्रह्मऋता परिव्राजिका

दिव्यालोक प्रकाशन
विराट् नगर, पिन्जौर (हरियाणा)

प्रकाशक
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट् नगर, पिन्जौर
फोन : ०१७३३–६५१७०

संस्करण – द्वितीय

आवरण पृष्ठ
जे. मार्टिन

मूल्य 125/-

प्रतिया – ११००

शब्द संयोजक :
गोयल कम्पयूटर सैन्टर,
नज़दीक बस स्टैन्ड, पिन्जौर

मुद्रक : द प्रैस
नवीन शाहदरा, दिल्ली – ३२

पाठकों से

'शिव तत्त्व बोध' दिव्यालोक प्रकाशन का यह पुष्प अपने पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। ये प्रवचन परम पूज्य गुरुदेव ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा जी महाराज ने 1982 में अपने हालैण्ड-प्रवास काल में 11 फरवरी से 22 फरवरी तक दिए। रोटर्डम के शिव मन्दिर में शिवरात्रि के उपलक्ष्य में भैया हरिनारायण द्वारा शिवपुराण यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें सैंकड़ों लोगों ने परम पूज्य आचार्यश्री के श्रीचरणों में बैठकर वैदिक सनातन धर्म के निगूढतम सिद्धान्तों को शिवपुराण के माध्यम से श्रवण किया।

बहुत वर्षों तक इस प्रवचन माला के गम्भीर विषय़ों को पाठकगण हमारी पत्रिका 'दिव्यालोक' के माध्यम से पढ़ते रहे और हमें बहुत-से पत्र भी आए कि इसे ग्रन्थ रूप में अवश्य प्रकाशित कीजिए ताकि पुराणों के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्ति कि ये केवल कहानियाँ मात्र हैं, उसका निराकरण हो सके और शिव कौन हैं तथा 'शिव तत्त्व' का वास्तविक बोध भी लोगों को हो। कार्य बड़ा दुरूह था। पूज्या दीदी दिव्यभारती जी ने इन प्रवचनों का संकलन किया और फिर यह प्रति मेरे पास प्रकाशनार्थ आई। चाहते हुए भी हम इसे शीघ्र प्रकाशित न कर सके। गत वर्ष रोटर्डम से हमारे ब्रह्मर्षि मिशन, हालैण्ड की सैक्रेटरी प्रिय देवप्रिया भारत आई और उसने पुनः अनुरोध किया कि आप इन प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कीजिए, उसकी अर्थ-व्यवस्था मैं करूँगी। उसके सहयोग के परिणामस्वरूप ग्रन्थ को प्रकाशित करने का कार्य प्रारम्भ हो गया और साम्ब सदाशिव की अनुकम्पा से ही इसे पूर्ण कर आपको भेंट कर रही हूँ। प्रभु से प्रार्थना है कि वह प्रिय देवप्रिया को और शक्ति एवं सामर्थ्य दें जिससे इसी प्रकार से वह लोकहितकारी कार्यों में अपने धन को समर्पित करके सार्थक कर सके।

इस ग्रन्थ की प्रवचन शैली इतनी सरल एवं रोचक थी कि इसका प्रथम अंक कुछ ही मास में समाप्त हो गया। अब इसे पुनः पढ़कर, जहाँ त्रुटियाँ रह गई थी, उन्हें ठीक कर पाठकों को समर्पित कर रही हूँ। विश्वास है जिज्ञासु साधक इससे लाभ उठायेंगे।

सबके प्रति मंगलकामनाएँ तथा परम पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में बार-बार नतमस्तक होते हुए सभी की शुभेच्छु—

ब्रह्मऋता परिव्राजिका

दो शब्द

करुणानिधान भगवान् साम्ब सदाशिव के कृपा प्रसाद स्वरूप १६८२ में ११ फरवरी से २२ फरवरी तक हालैण्ड के शहर रोटर्डम में स्थित शिवमंदिर में मेरे प्रिय शिष्य हरिनारायण द्वारा द्वादश दिवसीय शिवपुराण महायज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें प्रातःकाल शिवपुराण के मूल श्लोकों का तत्त्व विज्ञान की दृष्टि से विवेचन किया जाता रहा। मूल रूप से समग्र शिवपुराण पढ़ने का यह मेरा प्रथम सुअवसर था और उसके अध्ययन से भगवान् वेदव्यास द्वारा घोषित यह वाक्य कि "इतिहास और पुराणों के माध्यम से वेदार्थ का ही उपबृहण किया गया है" अक्षरशः सत्य अनुभव हुआ। यथार्थतः अष्टादश पुराणों में रहस्यात्मक रूप से वेदार्थ का ही उपबृहण हुआ है। विशेष करके शिवपुराण में शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद संहिता के बहुत से निगूढ़ प्रतिपाद्य विषयों को इतने स्पष्ट रूप से समझाया गया है जिसको पढ़ कर पाठक आश्चर्य-चकित रह जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि जहाँ पर पुराणों में वैदिक तत्त्व विज्ञान का विश्लेषण सरल रूप में पढ़ने को प्राप्त होता है वहीं पर वेद विरोधी तत्त्वों द्वारा कुछ ऐसे भी अनर्गल प्रसंग उसमें डाल दिए गए हैं जिनको पढ़ कर बहुत ही खेद होता है। मेरी राय है कि आस्थावन् विद्वानों को चाहिए कि वे इन ग्रन्थों में जो कुछ अप्रासांगिक और अनावश्यक बातें लिख दी गई हैं, उन्हें निकाल कर इन ग्रन्थों का संशोधित संस्करण जनसामान्य के लिए उपलब्ध करायें। ये पुराण हमारी संस्कृति, सभ्यता, दर्शन और धर्म के ही आधार नहीं, हमारे अतीत की गौरवपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धियों के भी स्रोत हैं। हमारे सम्पूर्ण आहार–व्यवहार, आचार–विचार तथा इनके अनुष्ठान से प्राप्त होने वाले परम पुनीत संस्कारों के भी ये ज्ञान कोष हैं। शिवपुराण में वर्णित अनेकों दार्शनिक विषयों का संक्षेप में उदघाटन किया गया है तथा प्रसंगानुसार और भी बहुत सी बातें जो जनसामान्य के लिए हितकर हैं, वे भी प्रवचन में कही गई हैं। उन द्वादश दिनों में जो भी व्याख्या की गई, उसे टेप कर लिया गया था। उन टेपों की संपूर्ण सामग्री को मेरी प्रिय शिष्या दिव्य भारती ने बड़े ही परिश्रम से उतार कर संकलित किया और उसे दिव्यालोक में प्रकाशनार्थ देती रही। पाठकों की चाह हुई कि इस शिवपुराण की व्याख्या को पुस्तक रूप में प्रकाशित कर जन सामान्य तक पहुँचाया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अर्थ की व्यवस्था मेरी प्रिय शिष्या हालैण्ड निवासी देवप्रिया ने की। सम्पूर्ण लिखित सामग्री को मेरी प्रिय शिष्या ब्रह्मऋता ने बड़े परिश्रम

के साथ सुव्यवस्थित कर "शिव तत्त्व बोध" नाम से प्रकाशित किया है। मुझे विश्वास है इस पुस्तक के द्वारा सुधी पाठकों को शैव सिद्धान्त के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातें जानने और समझने को मिलेंगी।

अंत में मैं अपने हालैण्ड निवासी प्रिय शिष्य हरिनारायण एवं उनकी धर्मपत्नी को जिन्होंने इस १२ दिवसीय शिवपुराण यज्ञ का आयोजन किया था, बहुत–२ मंगलकामनाएं और आशीर्वाद देता हूँ। प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि इस पुस्तक की सामग्री की संकलिता मेरी प्रिय शिष्या दिव्य भारती तथा इसकी सम्पादिका और प्रकाशिका मेरी प्रिय शिष्या ब्रह्मऋता को वह अपनी करुणा से अधिक से अधिक योग्यता और सामर्थ्य प्रदान करें जिससे वे इसी प्रकार से लोक हितकारी सद् साहित्य के सृजन में निरत रह्ते हुए स्वयं के जीवन को सार्थक बना सकें।

२०/१०/६७

सभी का हितेच्छु

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा



ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा



DevPriya
Secretary International Brahmrishi Mission
Holland

११/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

भगवान् भूतभावन भूतेश्वर के परम पावन चरणारविंद में नतमस्तक होते हुए हम आप सभी उनकी कृपा के पात्र बनें और उनकी अनन्त महिमा का श्रवण करते हुए हम उनके यथार्थ स्वरूप को जानें, इस शिवपुराण महायज्ञ का यही प्रयोजन है। हमारे यहाँ हिन्दू सनातन धर्म में वेद के समान ही पुराण का स्थान है। कुछ अबोध, अज्ञानी ऐसा समझते हैं कि पुराण बहुत नवीन निकट की रचना है। इसमें मनमानी ढंग से पण्डितों ने अपनी पूजा वा तृप्ति के लिए कुछ बातें लिखकर पुराण रूप में प्रचलित की हैं। जिन्होंने वेद का अध्ययन, मनन एवं चिंतन किया है, जो वेद के विद्वान् हैं, उन्हें मालूम है कि अथर्ववेद में वेद की गणना के साथ पुराणों की भी गणना आती है और ब्राह्मण ग्रन्थों में "इतिहास पुराणाभ्याम्" कह करके पुराण और इतिहास का विवेचन मिलता है। इतना ही नहीं बल्कि विद्वानों की यह राय है कि वेदार्थ को प्रकाशित करने के लिए जितना प्राचीनतम वेद है उतना ही प्राचीनतम पुराण है।

शिवपुराण के प्रारम्भ में ही यह बात बताई गई है कि यह महापुराण सृष्टि के आदि कर्त्ता ब्रह्मा ने सर्वप्रथम तत्त्व विज्ञान का बोध करवाने के लिए ऋषियों को दिया। इसी प्रसंग में एक और बात बताई गई है कि भगवान् महेश्वर ने शत् कोटि लक्ष श्लोक का महाशिवपुराण निर्मित करके देवताओं ओर मनुष्यों में वितरण किया। उसमें से एक लक्ष श्लोकों से युक्त शिवपुराण इस पृथ्वी पर प्रचलित था। द्वापर के अन्त में भगवान् वेदव्यास ने एक लक्ष वाले शिवपुराण को सार रूप में २४ हज़ार श्लोकों में आबद्ध करके साधारण जनता के लिए उपलब्ध करवाया। वर्तमान में जो शिवपुराण प्रचलित है, उसके २४ हज़ार श्लोकों में परमात्मा की पाँच प्रकार की लीलाओं का वर्णन है। वे लीलाएं हैं–सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव

और अनुग्रह।

सृष्टि क्या है? आप लोग अच्छी प्रकार से जानते हैं, उसकी व्याख्या करने की ज़रूरत नहीं। महत्तत्त्व से लेकर कीट पर्यन्त जो क्रम चलता है, उसको सृष्टि कहते हैं। इस सृष्टि के दो भेद हैं–सर्ग और विसर्ग। सर्ग सृष्टि वह है जिसमें प्राकृतिक विकास होता है। पहले अव्यक्त प्रकृति महत्तत्त्व रूप में प्रकट होती है, उस महत्तत्त्व में बोध का उदय होता है, बोध में अहं वृत्ति का जागरण होता है, उस अहं वृत्ति से संकल्प का उदय होता है जिसको मन कहते हैं। विराट् पुरुष के संकल्प द्वारा पंच गुणात्मक और पंच ज्ञानात्मक, ये दस प्रकार की इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं जिनको आप लोग ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं। उन ज्ञान और कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध प्रकट होते हैं और इन्हीं पाँच विषयों से स्थूल रूप में शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल और गंध से पृथ्वी का आविर्भाव होता है। ये पँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पँच कर्मेन्द्रियाँ, पँच विषय और एक मन, ये १६ तत्त्व अहंकार की सन्तान हैं। पँच विषयों से पँच महाभूत उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार से १६+५=२१, अहंकार स्वयं २२, बुद्धि २३ और महत्तत्त्व २४, ये प्रकृति के २४ रूप हैं। इन २४ रूपों को सर्ग कहते हैं।

सर्ग के पश्चात् प्रारम्भ होता है विसर्ग। सर्ग का अभिप्राय है कि जब यह सारा दृश्य तैयार हो जाता है तो इसमें जैवी सृष्टि का विकास होता है। जैवी सृष्टि का अर्थ है जीव सृष्टि। उसमें सर्वप्रथम वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और बाद में औषधियाँ बनने लगती हैं। वनस्पतियों और औषधियों के संयोग के पश्चात् उनके मंथन से रस का आविर्भाव होता है जिसमें से जीव प्रकट होने लगता है। जीव का क्रमिक रूप से आविर्भाव होता है। जैसे–२ प्रकृति में विशुद्ध चित्त का निर्माण होता है वैसे–२ जीवों का विकास होता है। जैवी सृष्टि में पहले जड़ सृष्टि होती है जिसको मैंने वनस्पति एवं औषधि रूप में अभी आप लोगों को बताया। उसके बाद कृमि सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। आप लोगों ने देखा होगा, आप फल को रखिये उसमें जन्तु दिखाई नहीं देगा किन्तु जब वही फल थोड़े दिनों के बाद सड़ने लगता है तो उसमें आपको रेंगने वाला कीड़ा दिखाई देने लगेगा जो उसी तत्त्व से उत्पन्न हुआ है। उससे पूर्व भी वह उसी में

था कहीं बाहर से नहीं घुस गया। फल के अन्दर, अन्न के अन्दर वा किसी भी खाद्य पदार्थ के अन्दर जो कीड़ा पैदा हो जाता है, वह उसी पदार्थ से पैदा होता है इसलिए जड़ सृष्टि के बाद कृमि सृष्टि का क्रम आता है।

कृमि सृष्टि के पश्चात् फिर आपको एक और प्रकार की सृष्टि मिलेगी जिसके पंख होते हैं और वह उड़ने लगता है। उसी में एक दूसरे प्रकार की सृष्टि मिलेगी जो केवल रेंगते हैं, जिनके पाँव नहीं होते। ये दो प्रकार की सृष्टियाँ एक पाँव वाले और दूसरे बिना पाँव की मिलती हैं। जो बिना पाँव के हैं उन्हें सरीसृप कहते हैं, जो पांव वाले हैं उन्हें कृमि अर्थात् कीड़े–मकोड़े कहते हैं। इन दोनों के पश्चात् जो उड़ने वाले पक्षी हैं उनके आगे चल कर उड़ने वालों में ही जब और विकसित होते हैं तो उसी क्रम में स्तन पाई जीव पैदा होते हैं। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो उड़ते भी हैं और जिनके स्तन भी होता है और बच्चों को दूध भी पिलाते हैं। ऐसा पक्षियों में भी होता है, उनकी संज्ञा फिर आगे चलकर पशु हो जाती है और उन पशुओं से भी आगे सृष्टि जब इस योग्य होती है कि उन से भी उन्नत चेतन प्रकट हो तो उस अवस्था में मनुष्य की उत्पत्ति होती है। मनुष्य से पूर्व की आपको पाँच प्रकार की जो सृष्टि बताई है, यह भी उसी प्राकृतिक विकास विसर्ग में आते हैं। बाद में जब मानवीय सृष्टि होती है तो विसर्ग की पूर्ति हो जाती है। यही मानवीय सृष्टि तक विसर्ग है ऐसे समझ लें, मानवीय सृष्टि से परे कोई विसर्ग नहीं है। दैवी सृष्टि दिव्य है, वह इस क्रम में नहीं चलती। वह विशुद्ध और संकल्पात्मक सृष्टि होती है, इसलिए सर्ग और विसर्ग का जो क्रम है जैसे मैंने आपको बताया कि ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सर्ग और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि के संयोग से जो जीव पैदा होते हैं उनको विसर्ग कहते हैं। इस प्रकार सर्ग और विसर्ग सृष्टि के दो रूप हैं।

सृष्टि की स्थिति को पालन कहते हैं। यह परमात्मा का दूसरा काम है। परमात्मा का पहला काम सर्ग और विसर्ग दो रूपों में सृष्टि है, दूसरा काम उनकी स्थिति है और उनका पालन है जो परमात्मा की अनुकम्पा से उनकी कृपा से होता है। जब यह सृष्टि स्थिर रहती है तो इसमें जीव जीवित रहते हैं और विकास की दिशा में चलते हैं। आप लोग जानते हो कि प्रत्येक जीव विकास की दिशा

में चल रहा है। जो एक सैल का प्राणी अमीबा है वह बहुत सूक्ष्मतम जीव है; उससे और सूक्ष्म जीव की कल्पना नहीं हो सकती। वह भी विकास की दिशा में आगे जा रहा है।

यहाँ पर आप लोगों को एक बात और समझा दूँ कि विकासवाद को पश्चिम के वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। डार्विन ने विकासवाद की थियूरी दी है किन्तु यहाँ पर मैं इसलिए आप लोगों को सावधान कर रहा हूँ कि वैदिक विकासवाद और डार्विन के विकासवाद में अन्तर है। वैदिक विकासवाद चित्त का विकास स्वीकार करता है और डार्विन का विकासवाद शरीर का विकास है, इन दोनों में महान् अन्तर है। दर्शन शास्त्र और वैदिक विज्ञान यह कहता है कि जीवन का स्रोत शरीर नहीं, चित्त है। जीवन शरीर से निर्मित नहीं होता, चित्त से निर्मित होता है। चित्त वहाँ कारण होता है शरीर नहीं, शरीर तो वहाँ माध्यम होता है। इसलिए वर्तमान में पश्चिम के लोगों ने डार्विन के विकासवाद को अस्वीकार कर दिया है, अब उसकी कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं है। वैदिक विकासवाद की प्रक्रिया को कोई चैलेंज नहीं कर सका क्योंकि वह अपने आप में अनुभूत है, सत्य है और नित्य है। मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि वैदिक विकास की प्रक्रिया में जैवी सृष्टि का जो विकास है, वह चित्त के स्तर पर है। मनुष्य तक जो सृष्टि है वह प्राकृतिक नियमानुसार विकसित होती है और प्रत्येक जीव अपनी अवस्था से आगे बढ़ता हुआ उसी स्थिति में जा रहा है जहाँ मनुष्यत्व की प्राप्ति हो। एक सैल का प्राणी अमीबा एक दिन मनुष्य कब बनेगा, इसके लिए कोई निश्चित तिथि नहीं बताई जा सकती लेकिन वह विकास के क्रम में है। उसके चित्त का विकास होता जाएगा और चित्त की एक ऐसी अवस्था आयेगी जब वह अनन्त सैल वाला मनुष्य बन कर तैयार हो जायेगा। यह जो विकास की प्रक्रिया है, यह जीव मात्र की है।

हमारे यहाँ दर्शन शास्त्र में बताया गया है कि सृष्टि का प्रयोजन ही जीव का कल्याण है किन्तु इससे भी ऊँची एक और फिलौस्फी है। योगदर्शन में बताया गया –

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः।

(यो॰ सू॰ २/२३)

जैवी सृष्टि अथवा सृष्टि जो सर्ग वा विसर्ग है, इसका प्रयोजन है। क्या प्रयोजन है? कहा, स्व और स्वामी की शक्ति का

बोध करवाना। प्रकृति स्वयं अपनी शक्ति वा स्वामी की शक्ति को प्रकट करने के लिए सृष्टि करती है। यदि सृष्टि न हो तो न ईश्वर का बोध हो और न ईश्वर की शक्ति का इसलिए "स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः" अपनी और अपने स्वामी की शक्ति को प्रकट करने के लिए वह महामाया उस ब्रह्म के साथ युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना करती है। ऋग्वेद में जो पुरुष सूक्त है, वह हमें बताता है–

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।

(पु॰ सू॰–३)

जो कुछ भी हम देख रहे हैं वह परमात्मा की महिमा मात्र है, परमेश्वर की महिमा को प्रकट करने के लिए यह सृष्टि है और इसका कोई प्रयोजन नहीं है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि महेश्वर के जो पाँच कार्य हैं इनमें एक सृष्टि है और दूसरा पालन। पालन भी महेश्वर की कृपा से होता है। उपनिषद् कहती है –

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।

(तैत्ति॰ ३/३–१)

जिससे सृष्टि प्रकट होती है, उसी से पलती है। प्रकट करने वाला कोई और तथा पालन करने वाला कोई और नहीं है। वही प्रकट करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही संवरण करने वाला है अर्थात् लय करने वाला भी वही है, प्रलय करने वाला भी वही है। आप कहेंगे नहीं, हमारे ग्रन्थों में लिखा है कि ब्रह्मा सृष्टि करता है, विष्णु पालन करता है और शिव संहार करता है। ये तीन नाम एक ही परमात्मा के तीन कार्यों के नाते पड़े–"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" ऋग्वेद की घोषणा है कि सत्य एक है, विद्वान् लोग, योगी लोग, ऋषि लोग, यति लोग अनेक नामों से उसे पुकारते हैं इसलिए परमात्मा एक है, तीन नहीं हैं बल्कि त्रिविध उसके कार्य हैं क्योंकि वह एक परमात्मा तीन गुणों के माध्यम से अपनी शक्ति को प्रकाशित करता है। सृष्टि का काम रजोगुण का कार्य है, सृष्टि की स्थिति अर्थात् पालन सतोगुण का कार्य और सृष्टि का लय तमोगुण का कार्य है। इसलिए जब वह परमात्म शक्ति रजोगुण से युक्त होती है तो उसको हम ब्रह्मा कहते हैं, वही शक्ति जब सतोगुण से युक्त होती है तो उसे हम विष्णु कहते हैं और वही शक्ति जब तमोगुण से

युक्त होती है तो उसे हम रुद्र कहते हैं इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र एक परमेश्वर के तीन नाम हैं। यह बात स्मरण रखो कि परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नहीं है। उस परमेश्वर की सृष्टि में अनन्त ब्रह्मा, अनन्त विष्णु एवं अनन्त रुद्र हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। इसीलिए कुछ लोगों को यह भ्रम होता है कि हमारे यहाँ जितने पुराण हैं उन पुराणों में अलग–२ भगवान् की महिमा गाई गई है। जैसे इस समय हम शिव पुराण की व्याख्या कर रहे हैं तो शिव पुराण में भगवान् शिव की महिमा है और देवी भागवत् में भगवती देवी की महिमा है, इसी प्रकार से जितने भिन्न–२ पुराण हैं, उन सबमें अलग–२ परमात्मा के नाम की महिमा है। परमात्मा यदि एक है तो अनेक रूपों में, अनेक नामों से उनकी महिमा क्यों गाई जाती है? वैदिक सिद्धान्त का रहस्य यही है जिसका प्रतिपादन पुराण कर रहे हैं।

परमात्मा की त्रिविध शक्ति जब भिन्न–२ गुणों के माध्यम से प्रकट होती है तो उनके भिन्न–२ नाम तो होते हैं किन्तु शक्तिमान एक ही होता है। वही शक्तिमान शिव पुराण में शिव, विष्णु पुराण में विष्णु, ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्म, श्रीमद्भागवत् में कृष्ण एवं वासुदेव नाम से, देवी भागवत् पुराण में दुर्गा, गणेश पुराण में गणेश, सूर्य पुराण में सूर्य और श्री रामचरितमानस में उसे ही राम कहा गया है यानी अनेक नामों से एक ही शक्तिमान का वर्णन मिलता है। इसलिए आप लोग यह मनन करते हुए कि परमेश्वर किस प्रकार से अनन्त रूपों में प्रकट होता है, किस प्रकार अनन्त महिमा का विस्तार करता है, इसका श्रवण करो और समझो। सनातन धर्म में कहीं भ्रम नहीं है, कहीं भेद नहीं है, कहीं अज्ञान के लिए स्थान नहीं है और न ही अंधविश्वास के लिए कोई गुंजाइश है। मैं आप लोगों को पहले भी कई बार बता चुका हूँ कि जिसको सनातन धर्म में कहीं भी अन्ध विश्वास दिखाई देता है, वह बड़े प्रेम से मेरे पास आकर समझ सकता है।

अब दूसरी बात आप लोग सुनिये। वही परमात्मा जो सृष्टि करता है, वही पालन करता है। श्रुति कहती है –

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

(तैत्ति॰ ३/३–१)

जिसके द्वारा वे जीवित रहते हैं, वह भी वही परमात्मा है

किन्तु पालन करने के समय उसी परमात्मा का नाम विष्णु हो जाता है क्योंकि बिना प्यार के पालन नहीं, बिना गति के निर्माण नहीं हो सकता। प्यार होता है सतोगुण में, जहाँ सतोगुण होगा वहीं प्रेम होगा और जहाँ पर रजोगुण होगा वहीं गति होगी। सतोगुण की प्रधानता में आपका हृदय प्रेम से भर जाता है। जैसे–२ सतोगुण की वृद्धि होती है वैसे–२ आपकी क्रिया समस्त समाज के लिए होने लगती है। अल्प सतोगुण में आप केवल अपने बच्चे की चिन्ता करेंगे और उसके पालन की चिन्ता करेंगे। वही सतोगुण थोड़ा बढ़ जाये तो आप केवल अपने बच्चे की चिन्ता नहीं करेंगे, जितने बच्चे देखेंगे आपको लगेगा ये तो मेरे ही बच्चे हैं। सब के लिए आपके जीवन में आत्मीयता का प्रकाश होगा और सारा विश्व आपको अपना दिखाई देने लगेगा। यह सारा विश्व मेरा है और मैं सारे विश्व का हूँ, यह सतोगुण की वृद्धि का परिणाम है। इसलिए जो सतोगुण स्वरूप उसका अधिपति भगवान् है, वह तो विश्व का कर्त्ता, धर्त्ता और भर्त्ता है।

एक बार की कथा है–महात्मा नारद भगवान् से कहने लगे, "हे प्रभो! इस सृष्टि के पालन का काम करते हुए आपको बहुत वर्ष हो गये, काम करते–२ आपको कभी एक दिन के लिये भी विश्राम नहीं मिला। अब मैं आपकी सृष्टि को अच्छी प्रकार से जान गया हूँ, जहाँ जितने जीव हैं सबका मुझे बोध है इसलिए एक दिन के लिये आप विश्राम करके यह काम मुझे दे दें।" भगवान् मुस्कुराये, उन्होंने कहा–नारद! यह काम बड़ा कठिन है, आपसे नहीं होगा। नारद ने कहा–नहीं, प्रभो! मेरे से क्यों नहीं होगा? मैं जरूर करूँगा। मेरे ऊपर दया करके एक दिन का भार मेरे ऊपर दे दो। भगवान् ने मुस्कुराते हुए एवमस्तु कह दिया। उस दिन पालन का कार्य महात्मा नारद के जिम्मे आया। नारद ध्यानस्थ होकर बैठ गये, सृष्टि के समस्त प्राणियों को देखने लगे, जो प्राणी जहाँ पर है उसके लिए तुरन्त आहार की व्यवस्था की। किन्तु उस सृष्टि में एक ऐसा व्यक्ति था जिसका नियम था कि प्रातःकाल उठकर भगवान् को गाली देना प्रारम्भ करना और सायंकाल जब तक नींद न आये तब तक गाली देते रहना। जब ध्यानावस्था में नारद की वृत्ति वहाँ पहुंची, उसको देखकर कहा–अरे, यह तो दुष्ट है, इसको दण्ड मिलना चाहिए, दण्ड के बदले में आज इसे आहार नहीं मिलेगा। अर्द्धरात्रि के समय

भगवान् ने नारद को याद किया तो वे तुरन्त पहुँच गये। भगवान् ने पूछा–क्यों भई नारद, समस्त प्राणियों को भोजन मिल गया, सबकी संभाल कर ली? नारद ने कहा–जी प्रभो! प्रभु ने कहा–नहीं, तुम ध्यान से देखो। प्रभो! वह दुष्ट जो प्रातः से सायंकाल तक आपको गालियाँ देता है, उसके आहार की व्यवस्था मैंने जान कर नहीं की। भगवान् ने कहा–नारद! उसकी पहले व्यवस्था करनी चाहिये थी। कारण क्या? भगवान् ने कहा, यह व्यवस्था केवल कर्त्तव्य की दृष्टि से नहीं है, इसके साथ एक और भाव जुड़ा हुआ है इसीलिए तो मैं तुम से कह रहा था कि यह काम तुम्हारे बस का नहीं। एक माँ अपने बच्चे को गोद में लेती है, बच्चा माँ को लात भी मारता है, दांत से भी काटता है, उसके बाल भी नोचने लगता है तो माँ उस समय क्या करे? बच्चे को उठाकर पटक दे? नारद कहते हैं, नहीं प्रभो! यदि पटक देगी तो माँ नहीं रहेगी। भगवान् कहते हैं यही तो मैं कह रहा था कि तुम विश्व के बन्धु तो बन सकते हो पर विश्व की माँ नहीं बन सकते।

मेरे कहने का अभिप्राय पुराण की इस कथा से बोध होता है कि पालन का कार्य जो भगवान् का है, वह उनकी शुद्ध सतोमयी वृत्ति का परिणाम है। वही परमात्मा सृष्टि का पालन करता है विष्णु के रूप में, सृष्टि का सृजन ब्रह्मा के रूप में और अन्त में वही परमात्मा सृष्टि का संवरण शिव के अथवा रुद्र के रूप में करता है। वेद में उसी परमात्मा को रुद्र कहा गया है। आप कहेंगे कि संहार अर्थात् किसी को मारना बहुत बड़ी क्रिया है, रुद्र तो मारने वाले देवता हैं। संहार शब्द का अर्थ होता है संवरण करना अर्थात् समेटना। लोग इसका गलत अर्थ लगाते हैं। संहार का अर्थ मारना नहीं अपितु समेटना होता है, विकसित वस्तु के समेटने को संहार कहते हैं। उसको संस्कृत में संवरण कहते हैं। इस संहार क्रिया से जीवों का हित होता है या अहित? कुछ लोगों से पूछो तो वे कहेंगे कि दुनिया को मारने वाला भी क्या हित कर सकता है? नहीं। मैं आपसे यह पूछता हूँ कि यदि आपके चित्त का संवरण न हो तो आप कितने दिन तक स्वस्थ रह सकते हैं? क्या बतायेंगे आप? चित्त का संवरण जानते हो किसे कहते हैं? प्रगाढ़ निद्रा चित्त की वृत्तियों का संवरण है। आपके चित्त की वृत्तियों का यदि संवरण न हो, वृत्तियां समेटी न जायें, वृत्तियां रातों–दिन काम करती रहें तो मेरी राय है

कि आप एक सप्ताह के अन्दर पागल अवश्य हो जायेंगे। यदि प्रगाढ़ निद्रा न आये तो क्या स्थिति हो? यही स्थिति होगी न? पागलपन की। आप लोगों को जो जीवनी शक्ति मिलती है, जो क्रिया शक्ति मिलती है, वह कब मिलती है? जब आपके चित्त की वृत्तियों का संवरण हो जाता है। यदि आपकी वृत्तियों का संवरण न हो तो आपमें क्रिया शक्ति नहीं आ सकती, यदि रात्रि को अच्छी नींद नहीं आई तो प्रातः उठकर अच्छे ढंग से काम नहीं करेंगे, प्रमाद में ग्रस्त हो थोड़े दिन के बाद आप रोगी हो जायेंगे। इसलिए प्रगाढ़ निद्रा आपके लिए अभिशाप है या वरदान, आप क्या कहेंगे? वरदान है अभिशाप नहीं है। वह आपके दुःख के लिए नहीं बल्कि सुख के लिए है इसलिए जो सुख का साधन आपको प्रदान करता है, आपको जो सुख के केन्द्र में सम्वरित करके ले जाता है, उसे शिव कहते हैं, वह कल्याण कर्ता है विनाश कर्ता नहीं। इसको समझो, यह सनातन धर्म का तत्त्व विज्ञान है। "शिवः कल्याण कर्त्ता च" ऐसा शिव शब्द का अर्थ किया गया है। अभी जैसे मैं यजुर्वेद का मन्त्र बोल रहा था—

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च।

(यजुर्वेद १६/४१)

इस मन्त्र में परमात्मा की सृष्टि, पालन एवं संवरण का वर्णन किया गया है। ये तीनों कार्य शिव करता है, वही शिव सृष्टि का आधार है। तीनों क्रियाएं उस शिव की कृपा से होती हैं लेकिन संवरण में पुनः शक्ति प्राप्त करने की क्षमता है इसीलिए उसे विशेष रूप से शिव शब्द से सम्बोधित किया जाता है। भगवान् जब क्षणिक प्रलय करता है, क्षणिक प्रलय का अर्थ है कुछ काल के लिए वा घण्टे दो घण्टे के लिए संवरण जब होता है, उसको आप मृत्यु नहीं कहते, उसको निद्रा कहले हैं। वही निद्रा जब दीर्घ काल के लिए हो जाती है तो उसे मृत्यु कह देते हैं। यह तीन अवस्थायें एक सी होती हैं। योगदर्शन में इन्हें समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति बताया है। इन तीनों में साम्यावस्था होती है। प्रगाढ़ निद्रा में आपके चित्त का संवरण हो जाता है, आपको अपना भी पता नहीं रहता।

गोस्वामी जी ने दोहावली में एक बात समझाई है। उन्होंने

कहा—पहले यह जीव जीव रूप में जाग्रत अवस्था में रहता है, जो चाहता है वह नहीं हो पाता, जो नहीं चाहता वह होता रहता है इसलिए दुःखी होता है। भगवान् उसे कहते हैं अच्छा भई, तू जीव बनकर सुखी नहीं रहा इसलिए अल्प समय के लिए ईश्वर बन जा और ईश्वर बन कर सुखी हो जा। वह ईश्वर बनकर क्या करता है? सृष्टि। ईश्वर का काम क्या है? प्रकाश करना, फैलाना, सृष्टि करना और निर्माण कर उसके साथ खेलना। स्वप्नावस्था में आप जो कुछ भी करते वा देखते हैं, वह कार्य किसका होता है? भगवान् का? नहीं, बिल्कुल नहीं। स्वप्न में आप व्यक्ति, मकान, वस्तु, अपना शरीर, घर आदि जो कुछ भी दृश्य देखते हैं, इसमें से कोई भी भगवान् की सृष्टि नहीं, सब अपनी सृष्टि, आपके मन की, संकल्प की सृष्टि होती है। स्वप्नावस्था में जिस मित्र से मिले हैं, वह भगवान् ने नहीं बनाया। भगवान् का बनाया मित्र तो कहीं खाट पर पड़ा सो रहा होगा। स्वप्नावस्था में जिस शेर को देखकर आप भयभीत हो गये, वह शेर भगवान् ने नहीं बनाया, वह आपके मन ने बनाया। स्वप्नावस्था में जिस साँप ने आपको काट खाया, आप चीख पड़े, वह साँप भगवान् का बनाया हुआ नहीं है। स्वाप्नावस्था में जिस नदी में आप डूब रहे थे, उस नदी का निर्माण भगवान् ने नहीं किया। इस बात को आप अच्छी प्रकार समझ रहे होंगे कि स्वप्नावस्था में जो भी सुख—दुःख आपको उपलब्ध हो रहे थे, वे सभी आपके द्वारा बनाए गए न कि भगवान् ने उनका निर्माण किया। बिचारे जीव से सृष्टि करते नहीं बनता, यह नहीं कि वह अपने लिए सुख का निर्माण करे, वह स्वप्नावस्था में भी अपने लिए दुःख का ही निर्माण कर देता है।

जीव की यह वृत्ति है कि वह अपने ईश्वरत्व का प्रयोग भी अशुभ के ही निर्माण में करता है, शुभ का निर्माण नहीं कर पाता। इसलिए प्रत्येक शुभ कार्य के साथ इसके दिमाग में बुरी भावना बनी रहती है। ऐसा न हो उसका परिणाम यह हो जाये, जिसको Negative thinking कहते हैं, उसके दिमाग में Positive thinking नहीं है। यह उसे मालूम है कि सृष्टि का आधार Negative thinking नहीं Positive thinking है। सृष्टि का आधार अंधकार नहीं प्रकाश है, पाप नहीं पुण्य है, शैतान नहीं परमात्मा है किन्तु जब वह किसी कार्य के लिए आगे बढ़ता है तो परमात्मा को बाद में याद करेगा, उसके मन में शैतान पहले आ जाएगा कि ऐसा न हो कि यह बुरा

हो जाए। ऐसा क्यों है? वह अन्धकार को क्यों देखता है? इसलिए कि वह अविद्याग्रसित है। मैं आप लोगों को बता रहा था कि जीव जब जीव रहता है तब भी दुःखी रहता है और स्वप्नावस्था में जब ईश्वर बन जाता है तो उससे भी अधिक दुःखी हो जाता है।

भगवान् कहते हैं कि जीव न तो जीव बनकर सुखी रह सकता है और न ईश्वर बनकर सुखी रह सकता है। सुखी तुम्हें कैसे रहना है? जब महामाया अपने आवरण का प्रसार करती है और मनुष्य के ईश्वरत्व और जीवत्व को छीन कर उसे घोर सुषुप्ति में डाल देती है तभी वह यथार्थ सुख प्राप्त कर पाता है। घोर सुषुप्ति को प्रगाढ़ निद्रा भी कहते हैं। प्रगाढ़ निद्रा में जब जीव पहुँच जाता है तो उसे अपने अहं का अथवा मैं–पने का बोध नहीं होता इसलिए उसे सुख की अनुभूति होती है। जब वह जागता है तो कहता है कि कितने आनन्द की नींद आई। इसका अभिप्राय कि जब तुम्हारा अपना आप नहीं रहता, अपना अहं नहीं रहता, उस समय तुम आनन्द को प्राप्त करते हो। इसी को कहते हैं प्रलय और इसी का दूसरा नाम संहार है। जो आपको प्रगाढ़ निद्रा में आनन्द देता है, वही शिव है। वह संहार कर्ता है, संवरण कर्त्ता है। जब वह आपके चित्त की वृत्तियों को समेट लेता है तब आपको आनन्द आता है किन्तु वह आनन्द अस्थाई है, घण्टे दो घण्टे के लिए है। आपको स्थाई वा नित्य आनन्द की चाह है अस्थाई की नहीं। इस सुषुप्ति की घटना से प्रकृति और परमेश्वर आपको यह बताते हैं कि जब तुम्हारा अहं समाप्त हो जाएगा तब तुम्हें परमानन्द की अनुभूति होगी। जब तक तुम्हारा अहं बना रहेगा (चाहे जीव रूप में हो अथवा ईश्वर रूप में) तब तक तुम्हें नित्य आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती। दुःख–सुख से छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम अपने अहं को अनन्त में लय कर दोगे जैसे सुषुप्ति अवस्था में होता है।

सृष्टि, पालन और प्रलय के पश्चात् परमात्मा का चौथा कार्य है तिरोभाव। प्रलय जो सुषुप्ति रूप में होता है, वह स्थाई नहीं होता, कुछ घन्टों के लिए ही होता है, बाद में जाग्रतावस्था में आ जाते हैं। जो इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाली क्रिया है, वह मृत्यु है, उसे तिरोभाव कहते हैं। आप जानते हो कि यह जीव जब शरीर छोड़ता है तो बहुत सूक्ष्मावस्था में होता है जिसकी

कल्पना हम आप नहीं कर सकते। वेद में बताया गया है –

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।।

(श्वेता॰ ५/६)

बाल के अग्रभाग को सौ भागों में विभाजित किया जाए और फिर एक भाग को पुनः सौ भागों में विभाजित किया जाए तो वह जो बाल के अग्रभाग का सूक्ष्म अंश होगा, इससे भी सूक्ष्म जीव को जानो जो कि स्वयं में अनन्तता को प्राप्त करने की क्षमता रखता है। वर्तमान में वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके यह बात बताई कि पुरुष के एक बूँद सीमन अथवा वीर्य में पांच अरब जीवाणु होते हैं। उसमें से पुरुष का एक जीवाणु स्त्री के रज के साथ युक्त होकर शरीर का निर्माण करता है, धीरे–२ जो बच्चे के रूप में परिणत होकर जन्म लेता है। अब आप अनुमान लगाईये कि वह जो जीव का सूक्ष्मतम तत्त्व है, उसमें उसके अनन्त संस्कार भरे होते हैं –

यथैव बटबीजस्थ प्राकृतश्च महान्द्रुमः।

(रा॰ पू॰ ता॰ २/२)

जैसे वट के छोटे से बीज में महावृक्ष छिपा हुआ है वैसे ही पुरुष के वीर्यगत् उस जीवाणु में जिसे सपर्म कहते हैं, उसका विशाल व्यक्तित्व छिपा हुआ होता है, अनेक प्रकार की आकृतियां–प्रकृतियां छिपी हुई होती हैं। शास्त्र कहता है कि जीव का यह जो एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करने की प्रक्रिया है, वही परमात्मा का तिरोभाव है।

इसके पश्चात् परमात्मा की पाँचवी क्रिया है जिसे अनुग्रह कहते हैं। अनुग्रह का अर्थ है मुक्ति। सृष्टि, पालन, प्रलय एवं तिरोभाव, इसमें संसार का चक्र चलता है। इस चक्र से जो ऊब जाते हैं, पार होने के लिए जो हाथ उठा देते हैं और जो यह कह देते हैं–

यद् यद् करोमि तत् तत् अखिलं शम्भोतवाराधनम्।

हे प्रभो! जो कुछ मेरे से हो रहा है, सब आपकी पूजा है। आपके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं। अब मैं इस भवार्णव से हार चुका हूँ। नाथ! अब मेरे वश का नहीं, मैं आपकी शरण में हूँ, मुझ पर अनुग्रह कीजिए। जो ऐसा स्वीकार कर लेते हैं भगवान् उनके ऊपर अनुग्रह करते हैं। भगवान् के अनुग्रह से ही इस जीव का विस्तार

होता है अर्थात् मुक्ति होती है इसलिए शिव पुराण में यह बात बताई गई कि परमात्मा सृष्टि के लिए पृथ्वी का, पालन के लिए जल का, संवरण के लिए अग्नि का और तिरोभाव के लिए वायु का निर्माण करता है। इस योनि से उस योनि में, उस योनि से इस योनि में जाना, यह गति वायु की है, अनुग्रह आकाश में है। अनुग्रह का आश्रय आकाश है जो परमात्मा का दिव्य स्वरूप है इसलिए यजुर्वेद के अन्त में बताया गया–'ऊँ खं ब्रह्म', वह परमात्मा आकाश स्वरूप है। ये जो पाँच महाभूत हैं, ये पाँच प्रकार की क्रियाओं के आधार हैं। वह परमेश्वर अपनी दिव्य महिमा से इन पाँच प्रकार की क्रियाओं को करता है जिससे वह शिव के नाम से अभिहित है। अनेक पुराणों और ग्रन्थों में उसके अनेक नाम हैं लेकिन महापुराण में उस परमात्मा को शिव कहते हैं। शिव पुराण की महिमा महान् है। इसकी महिमा के विषय में शिव पुराण के प्रारम्भ में बड़ी सुन्दर कथा आती है।

एक नाम मात्र का ब्राह्मण होता है। उसके जीवन का वर्णन इस पुराण में बड़े निकृष्ट रूप से है। वह ब्राह्मण मद्यपानकर्ता, मांसाहारी एवं वेश्यागामी है। अनेक प्रकार के दोष जो दुनिया में हो सकते हैं, वह समस्त दोषों से युक्त है। उसकी स्त्री चचुंला बड़ी पतिव्रता, पति में अनुराग रखने वाली एवं सौन्दर्य की मूर्ति है लेकिन वह पति अपनी स्त्री की उपेक्षा कर वेश्याओं के संग में विचरण करता है। उसकी अधमता सीमा को पार कर जाती है और चंचुला कुछ नहीं कर पाती। अन्त में अपने आपको एक अन्य पुरुष के हवाले कर देती है। एक दिन उसका पति उसे बांध कर मारते हुए कहता है, दुष्टा! तू मेरे साथ धोखा कर रही है। तब चंचुला ने कहा, देखिये स्त्री का आधार पति है। शास्त्र में इसकी व्यवस्था है कि जो पुरुष अपनी स्त्री की संभाल नहीं करता, उसको पति कहलाने का अधिकार नहीं इसलिए जब इतने वर्षों तक तुमने मेरी संभाल नहीं की तो मैंने निश्चय किया कि अब मैं किसी अन्य पुरुष का वरण करूँगी। वह कहता है तुमने यदि ऐसा किया तो मैं तेरा वध कर दूँगा। केवल एक काम की छूट दे सकता हूँ, तुम सुन्दरी हो, मैं तुम्हारा पति हूँ इसलिए आज्ञा देता हूँ कि तुम विभिन्न पुरुषों के साथ सम्पर्क करके उनसे धन अर्जित करो और वह धन मुझे लाकर दो यानी वेश्यावृत्ति स्वीकार करो।

चंचुला अपने दुष्ट पति के भय से वेश्यावृत्ति अपना लेती है।

वह दुष्ट ब्राह्मण चाण्डाल वृत्ति को प्राप्त हुआ, अनर्थमय कर्मों से प्राप्त धन का वेश्याओं के लिए प्रयोग करता है। कुछ समय पश्चात् उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है। दुष्टता का अन्त तो कहीं होता ही नहीं, मरने के पश्चात वह अमित काल तक रौरव नाम के नरक में रहता है। रौरव नरक किसे कहते हैं? जैसे मैंने आप लोगों को पाँच प्रकार की सृष्टि बताई है। मनुष्य से पूर्व जड़ जीवन, कृमि जीवन, सरीसृप जीवन, पक्षी जीवन और पशु जीवन, ये पाँच प्रकार की सृष्टियाँ मनुष्य के नीचे की योनियाँ हैं। आप लोग जानते हो जहाँ मल–मूत्र का ढ़ेर पड़ा होता है, उसमें जो कृमि होते हैं, उस कृमि जीवन को प्राप्त करने को रौरव नरक कहते हैं। जो व्यक्ति महान् पापी और घोर अत्याचारी होता है, वह मरने के पश्चात कृमि योनि को प्राप्त करता है। वह मलमूत्र का कीड़ा बनता है इसलिए उसे रौरव नरक कहते हैं। उस समय उसको ज्ञान होता है कि मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ। वह दुष्ट ब्राह्मण भी अनेक वर्षों तक रौरव नरक का दुःख भोगकर पिशाच योनि को प्राप्त होता है और विन्ध्यगिरि पर जाकर पिशाच बनता है।

उसकी स्त्री चंचुला जो कुछ करती रही, उसके भय से करती थी किन्तु जब वह मर गया तो उसकी वृत्ति बदल जाती है। वह अच्छे लोगों के साथ बैठने लगती है और सत्संग करती है। एक दिन वह निश्चय करती है कि मेरा यह समस्त जीवन पापमय पापी पति की आज्ञा में रहने से हुआ है। अब मैं अपने शेष जीवन के उद्धार के लिए तीर्थयात्रा करूँगी। वह अनेक तीर्थों की यात्रा करती हुई एक तीर्थ में पहुँचती है जहाँ शिव पुराण की कथा हो रही थी। शिव पुराण के कतिपय शब्द उसके कान में पड़ते हैं। जो व्यास वहाँ कथा कर रहा होता है, वह बताता है कि घोर से घोर पापी भी भगवान् भूतभावन की कृपा का पात्र हो सकता है। कब होता है? जब वह पंचाक्षरी विद्या का अनुसंधान करे, पाठ करे और सुमिरन करे। चंचुला सुनती है तो उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है, अपने पापमय कृत्यों को देखती है और सोचती है कि क्या मेरा भी उद्धार होगा? कथा समाप्त होने पर चचुंला व्यास के पास जाती है और उसके चरणों में गिरकर प्रार्थना करती हुई पूछती है, प्रभो! मैं बहुत पापिनी हूँ, क्या मेरा भी उद्धार हो सकता है? महात्मा कहते हैं कि संसार में कोई भी जीव इतना पाप नहीं कर सकता जितने पापों

को क्षमा करने की शक्ति परमात्मा में है।

इस सम्बन्ध में मैं आप लोगों को एक रहस्य की बात बता रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनें। प्रत्येक व्यक्ति उतना पाप नहीं कर सकता जितना कि रावण, कुंभकर्ण, हिरण्यकशिपु एवं कंस ने किया था क्योंकि पाप करने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता होती है और शक्ति तपस्या से मिलती है। जिन दैत्यों का नाम मैंने गिनाया है, ये महान् तपस्वी दैत्य हुए हैं। अपनी घोर तपस्या से परमात्मा को प्रसन्न करके उनसे अनन्त शक्ति का वर प्राप्त किये और पाप में लगे। पाप करना कोई खेल नहीं। आप रावण नहीं, विभीषण तो बन सकते हैं, विभीषण बनने के लिए शक्ति नहीं भक्ति चाहिए। रावण बनने के लिए भक्ति से काम नहीं चलेगा उसके लिए शक्ति चाहिए। आप इसे ऐसे समझ सकते हैं जैसे मन्दिर में आकर चरणामृत लेना है तो उसके लिए शक्ति की आपको क्या आवश्यकता है? आप मन्दिर में आइए और आकर चरणामृत लीजिए। यदि आपने एक घूंट शराब चढ़ाना है तो किसी शराब की दुकान के पास जाइये और कहिये कि मैं तो शराब का भक्त हूँ, इसके बिना नहीं रह सकता। यदि आप दुकानदार को उसकी कीमत चुका देंगे तो ठीक है अन्यथा एक घूंट के स्थान पर चार चांटे मिलेंगे। इसके विपरीत यदि आप किसी महात्मा के पास जाते हैं; प्रणाम करके उनके चरणों में बैठते हैं। ज्ञान की बातें पूछते हैं तो वह प्रेम से आपको बता देंगे। उसके लिए किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं किन्तु किसी वेश्या के चरण पकड़ते हैं तो वहाँ भक्ति की नहीं सम्पत्ति की शक्ति चाहिए।

आपने कभी बिल्व मंगल की कथा पढ़ी या सुनी होगी तो मालूम होगा कि जब तक उसके पास धन था, उसे चिन्तामणि के चरणों में समर्पित करता रहा और वह उसे प्यार करती रही। जब वह कंगाल हो गया तो एक सायंकाल को वह चिन्तामणि के पास जाता है। वह पूछती है, मेरे लिए आज क्या लाये हो? उसने कहा कि आज मेरे पास कुछ नहीं। वह लात मारकर बाहर निकाल देती है और कहती है कि यह वेश्या का घर है तुम्हारी धर्मपत्नी का नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी के घर में दीपक जलाना है तो आप एक छोटा सा दीपक ले जाकर उसके घर में जला दीजिए, प्रकाश हो जाएगा परन्तु यदि किसी के घर में आग लगानी

है तो वहाँ आपकी भक्ति नहीं चलेगी। पाप शक्ति से तथा पुण्य भक्ति से किया जाता है इसलिए मनुष्य इतना पाप नहीं कर सकता जितना परमात्मा उसे क्षमा कर सकता है।

व्यास ने जब चंचुला को समझाया तो उसका हृदय द्रवित हो गया, रोते हुए उसके चरणों में गिर पड़ी और बोली, भगवन् मेरे उद्धार का कोई रास्ता बताइये। उस महात्मा ने उसको पंचाक्षरी विद्या बताई और मन्त्र बताया। वह देवी बैठकर साधन करने लगी। साधना करते हुए तप के द्वारा उसने अपने समस्त पापों को भस्म कर दिया। अन्त में भगवती का उसे साक्षात्कार होता है। भगवती उमा प्रकट होकर उसे वरदान देती हैं। उसको समस्त पापों से मुक्त कर पुनः उससे पूछती हैं, अब तू बता तेरी क्या इच्छा पूर्ण करूँ? वह कहती है, भगवती! आपके दर्शन कर मैं कृतकृत्य हो गई किन्तु मेरे हृदय में अपने दुष्ट पति के लिए अब भी विचार आता है कि वह इस समय न जाने किस योनि में कौन सा भोग भोग रहा होगा। यदि आप मेरे पर कृपा करती हैं तो मेरे पति के उद्धार का कोई रास्ता बताइये। भगवती मुस्कुराकर कहती है कि वह दुष्ट पति जिसने तुम्हें पतन के गर्त में डाल दिया, जिसने तुम्हें इतनी पीड़ा दी, जिसने तुम्हें वेश्या वृत्ति के लिए मजबूर कर दिया, जिसने जिन्दगी भर तुम्हें प्यार की दृष्टि से नहीं देखा, आज भी तुम्हें उसके लिए इतनी दया है। वह कहती है, देवी! जो कुछ उसने किया अज्ञानता में किया था। ज्ञान में कोई भी व्यक्ति अत्याचार नहीं कर सकता इसलिए मेरी प्रार्थना है कि उसके ऊपर दया करके उसके उद्धार के लिए आप मुझे रास्ता बताइये। देवी ने कहा, केवल एक ही रास्ता है। जिस शिवपुराण के श्रवण से तुम्हारा उद्धार हुआ है, वह शिवपुराण यदि उसे सुनाया जाये तो उसका उद्धार हो सकता है। वह पूछती है मेरा पति कहाँ है? भगवती कहती है कि अनेक वर्षों तक रौरव नरक भोगने के पश्चात् वह विन्ध्यगिरि के ऊपर पिशाच योनि को प्राप्त हुआ है। चंचुला कहती है, भगवती! मेरे में सामर्थ्य नहीं कि मैं पिशाच को शिव पुराण की कथा वहाँ जाकर सुना सकूँ, यह व्यवस्था भी आपको ही करनी होगी। भगवती पार्वती उसके ऊपर कृपा करके तुम्बरु नाम के गन्धर्व को बुलाती है और उसको आदेश देती है कि इस देवी के तप के परिणाम में तुम जाकर इसके पति को जो पिशाच योनि को प्राप्त हुआ है शिव पुराण

की कथा सुनाओ और उसे पवित्र करके विमान द्वारा मेरे पास ले आओ। चंचुला की इस तपस्या और भक्ति के परिणाम से तुम्बरु नाम का गन्धर्व उस पिशाच के पास जाकर उसे शिव पुराण की कथा सुनाता है। शिव पुराण की कथा श्रवण करने के पश्चात् वह पाप मुक्त होकर दिव्य शरीर को धारण कर भगवती के चरणों में आकर प्रणाम करता है और उसका उद्धार होता है। यह शिवपुराण के माहात्म्य में चंचुला की कथा वर्णन की गई है। इसके पश्चात् शिव तत्त्व की व्याख्या है।

आप लोगों को शिव तत्त्व के साथ पाँच बातें बताई हैं। वह परमात्मा शिव जो ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित है, उसी से तीन मूर्तियाँ प्रकट होती हैं–ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। इन त्रिदेवों के रूप में वही शिव प्रकट होता है। इससे आप लोग समझ गये होंगे कि वह परब्रह्म परमात्मा स्वयं त्रिदेवों के रूप में प्रकट होकर पाँच प्रकार के कार्य करता है। उसमें सृष्टि, पालन और प्रलय, ये काम त्रिदेवों से करवाता है और जो आविर्भाव तथा तिरोभाव है, वह कार्य उन त्रिदेवों के माध्यम से स्वयं करता है। अनुग्रह उसकी कृपा का प्रकाश है जिससे समस्त जीव मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। जब तक उसका अनुग्रह प्राप्त नहीं होगा तब तक जीव का मोक्ष नहीं हो सकता, यह शिव पुराण की घोषणा है। उस ब्रह्म के अनुग्रह को प्राप्त करने का जो मार्ग है, वह पँच देवोपसना के रूप में सनातन धर्म में बताया गया है। यदि आप विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, दुर्गा और गणेश की उपासना करेंगे तब भी वही ब्रह्म अनुग्रह करेगा। सूर्य ब्रह्मा का प्रतीक है, सूर्य और ब्रह्मा दो नहीं एक हैं। ब्रह्मा की उपासना हमारे यहाँ वैदिक सिद्धान्त में सूर्य रूप में होती है। सूर्य को हिरण्यगर्भ कहा गया है, यही सावित्री और सविता है। सावित्री का जो पति है, वही ब्रह्मा है इसलिए सूर्य और ब्रह्मा एक ही तत्त्व के दो नाम हैं; उपासना हेतु हम उसकी सूर्य रूप में पूजा करते हैं। गणेश, सूर्य, शक्ति, शिव और विष्णु, इन पाँच रूपों में वही शिव प्रकट होता है और अपने अनेक रूपों के द्वारा वह अनेक प्रकार के कृत्य करता हुआ जीवों का उद्धार एवं कल्याण करता है। मैंने संक्षेप में आप लोगों को सार तत्त्व समझाया है, इस पर आप लोग मनन करें।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१२/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

आज हमारे इस ज्ञानयज्ञ का द्वितीय दिवस है। भगवान् शिव और उनकी महिमा, यही शिव पुराण का विषय है। कल मैंने आप लोगों को बताया था कि शिव पुराण एक लाख श्लोकों का वृहद् ग्रन्थ था, उसे भगवान् वेदव्यास ने २४ हज़ार श्लोकों में आबद्ध करके जनसामान्य के लिए सुलभ कर दिया। वर्तमान में जो शिव पुराण उपलब्ध है, उसमें २४ हज़ार श्लोक हैं। शिव पुराण का विषय वेदान्त के अर्थ का प्रकाश करना है। वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है–परब्रह्म परमात्मा। जैसा कि श्रुति का कथन है "शान्तं शिवं अद्वैतम्" शान्त, शिव और अद्वैत ब्रह्म। जन सामान्य के लिए शान्त, शिव और अद्वैत का प्रकाश करना और उसके यथार्थ स्वरूप का बोध प्रदान करना शिव पुराण का प्रयोजन है। शिव पुराण के अनुसार सृष्टि का मूल आधार नाद है। नाद और बिन्दू को वेद में अग्नि और सोम कहा गया है। "अग्नि सोमात्मकं जगत्" अग्नि और सोम, नाद और बिन्दू ये सृष्टि के मूल आधार हैं। प्रश्नोपनिषद् में इसे प्राण और रयि कहा गया है। जिसे प्राण और रयि, नाद और बिन्दू कहते हैं, उसी को अग्नि और सोम कहते हैं। इस वैदिक परिभाषा में सृष्टि के मूल तत्त्व का विवेचन है, उसी को सांख्य की भाषा में प्रकृति और पुरुष कहते हैं और वेदान्त की भाषा में वही ब्रह्म और माया है।

हमारे यहाँ जो विभिन्न दर्शन हैं, इनका प्रतिपाद्य विषय एक है, अनेक नहीं किन्तु उनकी व्याख्या की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न है। विशेष रूप से जिसको हम शक्तिमान रूप से देखते हैं, वही नाद और बिन्दू का मूल स्वरूप है। शिव पुराण के सिद्धान्तानुसार भगवान् शंकर ही नाद हैं और उनकी पराशक्ति उमा ही बिन्दू है। नाद और बिन्दू के संयोग से ही सृष्टि का प्रकाश है। सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम नाद का आविर्भाव होता है। नाद पंचाक्षरात्मक है–अ, उ, म्, स्वर तथा नाद, ऐसा शिव पुराण में वर्णन है। जब हम नाद करते हैं, ॐ कहते हैं तो इसमें पाँचों का समावेश होता है, यह

उसका कारण रूप है। इसी कारण रूप को कार्य रूप में अभिव्यक्त करते हुए जब भगवान् शंकर सृष्टि के आदि मं नाद को प्रकाशित करते हैं तो पंचाक्षर मंत्र के रूप में यह प्रकट होता है जिसको "ॐ नमः शिवाय" कहते हैं। यह 'नमः शिवाय' पंचाक्षर मन्त्र है। इसको पंचाक्षरी विद्या कहते हैं। इसका नाम ब्रह्मविद्या भी है। यह पंचाक्षरी विद्या ॐ का साकार विग्रह है। ॐ शब्द ही पंचाक्षरी विद्या के रूप में प्रकट है। आगे चलकर इसी "पंचाक्षरी विद्या" से अक्षर की उत्पत्ति होती है। जो संस्कृत के मूल पाँच स्वर हैं और बाद में पाँच–पाँच अक्षर उत्पन्न होते हैं, वे भी इसी पंचाक्षरी विद्या के प्रकाश हैं। शिव पुराण का यही कथन है कि पूर्व में नाद प्रकट होता है, फिर पंचाक्षरी विद्या, पंचाक्षरी विद्या से पाँच स्वर जिसे मूल स्वर कहते हैं– अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाँच स्वरों के बाद पाँच–२ करके पाँच प्रकार के वर्ण हैं और इन सबके अन्त में जब समस्त अक्षरों का आविर्भाव होता है तो ब्रह्म गायत्री का प्राकट्य होता है जो बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है। गायत्री के पश्चात् पुनः वेद का आविर्भाव होता है।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि सनातन धर्म ऐसा मानता है कि गायत्री वेद की माता है। गायत्री के तीन चरण हैं, उन तीनों चरणों के प्रकाश में परमात्मा की स्तुति, उपासना और प्रार्थना–ये तीन बातें हमें मिलती हैं। गम्भीरता से मनन करने पर हमें पता चलता है कि स्तुति, उपासना और प्रार्थना में क्या भेद है। स्तुति में हम अपने इष्ट वा उपास्य की महिमा का गान करते हैं, स्तुति में कोई माँग नहीं होती, उसमें केवल उसकी महिमा का गान किया जाता है क्योंकि जिसकी महिमा का हम चिन्तन अथवा गान करते हैं, उसके साथ हमारे चित्त की निकटता एवं एकता होती है। इष्ट की महिमा के गान करने को स्तुति कहते हैं तथा महिमावान् के साथ चित्त के नैकट्य को उपासना कहते हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं ।

यह परमात्मा की महिमा का गान है। इसमें परमात्मा से हमने कुछ माँगा नहीं, कुछ कहा नहीं। केवल उसकी महिमा का गान एवं चिन्तन किया है। वह सर्वव्यापी इस त्रिलोकी में भू, भुवः और स्वः के रूप में पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक के रूप में ब्रह्माण्ड के विभिन्न रूपों स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप में अवस्थित

है, वही सबका प्रसव कर्त्ता है, उस सवित्री परमात्मा को हम वरण अर्थात् धारण कर रहे हैं। पहले चरण में हम गायत्री के माध्यम से परमात्मा की स्तुति करते हैं, उसके पश्चात् हम उसके साथ युक्त होते हैं, जिसको उपासना कहते हैं। स्तुति, उपासना और प्रार्थना–ये तीनों अलग–२ तत्त्व हैं और गायत्री में तीनों समाविष्ट हैं। विश्व में आपको कोई ऐसा मन्त्र नहीं मिलेगा जिसमें तीनों का सामंजस्य हो, तीनों एक में समाविष्ट हों।

स्तुति के बाद हम उपासना में आते हैं "भर्गो देवस्य धीमहि" प्रकाश स्वरूप परमात्मा जो सबमें बसा हुआ है, उसका हम ध्यान करते हैं। ध्यान से हम उसकी एकता अथवा निकटता प्राप्त करते हैं। जिस प्रक्रिया के द्वारा हम अपने उपास्य, इष्ट, भगवान् एवं आराध्य देव के निकट पहुँच जाते हैं, उसको उपासना कहते हैं। इस प्रकार गायत्री के प्रथम चरण में स्तुति और द्वितीय चरण में उपासना करके हम उसके निकट पहुँच जाते हैं। 'सो' और 'अहम्' के मध्य में अब कोई अन्तर नहीं है। अब 'धीमहि' तक पहुँच गये, यहाँ पहुँच कर हम अपनी माँग उसके सामने रखते हैं। गायत्री के अन्तिम चरण में हम अपने देव से अपनी माँग व्यक्त करते हैं। हमारी माँग क्या है? "धियो यो नः प्रचोदयात्" हे प्रभो! आप हमारी बुद्धियों को प्रेरित करें। व्याकरण की दृष्टि से यह सामूहिक प्रार्थना है, व्यक्तिगत नहीं और न ही किसी को अलग करने वाली प्रार्थना। इसमें उपासक केवल अपनी बुद्धि को प्रेरित करने के लिए प्रार्थना नहीं करता अपितु 'धियो यो नः प्रचोदयात्' अर्थात् हमारी बुद्धियों को प्रेरित कर, ऐसा कहता हुआ सभी के लिए प्रार्थना क़रता है।

सनातन धर्म में, वैदिक संस्कृति में यह बात बताई गई है कि यदि आप अकेले अपना उत्थान करना चाहें और समाज निकृष्ट अवस्था में रहे तो आपका कल्याण अथवा उत्थान होने वाला नहीं है। आप कभी अपना एकांगी कल्याण नहीं कर सकते। उत्थान के लिए आपको सामूहिक प्रयत्न करना पड़ेगा। सामूहिक प्रयत्न में सर्वप्रथम सामूहिक रूप से विशुद्ध बुद्धि को प्राप्त करने की प्रार्थना है। सनातन धर्म में जितनी महिमा बुद्धि की है शायद अन्य किसी धर्म में आपको न मिले। जहाँ तक अन्य धर्मों का संबंध है, मैंने सभी का अध्ययन किया है। ज्ञान के द्वारा आत्मो थान की विद्या आपको केवल वैदिक संस्कृति में ही मिलेगी, अन्यत्र नहीं किन्तु दुःख की

बात यह है कि इस समय इन वेद मन्त्रों का यथार्थ अर्थ न जानने के नाते जितनी भ्रांतियां, जितनी अव्यवस्थायें इतने महान् ग्रन्थों के सन्देश के होते हुए हमारे मध्य विद्यमान हैं; वे शायद आपको अन्यत्र न मिलें। इसका मूल कारण यह है कि ग्रन्थ आपका कुछ नहीं बना सकते यदि आपको उसका बोध नहीं है। ऋग्वेद की एक ऋचा है जिसमें बताया गया है–

यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति ।

(श्वेता॰ ४/८)

वेद कहता है कि यदि तुम उस परम तत्त्व को नहीं जानते, जिस परम तत्त्व का बोध ही तुम्हारे कल्याण का हेतु है तो वेद की ऋचायें तुम्हें कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकती। मेरे कहने का अभिप्राय कि हमारे यहाँ ज्ञान के प्रचार का अभाव है। जैसे बाह्य देशों में बसे हुए हिन्दुओं के पूर्वजों को सौ वर्ष से अधिक हो गया भारत से बाहर आये किन्तु भारत में इस प्रकार की भावना से युक्त कोई ऐसा संगठन नहीं था जो कि विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में रहने वाले हिन्दू समाज को अपने धर्म और संस्कृति का यथार्थ बोध करवाने के लिए जाता। अब स्वतन्त्रता के पश्चात् ऐसे कई मिशन संगठित हुए हैं जो इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। मैं भी कई वर्षों से अपने शिष्यों के साथ इधर काम कर रहा हूँ। मैं देखता हूँ कि धर्म के नाम पर हिन्दू समाज में कई ऐसी भ्रान्तियाँ आ गई हैं जिनको निकालना बड़ा कठिन सा हो गया है। जिस धर्म के द्वारा मनुष्य का विकास होता है, यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि होती है, उस धर्म के नाम पर इतना मतभेद और उसकी धारणा में एक दूसरे के प्रति इतनी हीन भावना, यह कितने दुःख की बात है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि गायत्री मन्त्र में सामूहिक उपासना है, वैयक्तिक नहीं है। एक व्यक्ति यदि उसका जप करता है तो वह भी समष्टि बुद्धि की प्रार्थना करता है "धियो यो नः प्रचोदयात्" 'नः' का अर्थ हमारा, सब का है, मेरा नहीं है। सनातन धर्म यह मानता है कि ज्ञान प्राप्त होने पर ही आप अपने लोक–परलोक को सुधार सकते हो। अज्ञानावस्था में न आपका लोक बनेगा और न परलोक ही। अन्धकार में आपको एक छोटा सा पत्थर का टुकड़ा ठोकर मारकर ज़मीन पर गिरा सकता है और प्रकाश में आप बड़े से बड़े पर्वत की चोटी को पार कर सकते हो। इसी प्रकार यदि आपके

पास ज्ञान है तो आप बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को अथवा दुर्गम रास्तों को पार कर जाओगे। यदि आप अज्ञान में हैं तो छोटी सी उलझन आपके जीवन को बरबाद कर देगी। सनातन धर्म ज्ञान उपलब्धि के लिए केवल यही उपाय मानता है। उस परमात्मा की स्तुति, उपासना और प्रार्थना, इन तीनों का सामंजस्य इस एक ही मन्त्र में है जिसको ब्रह्म गायत्री कहते हैं। ब्रह्म गायत्री शब्द का अर्थ होता है ज्ञान को उपलब्ध करवाने वाली प्रार्थना। शिव पुराण में गायत्री मन्त्र की बड़ी महिमा बताई गई है। यहाँ जो मैं बता रहा हूँ यही बात शिव पुराण में बताई गई है कि गायत्री प्राणिमात्र के लिए है। उसमें यह बताया गया है कि गायत्री अपने गाने वाले का त्राण करती है। "गायन्तं त्रायते विद् गायत्री" जो उसका गान करता है, वह उसकी रक्षा करती है इसलिए उसका नाम ब्रह्म गायत्री पड़ा है। शिवपुराण में आज यह प्रसंग आया था इसीलिये मैंने इसकी व्याख्या करके आपको समझाया।

गायत्री से आगे चलकर वेद प्रकट हुआ अर्थात् ज्ञान प्रकट हुआ। आप जानते हो हम सनातनी वेद को अपौरुषेय मानते हैं। अपौरुषेय माने जो किसी पुरुष का बनाया हुआ न हो, रचित न हो। आप जितने भी ग्रन्थ देखते हो, ये कहीं अपने आप आकाश से नहीं टपके हैं। वेद शब्द का अर्थ ग्रन्थ नहीं बल्कि ज्ञान है। आप कहोगे ज्ञान तो साधन से प्राप्त होता है तो मैं आपको पूछता हूँ कि साधन आप ज्ञान में करते हो या अज्ञान में, आप मनन करें? अज्ञान में साधन नहीं होता, पशु साधन नहीं कर सकता, यह दीवार साधन नहीं कर सकती। जिन तत्त्वों से आपके शरीर का निर्माण हुआ उन्हीं से यह दीवार बनी हुई है, तत्त्वतः आपके शरीर और दीवार में कोई अन्तर नहीं। आपका शरीर और दीवार दोनों ही परमाणुओं का संघात है। पुरुष तत्त्व वा चेतन तत्त्व जैसे आप में व्याप्त है वैसे ही दीवार में व्याप्त है, इसीलिए तत्त्व विज्ञान की दृष्टि से दोनों में कोई भिन्नता नहीं। जो चेतन तत्त्व सर्वव्यापी है वह उस दीवार में नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। यदि नहीं है तो चेतन तत्त्व सर्वव्यापी नहीं हो सकता, वह एकदेशीय होगा। यदि एकदेशीय होगा तो वह ईश्वर नहीं हो सकता। यदि ईश्वर सर्वव्यापी है तो वह इस दीवार में भी है।

आप लोगों ने पुराण की वह कथा सुनी होगी जिसमें

हिरण्यकशिपु प्रह्लाद से पूछता है—तेरा भगवान्, तेरा राम कहाँ है? प्रह्लाद कहता है कि मेरा राम सबमें रमा हुआ है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को जब अग्नि में डाल देता है, वह जलता नहीं, वह बचकर बाहर आ जाता है तो उसका पिता क्रोध में आकर पूछता है—तेरी रक्षा करने वाला वह राम कहाँ है? प्रह्लाद कहता है—मेरा राम सर्वत्र है। हिरण्यकशिपु एक खम्भे पर उसे मारता है और पूछता है, क्या इस खम्भे में भी तेरा राम है? प्रह्लाद कहता है, हाँ! और उसी समय उस खम्भे से भगवान् नरसिंह का आविर्भाव होता है। मेरे कहने का अभिप्राय कि परमात्मा तो कण—कण में है, उन्हीं कणों का संघात दीवार है। तत्त्वतः जो तत्त्व इस दीवार में हैं वही इस शरीर में हैं। जड़—चेतन, प्रकृति—पुरुष, नाद और बिन्दु—ये समस्त सृष्टि के रूप में प्रकट हैं क्योंकि यह विश्व जो दिखाई दे रहा है, यह भी तो उस परमात्मा का एक स्वरूप है।

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।

(यजुर्वेद ३१/५)

वेद कहता है कि यह विराट् परमात्मा का स्वरूप है।

जगदेव हरि हरिरेव जगत्,
हरितो जगतो नहि भिन्न तनु।
इति यस्य मतिः परमार्थ गतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति।।

महापुरुषों का कथन है कि परमात्मा और विश्व में कोई भेद नहीं है। विश्व ही विश्वनाथ और विश्वनाथ ही विश्व है। इसलिए तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में प्रार्थना की है –

सीय राम मय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(रा॰ १/८—२)

यह सारा विश्व सीता राममय है। सीता माने प्रकृति, राम माने पुरुष। आगे उन्होंने कहा कि केवल चेतन में ही राम नहीं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।

(रा॰ १/७ग)

जड़ में भी राम है, चेतन में भी राम है। राम सर्वत्र हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह कि मनुष्य और दीवार में अन्तर इतना है कि

मनुष्य शरीर में प्रकृति के २४ गुणों का पूर्ण प्रकाश है किन्तु इस अचल दीवार में २४ गुणों का प्रकाश नहीं है। इसमें मन, बुद्धि और अहं नहीं है, ऐसी बात नहीं परन्तु प्रसुप्त है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा होता है, ऐसे ही इसमें प्रसुप्त है प्रकट नहीं। प्रकट न होने के नाते दीवार आपकी तरह न तो चल सकती है, न बोल सकती है, कुछ नहीं कर सकती। मैं आप लोगों को समझा रहा था कि वेद अथवा ज्ञान नित्य है। जहाँ बुद्धि होती है वहाँ वह प्रकाशित हो जाता है। जो आपको स्वल्प ज्ञान प्राप्त है उसी ज्ञान से आप साधन करके वृद्धि को प्राप्त होंगे। जहाँ ज्ञान है वहीं धर्म है, जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ धर्म नहीं हो सकता। ज्ञानाभाव में आप धर्म को नहीं समझ पायेंगे।

आप एक बात सदैव स्मरण रखें कि धर्म माना नहीं जाता, जाना जाता है। मेरी ऐसी राय नहीं है कि धर्म का आधार विश्वास है इसीलिए मैं यूरोपियन लोगों को यही समझाता हूँ कि यदि तुम धार्मिक बनना चाहते हो तो पहले अपनी बुद्धि का प्रयोग करो क्योंकि बुद्धि ही धर्म की प्रथम सीढ़ी है। बुद्धि से बढ़ करके परमात्मा का कोई और वरदान नहीं हो सकता। बुद्धि मनुष्य के लिए परमात्मा की श्रेष्ठतम देन है। आप मनुष्य हैं केवल बुद्धि के नाते। यही कारण है कि जब आप किसी मनुष्य में बुद्धि का अभाव देखते हैं तो कहते हैं कि यह तो निरा पशु है। तुलसीदास जी ने लिखा है–

ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।

(रा० ७/७८ क)

जहाँ परमात्मा में आस्था नहीं है, बुद्धि का प्रकाश नहीं है तो मनुष्य होते हुए भी वे नर पशु हैं, मनुष्य के रूप में बिना सींग और पूँछ के पशु हैं। मेरे कहने का अभिप्राय कि ज्ञान धर्म का आधार है। यदि आप धर्म को जानना चाहते हैं तो ज्ञान की उपासना कीजिए।

हमारे यहाँ सनातन धर्म की प्राचीन प्रक्रिया रही है कि छोटे से बालक को पाँच वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत करके गुरु के द्वारा गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती थी। उस गायत्री मंत्र की उपासना के साथ वह ज्ञान को प्राप्त करता था। गायत्री मंत्र की उपासना कैसे करता था इसी शिव पुराण में उसका विवेचन है। प्राणायाम के साथ गायत्री मंत्र का सुमिरन, उपासना और इसके द्वारा उसमें वेद का, ज्ञान का प्रकाश होता था, तब वह अपने धर्म को समझ पाता

था। एक बात याद रखो, कुछ शताब्दियों से हमारे यहाँ भारत में भी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं, यह नहीं कि भारत भ्रान्तियों से मुक्त हो गया है। हम लोग कुछ वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं और हमारे से भी पूर्व कुछ महात्मा, विद्वान् लोग इस दिशा में काम कर रहे हैं। फिर भी इतने बड़े देश से एकाएक भ्रान्तियाँ निकालना बड़ा कठिन होता है। कई लोगों का यह स्वीकार किया हुआ सत्य है कि धर्म तो मृत्यु के बाद का साधन है। किसी से यदि आप कहो कि कुछ धर्म की बात किया करो, समझा करो तो वह कहेगा, बहुत आयु पड़ी हुई है, अभी हम कौन से वृद्ध हो गए। इसका अभिप्राय है कि धर्म बूढ़ों के लिए है, ऐसा वह समझता है किन्तु यह बिल्कुल मिथ्या धारणा एवं भ्रान्ति है। इस विषय में मेरा विचार अलग है। हमारे यहाँ धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र, इन चार प्रकार के शास्त्रों का विधान है। चार प्रकार के शास्त्रों के लिए पात्रता बताई गई है। धर्मशास्त्र उनके लिए है जो अभी संसार में प्रवेश करना चाहते हैं वा जो संसार के युद्ध में निरत हैं। आप लोग गीता का नाम सुने होंगे, बहुत पढ़े भी होंगे। आप लोगों को मालूम होगा कि गीता का उपदेश भगवान् ने अर्जुन को कब दिया? लड़ाई के बाद? नहीं। जब वह स्वर्गारोहण करने जा रहा था, उस समय? नहीं, फिर कब दिया? जब अर्जुन युद्ध में प्रवृत्त होना चाहता था। युद्ध में प्रवृत्त होने से पूर्व उसे धर्म का संदेश मिला, गीता का ज्ञान मिला।

महाभारत में एक कथा आती है। युद्ध के बाद एक बार अर्जुन भगवान् से पूछता है कि जिस समय मैं युद्ध से विरत हो गया था, हथियार डाल दिया था, उस समय आपने मुझे बहुत उत्तम उपदेश दिया था, उसमें कुछ–कुछ भूल गया हूँ, कुछ स्मरण है। कृपा करके मुझे दुबारा सुना दीजिए। भगवान् ने कहा–कठिन है, अब वह बात नहीं बन सकती। अर्जुन ने पूछा, क्यों? प्रभु ने कहा, उस समय मैंने योगस्थ होकर तुम्हें वह बात समझाई थी, दुबारा उसे दोहरा नहीं सकता। उसकी प्रार्थना करने पर भगवान् ने उसे एक गुरु शिष्य की कहानी सुनाई। महाभारत में उसे अणु गीता कहते हैं। अणु गीता माने छोटी गीता। उसमें उसी तत्त्व का विस्तार से वर्णन है। मेरे कहने का अभिप्राय है कि गीता का वह ज्ञान भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त होने से पूर्व दिया क्योंकि

अर्जुन को कर्त्तव्य के विषय में आशंका थी और धर्म के विषय की जिज्ञासा थी इसीलिए उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था–

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

(गीता २/७)

हे प्रभो! "संकीर्णता के नाते मेरी बुद्धि दब गई, मेरी बुद्धि को मोह ने दबा दिया है, इसलिए मैं धर्म के विषय में मूढ़ चित्त हो गया हूँ। मुझे धर्म और अधर्म का ज्ञान नहीं है। हे प्रभो! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरे कल्याण का जो मार्ग इस समय हो, वह मुझे समझाइये।" अर्जुन धर्म के विषय में जानने की प्रार्थना करता है और युद्ध में प्रवृत्त होने से पूर्व भगवान् उसे धर्म का बोध करवाते हैं। धर्म का बोध प्राप्त करके पुनः वह कहता है–

नष्टो मोहा स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

(गीता १८/७३)

"मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मृति प्राप्त हो गई है, अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" फिर उसने युद्ध अपने लिए नहीं किया बल्कि परमात्मा की आज्ञा समझ कर किया। मेरे कहने का अभिप्राय जीवन संग्राम से पूर्व यदि आप धर्म को समझते हैं, धर्म के विषय में सावधान होते हैं तो आपके जीवन का सारा संग्राम प्रभु के नाते होगा। तब आप अपने लिए नहीं लड़ेंगे, संसार से अपने लिए नहीं जूझेंगे। आप प्रभु की आज्ञा समझकर प्रत्येक काम करेंगे, यही धर्म का सन्देश है, यही धर्म का रहस्य है। संसार में रहते हुए, संसार की क्रियाओं को करते हुए, संसार के संग्राम में युद्ध करते हुए भी पाप और पुण्य से मुक्त रहना, यह धर्म का प्रयोजन है। यह तभी हो सकता है जब आप युद्ध में प्रवृत्त होने से पूर्व धर्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लें। दुर्भाग्य से वर्तमान के लोग यही समझते हैं कि धर्म तो मरने के पश्चात् काम आने वाली वस्तु है, अभी तो हमारी छोटी आयु है, अभी धर्म को समझकर क्या करना, यह भ्रान्ति है। मृत्यु के समय धर्मशास्त्र का नहीं, मोक्षशास्त्र का चिन्तन होता है। आजकल लोगों में ऐसी भ्रान्ति फैल गई है कि उन्होंने धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र को एक मान लिया है। मृत्यु के कुछ समय पूर्व मनुष्य जब सन्यास लेकर चौथी अवस्था में जाता था, उस समय वह मोक्षशास्त्र का चिन्तन करता था। मोक्षशास्त्र के चिन्तन का मूलाधार

आत्मा और परमात्मा की एकता का चिंतन होता था किन्तु धर्मशास्त्र के चिंतन में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का बोध कारण होता था। इन दोनों में भेद क्या है? उसे भी समझ लें।

धर्मशास्त्र का विषय है कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान कराना। हमें क्या करना है और क्या नहीं करना, इसका बोध करवाना। मोक्षशास्त्र का विषय आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति करवाना है। इसीलिए हमारे यहाँ मोक्षशास्त्र चौथे आश्रम में रहने वाले व्यक्तियों के लिए और धर्मशास्त्र जीवन में प्रवृत्त होने वाले व्यक्तियों के लिए है। ब्रह्मचर्यावस्था में ही गुरुकुल में निवास करते हुए किसी गुरु की शरण में जाकर धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना, यह शाश्वत नियम रहा है। वर्तमान में सारी व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई है, फिर भी प्रयत्न करने पर इस रहस्य का बोध हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन संग्राम में प्रवृत्त होने वाला है, जो इसमें रत होने वाला है, उससे पूर्व यदि जीवन की यथार्थता का बोध हो जाये तो मैं समझता हूँ कि उस संग्राम में होने वाले हानि–लाभ से मुक्त हो जायेगा। भगवान् ने गीता में यही बताया–

सुखदुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

(गीता २/३८)

मैं आपको यहाँ पर एक बात और समझा दूँ। यदि तुम युद्ध में सुख के लिए प्रवृत्त होते हो तो दुःख मिलेगा ही। गीता का रहस्य इन शब्दों में आप समझ सकते हैं। महाभारत का नायक है अर्जुन और प्रतिनायक दुर्योधन है। दुर्योधन और अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों सेनाओं को देखते हैं। सेनाओं को देखने के पश्चात् दोनों गुरु के पास जाते हैं किन्तु दोनों में कितना अन्तर है? दुर्योधन जब गुरु के पास जाता है तो कहता है, गुरुदेव! आप दोनों सेनाओं को देख रहे हैं, ऐसा कह कर अपने वीरों का परिचय देता है कि ये मेरे वीर हैं और आप जानते हो ये समस्त वीर किस लिए यहाँ आए हैं?

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।।

(गीता १/६)

गुरुदेव! "ये समस्त बड़े–बड़े वीर यहाँ मेरे लिए युद्ध करने आए हैं और मेरे लिए इन्होंने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया है"।

"मेरे लिये" यह दुर्योधन की बात है। गुरु से शिक्षा न लेकर बल्कि उन्हें आदेश देता है–

भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।

(गीता १/११)

आप सब मिलकर भीष्म पितामह की रक्षा कीजिए। उसकी बात सुनकर गुरु द्रोणाचार्य मुस्कुराते हैं और सिर नीचे करके उसकी बात स्वीकार करते हैं। दुर्योधन का विचार है कि युद्ध मेरे लिये हो रहा है और मैं उसका भोक्ता हूँ। सरल शब्दों में जिसकी ऐसी मान्यता है कि "कमायेगी दुनिया खायेंगे हम" अभिप्राय यह है कि लड़ेगी सेना और विजय हमें मिलेगी। जिसकी ऐसी धारणा है, वही दुर्योधन है, वही असुर है और यही आसुरी वृत्ति का चिन्ह है। दूसरी ओर आप अर्जुन को देखिए, उसकी स्थिति इससे भिन्न है। अर्जुन जब दोनों सेनाओं को देखता है तो भगवान् से कहता है प्रभो–

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यकत्वा धनानि च।।

(गीता १/३३)

हम जिसके लिए राज्य, भोग और सुख चाहते हैं वही लोग तो यहाँ मरने आए हैं इसलिए–

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

(गीता १/३२)

मुझे अपने लिए विजय, राज्य, भोग और सुख नहीं चाहिए। दोनों की स्थितियाँ भिन्न–भिन्न हैं। दुर्योधन कहता है कि ये सब मेरे लिए मरेंगे और अर्जुन कहता है कि मैं इनके लिए मर रहा हूँ। जो कहता है कि मैं सबके लिए मर रहा हूँ और सबके लिए जीवित हूँ, गीता की भाषा में वह अर्जुन है और उसके रथवान् स्वयं भगवान् बनते हैं किन्तु जो यह बात सोचता है, "कमाएगी दुनिया खायेंगे हम" वह अर्जुन नहीं दुर्योधन है। वह प्रभु के कोप का पात्र होता है और उसका विनाश अवश्यंभावी है। यही बात भगवान् ने अर्जुन को समझाई और यही बात मैं आपको समझा रहा था कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान कब होगा? जब आप धर्मशास्त्र का चिन्तन संसार में प्रवृत्त होने से पूर्व ही करलें। यही सनातन धर्म का संदेश है और इस शिव महापुराण में भी यही बात समझाई गई है।

सृष्टि में प्रवृत्त होने से पूर्व भगवान् शंकर ब्रह्मा को आदेश देते हैं कि तप करो क्योंकि तप के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। बिना तप के, बिना भक्ति के, बिना उपासना के ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का बोध नहीं हो सकता। गीता के १८वें अध्याय में भगवान् ने यह बात बताई है–

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।

(गीता १८/३०)

सतोगुणी बुद्धि के द्वारा ही यथार्थ का बोध हो सकता है, सतोगुणी बुद्धि ही तप का परिणाम एवं प्रतिफल है इसलिए सनातन धर्म यह मानता है कि वेद के बिना धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता। "वेदोऽखिलो धर्ममूलाः" वेद ही समस्त धर्मों का आधार है। यहाँ वेद माने ग्रन्थ ही नहीं, वेद माने ज्ञान, यह बात याद रखना। शाश्वत, सनातन ज्ञान जिसको हम सशंय रहित ज्ञान कहते हैं, वही ज्ञान ही वेद कहा जाता है और उसी ज्ञान को ऋषियों ने समाधि अवस्था में प्राप्त करके छन्द रूप में प्रकट किया और उसी को द्वापर के अन्त में भगवान् वेदव्यास ने एक लाख मन्त्रों से युक्त शास्त्री संहिता का निर्माण किया। इस समय जो वेद उपलब्ध हैं, हम विष्णु पुराण का जब अध्ययन करते हैं तो उसमें यह बात स्पष्ट क़ी गई है कि वेद व्यास जी ने जिस संहिता का निर्माण किया था, उसमें एक लाख मन्त्र थे। वर्तमान में चारों वेदों को मिलाकर गणना करो तो आपको मुश्किल से २० हज़ार पाँच सौ कुछ मन्त्र मिलेंगे, इससे अधिक नहीं। सामवेद में अलग मन्त्र नहीं, ऋग्वेद के सारे गाने वाले मन्त्र उसमें एकत्रित किए गए हैं और अथर्ववेद में भी कई हज़ार मन्त्र आपको ऋग्वेद के मिलेंगे और यजुर्वेद में भी सैंकड़ों मन्त्र ऋग्वेद के ही मिलेंगे। सामवेद तो सारा ऋग्वेद ही है किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी अधिकांश ऋग्वेद के ही मन्त्र हैं। ऋग्वेद के सारे मन्त्रों को यदि अलग करके इक्ट्ठा किया जाये तो उपलब्ध वेद मन्त्रों की संख्या कुछ हज़ार ही रह जाएगी किन्तु आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व जिस वेद का प्रचार वेदव्यास ने किया था, उस समय प्रकट मन्त्रों का संकलन किया था किन्तु जो मन्त्र अप्रकट थे, लुप्त हो चुके थे, उन्होंने ध्यानावस्था में बैठकर उन मन्त्रों का भी आवाहन किया था अथवा ग्रहण किया, ऐसा विष्णु पुराण में बताया गया है।

वेदव्यास जी ने जिन मन्त्रों का संकलन किया, उन एक लाख मन्त्रों की संहिता बनाकर उन्हें अपने चार शिष्यों में बाँट दिया। चारों शिष्यों ने अलग–अलग शाखाओं में अपने शिष्यों को पढ़ाया और उसका कुछ अंश आज हमारे पास उपलब्ध है। जो कुछ है वह अमित है, महान् है, अनन्त है क्योंकि वेद के एक ही मन्त्र का यदि आप चिन्तन करें तो उसी के ऊपर एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा जा सकता है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

वैदिक विज्ञान का अनुसंधान करने वाले लोग जानते हैं कि जितने भी पुराण हैं, ये वेद के अर्थ का विस्तार हैं और कुछ नहीं हैं। जैसा कि मैंने शिव पुराण के विषय में आप लोगों को बताया कि यह एक लाख श्लोकों का ग्रन्थ है और यह वेद के रुद्र तत्त्व का विस्तार है। वेद में रुद्र तत्त्व का वर्णन है–

एको ही रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु।

(श्वेता॰ ३/२)

वेद की घोषणा है कि एक ही रुद्र है और उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। रुद्र तत्त्व क्या है, इसकी व्याख्या शिव पुराण में की गई है। मैं आप लोगों को समझा रहा था कि विशेष रूप से जीवन के इस क्रम में सर्वप्रथम मूल ओंकार फिर पंचाक्षरी विद्या फिर मात्रा सहित वर्णन, उससे गायत्री मन्त्र, गायत्री मन्त्र से वेद का आविर्भाव और वेद से ही आगे सृष्टि का प्रकाश हुआ, यह शिव पुराण का सिद्धान्त है। शिव पुराण उसी तत्त्व की व्याख्या करने के लिए प्रवृत्त हुआ है। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने पुराण कभी पढ़े नहीं, वे समझते हैं कि पुराण तो कहानियों का पुलिन्दा है, झूठी कहानियां गढ़कर पुराण रूप में बताई गई हैं। कुछ लोग जिन्होंने केवल पुराणों को ही पढ़ा है और उनके आधारभूत उपनिषदों का वा दर्शन का अध्ययन नहीं किया, उनके लिए सही में ये पुराण केवल कहानियों के पुलिन्दे हैं और कुछ नहीं। पुराण तत्त्व को समझना बड़ा कठिन है। जो वस्तु जितनी विस्तार में होगी, उतनी ही उलझनपूर्ण हो जाएगी, रहस्यमयी हो जाएगी इसलिए पुराणों में विस्तार होने के नाते बड़ी उलझन की बात हो जाती है।

पुराणों में शिवलिंग के आविर्भाव का एक बहुत सुन्दर प्रश्न है। महाशिवरात्रि का आविर्भाव किस दिन हुआ, उसकी बात मैं आप लोगों को बताने जा रहा हूँ। शिव पुराण के प्रारम्भ में ही एक प्रश्न

आता है, जिसमें यह बताया गया कि महाशिव अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा सृष्टि के निर्माता विष्णु अथवा नारायण का सृजन करता है। तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से आप लोगों को समझाऊँगा, घबराना नहीं, बात बड़ी सूक्ष्म है। सनातन धर्म यह मानता है कि इस सृष्टि के मूल में अव्यक्त प्रकृति और चेतन पुरुष, ये दो तत्त्व हैं। इन दोनों तत्त्वों की अव्यक्तावस्था को ब्रह्म कहते हैं। व्याकरण की दृष्टि से ब्रह्म नपुंसकलिंग है, ब्रह्म पुलिंग नहीं और न स्त्रीलिंग है, अंग्रेजी में उसे 'इट' और संस्कृत में 'तत्' कहते हैं। उस ब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति ज्योति के रूप में होती है। ब्रह्म का पहले प्रकाश होता है रस रूप में और जब वह तेज युक्त हाता है तो गति के द्वारा ही उसमें मन्थन क्रिया होती है जिसे वेद में प्राण और रयी कहा गया है। प्राण द्वारा मन्थन होने पर रयी एक ज्योति रूप में प्रकट होती है जिसे वेद में हिरण्यगर्भ कहा गया है और शिव पुराण में उसे शिवलिंग कहा गया है। लिंग शब्द का अर्थ होता है आकृति वा चिन्ह। लिंग के पश्चात् उसके पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग, ये तीन भेद होते हैं किन्तु मूल में विशेषण नहीं लगा, वह केवल लिंग है। जो केवल लिंग है उसका नाम शिवलिंग है और उसको ज्योतिर्लिंग भी कहते हैं क्योंकि वह सृष्टि का मूल आधार, मूल स्रोत है।

उस लिंग का कहीं ओर-छोर नहीं है। उसको जानने के लिए जब त्रिविध शक्तियाँ—क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति और भाव शक्ति प्रयत्नशील होती हैं तब भी उस लिंग का कहीं पता नहीं चलता। त्रिविध शक्तियों की प्रार्थना पर वह दो टुकड़ों में विभाजित होता है। आज किसी वैज्ञानिक से आप पूछिए सृष्टि का आरम्भ कैसे होता है तो वह आपको यही बताएगा कि पहले अग्नि का एक गोला प्रकट हुआ जो बहुत महान् था। कितना बड़ा था? उसका कुछ पता नहीं। फिर क्या हुआ? बहुत गति के साथ चलते-चलते उसका विखण्डन हुआ अर्थात् वह टूटा, उसके पश्चात् वह अनेक टुकड़ों में बँट गया, वही टुकड़े ग्रह, उपग्रह बने हुए हैं। जो मूल भाग था वह सूर्य बना हुआ है और उसी का एक भाग पृथ्वी है। यही बात शिव पुराण में बताई गई है। आजकल के वैज्ञानिकों ने तो कुछ वर्ष पूर्व ही यह जाना है। शिवपुराण की रचना के विषय में आजकल के ऐतिहासिक विद्वानों ने इसे दो हज़ार वर्ष से पुराना माना है। हमारी दृष्टि से तो यह वेदव्यास की रचना है जिसे लगभग पाँच हज़ार वर्ष हो गये हैं।

आपको पता है कि इस समय दो हज़ार उन्नीस विक्रमी सम्वत् चल रहा है जिसको हम हिन्दू लोग भारतीय कलैण्डर के रूप में स्वीकार करते हैं। उसी में रहने वाले राज्याश्रित महाकवि कालीदास थे जिन्होनें कुमार संभव आदि ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने शिव पुराण के आधार पर ही कार्तिकेय का जीवन चरित्र लिखा जिसे कुमार संभव कहते हैं। महाकवि कालीदास विरचित कुमार संभव में अक्षरशः समस्त शिव पुराण का ही वर्णन है। इसका अभिप्राय यह है कि महाकवि कालीदास के समय में शिव पुराण प्रचलित था। इसकी कथा प्रचलित थी तभी उन्होंने उसका उल्लेख किया क्योंकि जब कोई कवि महाकाव्य की रचना करता है तो उसके लिए वह किसी ऐतिहासिक पात्र को ही लेता है, यह महाकाव्य के लक्षण हैं। महाकवि कालीदास ने शिवपुराण के कुमार संभव को लेकर ही अपने महाकाव्य की रचना की है। इसका अभिप्राय दो हज़ार वर्ष पूर्व यह शिव पुराण प्रचलित था जिससे महाकवि कालीदास ने कथावस्तु ली। उस शिव पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति का यही क्रम बताया गया है।

आजकल के वैज्ञानिक जिसे अग्नि का गोला कहते हैं, शिव पुराण में उसे अग्नि का साकार विग्रह बताया गया, जिसे ज्योतिर्लिंग कहते हैं और वेद में इसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। वह भी प्रकाश का गर्भ है, उसी के विखण्डित होने पर सृष्टि का आविर्भाव हुआ था। उसका एक भाग पृथ्वी रूप में एवं द्वितीय भाग द्यु रूप में परिणत हुआ। द्यु को ही नक्षत्र कहते हैं। यह सूर्यादि ग्रह–नक्षत्र इसी लोक में आ जाते हैं। इस द्यु लोक और पृथ्वी का निर्माण उसी एक अग्नि पिण्ड से हुआ है और वह अग्नि पिण्ड जो प्रकट हुआ था, उसको शिवलिंग कहते हैं। वह न He था, न She थी अर्थात् न पुरुष, न स्त्री, उसका कोई रूप नहीं था। वह लिंग जिस समय विखण्डित हुआ तो उसका प्रकाश भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकट हुआ, उस समय महारात्रि जो महाप्रलय की रात्रि थी, उसका अन्त हुआ था और एक दिव्य प्रभात अर्थात् सृष्टि के प्रभात का प्रारम्भ हुआ था। सनातन धर्म की परिभाषा में उसी सृष्टि के प्रभात को शिवरात्रि कहते हैं। यह वही शिवरात्रि है जिसका हम उत्सव मनाते हैं। यह सृष्टि के आदि का पर्व है और इसके प्रारम्भ में इसकी उपासना करने वाले ब्रह्मा और विष्णु थे। ब्रह्मा वह तत्त्व है जो जगत् का निर्माण करता

है और विष्णु वह तत्त्व है जो जगत् का पालन करता है। जगत् के धाता और विधाता, इन दोनों ने उस तत्त्व की आराधना एवं उपासना की। उसी शिवलिंग की शिवरात्रि व्रत के रूप में आज भी प्रत्येक सनातनी उपासना करता है, उसकी पूजा करता है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि वेद में तत्त्व विज्ञान की जो बातें हैं, यदि आप विज्ञान वा दर्शन को नहीं जानते, केवल पुराण पढ़ते हैं तो आपको वे समझ में नहीं आएंगी। यदि आप दर्शन वा फिलौस्फी को जानते हो, वर्तमान के विज्ञान से भी आप अवगत हैं, सतर्क हैं फिर आप इस रहस्य को बड़े आराम से समझ सकते हैं। आज हमने जो पाठ किया उस पाठ के प्रसंग में एक अद्भुत चरित्र आया, वह चरित्र महात्मा नारद का था। भगवान् की प्रेरणा से नारद का मोहित होना और मोह में कारण उनका अहंकार था। पुराणों में हमें जीवन के अनेक पहलुओं को बड़ी गम्भीरता और सूक्ष्मता से देखने की सीख मिलती है। बड़े से बड़ा काम करके यदि हमारे में अहं आ जाये, अहंकार आ जाये, मैं पंना आ जाये तो हम गिर जायेंगे; यह बात याद रखना। महात्मा नारद भगवान् की कृपा से बदरिकाश्रम में जाते हैं, वहाँ के प्रशान्त वातावरण में बैठकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। देवराज इन्द्र महात्मा नारद को देखकर भयभीत होता है कि कहीं यह तपस्या से मेरा इन्द्रासन ना ले लें। वह कामदेव को भेजता है कि तुम जाकर इनकी तपस्या भंग कर दो। नारद की तपस्या नष्ट करने के लिए कामदेव रति और अपने समाज के साथ जाता है। अनेक प्रकार की काम कला का प्रदर्शन करता है किन्तु नारद के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तुलसीदास जी ने इस कथा को अपनी रामायण में लिखा है। तुलसीदास जी की रामायण में ५० प्रतिशत बातें शिव पुराण की मिलेंगी। उसमें नारद मोह का प्रसंग भी शिव पुराण का ही है। नारद को मोह होने से पूर्व वह कामदेव पर विजय प्राप्त करते हैं। तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं कि नारद काम के वशीभूत क्यों नहीं हुए? वह कहते हैं–

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू।
बड़ रखवार रमापति जासू।।

(रामा० १/१२६–८)

जिसकी रक्षा भगवान् करता हो भला उसकी मर्यादा को कोई तोड़ सकता है? कामादि तो परमात्मा के एक अंश में निवास

करते हैं। परमात्मा स्वयं जिसकी रक्षा करते हों, काम उसका क्या बिगाड़ सकता है?

भयउ न नारद मन कछु रोषा।
कहि प्रिय वचन काम परितोषा।।

(रामा॰ १/१२७–१)

उन्होनें बड़े प्यार से काम को सांत्वना दी, काम उनके चरणों में गिरकर रोने लगा। प्रभो! हमने बड़ा अन्याय किया है, आपका अपकार किया है। नारद जी कहते हैं, कोई बात नहीं, तुम चले जाओ, तुम मेरे दया के पात्र हो। तुम्हारा दोष क्या है? तुम तो सुरपति की आज्ञा से आये हो। स्वामी की आज्ञा का पालन करना तुम्हारा धर्म है। तुमने अपने कत्तव्य का पालन किया है। मैं अप्रसन्न नहीं हूँ। काम के ऊपर ही नहीं बल्कि नारद जी ने क्रोध और लोभ पर भी विजय प्राप्त कर ली। जिसने काम, क्रोध और लोभ, इन तीनों पर विजय प्राप्त कर ली वह परमात्मा ही है। तुलसीदास जी ने लिखा है–

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
लोभ पाँस जेहि गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

(रामा॰ ४/२१–४,५)

नारी के नेत्र रूपी बाण से जो घायल नहीं हुआ अर्थात् काम को जीत लिया, क्रोध की अग्नि में जिसका श्वास नहीं जला अर्थात् क्रोध को जीत लिया और लोभ की फाँसी जिसके गले में नहीं बँधी अर्थात् लोभ को जीत लिया, वह मनुष्य परमात्मा के बराबर है। नारद को अहंकार हो गया कि मैंने काम, क्रोध और लोभ तीनों को जीता है। अब मैं और भगवान् विष्णु दोनों बराबर के हो गये। वहाँ से वे चलकर पहले भगवान् शिव के पास आये। शिव ने पूछा–नारद! बहुत दिनों के बाद तुम दिखाई दिये। उन्होंने सारी कथा सुना दी और कहा कि भगवन्! मैंने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया है। भगवान् शंकर ने कहा–

बार बार बिनवउँ मुनि तोही।
जिमि यह कथा सुनायहु मोही।।

तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ।
चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ।।

(रामा॰ १/१२७–७,८)

"हे मुनि! तुम मेरे बड़े प्रिय हो, इसलिए मैं बार–बार तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि जो कथा तुमने मुझे सुनाई है, इस प्रकार से सारी कथा भगवान् विष्णु को नहीं कह देना।" नारद जी ने सोचा, यह काम को जीते नहीं, काम ने बाण मारा, क्षुब्ध हो गये, क्रोध से उसको भस्म कर दिया। काम और क्रोध से हारे हुए शिव मेरे को ईर्ष्या की दृष्टि से देख रहे हैं क्योंकि मैंने काम और क्रोध को जीत लिया है, यह सोच रहे हैं कि यदि मैंने विष्णु को बता दिया तो इनकी महिमा कम हो जायेगी। केवल अपनी महिमा को रखने के लिये यह मुझे मना कर रहे हैं। नारद ने वहाँ तो कह दिया 'अच्छा ठीक है' किन्तु कैलाश से बाहर निकलते ही सोचा अब मैं सीधा भगवान् विष्णु के पास जाता हूँ, पहले यह शुभ समाचार उनको दूँगा।

शिव पुराण के अनुसार नारद पहले ब्रह्मा के पास जाते हैं। रास्ते में ब्रह्मा भी उनको समझाते हैं लेकिन नहीं मानते, सीधे भगवान् के पास चले जाते हैं। क्षीर सागर में जब नारद पहुँचते हैं, भगवान् उन्हें देखकर 'आइये नारद जी कह कर बुलाते हैं"। उन्होंने देखा नारद को बड़ा अहंकार हो गया है। वीणा पर"श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव" का गायन करने वाला इतना अहंकारी कैसे हो गया? भगवान् मुस्कुराये, दौड़ कर नारद को हृदय से मिले। नारद भगवान् को प्रणाम नहीं करते क्योंकि प्रणाम तो बड़ों को किया जाता है। नारद ने सोचा, अब तो हम बराबर के हो गये, प्रणाम किसको कौन करे? तुलसीदास जी लिखते हैं–

हरषि मिले उठि रमा निकेता।
बैठे आसन रिषिहि समेता।।

नारद बड़े प्रेम से भगवान् के हृदय लगते हैं। भगवान् कहते हैं अब यहाँ आकर बैठ जाओ तो भगवान् की शैय्या पर बैठ जाते हैं क्योंकि अब तो बराबरी की बात हो गयी। सोचते हैं ये काम, क्रोध और लोभ, तीनों को जीते हुए हैं और मैं भी तीनों को जीता हूँ। भगवान् ने मुस्कुरा कर नारद जी से पूछा, नारद–

बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया।

(रा॰ १/१२८–६)

अब तक तुम कहाँ थे, बहुत दिनो के बाद आये?

काम चरित नारद सब भाषे।
जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे।।

(रा॰ १/१२८–७)

नारद ने अपनी पूरी कहानी सुना दी। शिव और ब्रह्मा दोनों ने मना किया था लेकिन बात बनी नहीं क्योंकि उनके मन में था कि शिव और ब्रह्मा मेरे से इर्ष्या करते हैं इसलिये इन्होंने मेरे को मना किया है। भगवान् ने जब सुन लिया–

करुणानिधि मन दीख बिचारी।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।।
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।
पन हमार सेवक हितकारी।।

(रामा॰ १/१२६–४,५)

उन्होंने सोचा नारद मेरा अनन्य भक्त है। भक्त के ह्दय में अहंकार का बीज पड़ गया है। यदि इसको मैं अभी नहीं उखाड़ देता तो वृक्ष बनकर बहुत दुःख देगा इसलिए पहले इसे उखाड़ दें। सेवक के हित के लिये भगवान् का यही प्रण है। भगवान् ने निश्चय करके नारद से कहा–

तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान।

(रामा॰ १/१२८)

अरे नारद! भला तुम्हारे सामने काम की क्या गंध? क्रोध बपुरा क्या कर सकता है? तुम्हारा तो नाम लेने से ही काम, क्रोध और लोभ मिट जाते हैं। भगवान् ने जब यह कहा तो नारद और फूल गये–

नारद कहेउ सहित अभिमाना।
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।।

(रा॰ १/१२६–३)

नारद ने कहा, प्रभो! तुम्हारी कृपा है किन्तु अभिमान में विनम्रता नहीं रहती। कभी–कभी हम किसी के यहाँ जाते हैं तो अच्छी वस्तु देखकर पूछते हैं कि यह क्या है? वह कहता है, सब आपकी कृपा का प्रसाद है। वह जो 'कृपा प्रसाद' कहता है, उसमें

उसकी नम्रता नहीं होती, यह अहंकार से युक्त अपनी बात को व्यक्त करने का एक ढ़ंग है। नारद ने उसी लहजे में भगवान् से कहा–"कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।" भगवान् ने कहा बहुत अच्छी बात है। नारद जी जब विदा होकर वहाँ से चलते हैं तो भगवान शीघ्रातिशीघ्र अपने भक्त का इलाज करना चाहते हैं। नारद अभी कुछ दूर आगे बढे थे। हम जब बदरीनारायण जाते हैं तो पहले श्रीनगर आता है। कश्मीर वाला श्रीनगर नहीं। लोग बताते हैं कि यह वही श्रीनगर है जिसकी भगवान् ने रचना करके नारद का गर्व दूर किया था। भगवान् के यहाँ से चलकर नारद जी बदरीनारायण से कुछ आगे बढ़ते हैं। वहाँ पर पहुँचते ही उनके समक्ष एक विशाल नगर दिखाई देता है। उस नगर के राजा का नाम शीलनिधि है। उसकी एक परम सुन्दरी कन्या जिसका नाम श्रीमति है, गोस्वामी ज़ी ने जिसे विश्व मोहनी कहा है, उसका स्वयंवर हो रहा है, उसमें भाग लेने के लिये देश–देश से राजा लोग आये हुए हैं। नारद जी के जाने पर राजा को समाचार मिलता है तो वह आकर उनके चरणों में प्रणाम करता है। अपनी कन्या को लाकर उनके चरणों में प्रणाम करवाकर कहता है कि प्रभो आप त्रिकालज्ञ हो, इसका भाग्य बताईये। नारद जब कन्या को देखते हैं तो वहीं पर उनका अहंकार–जन्य ज्ञान और विज्ञान सब समाप्त हो जाता है–

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी।
बड़ी बार लगि रहे निहारी।।

(रा०१/१३१–१)

मुनि बार–बार उस कन्या के रूप की और देख रहे हैं। राजा पूछता है, ऋषिवर! आप इसका भविष्य बताइये। नारद कहते हैं, इसका भविष्य बहुत सुन्दर है।

एक बात आप सदैव स्मरण रखिए कि जब मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होती है तो प्रत्येक स्थान पर उसे विपरीत सूझता है क्योंकि–

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।

(गीता १८/३२)

"तमोगुणी बुद्धि का यह लक्षण है कि प्रत्येक अर्थ में उसको विपरीत दिखाई देता है।" नारद ने जब उस कन्या का हाथ देखा तो हाथ की रेखायें बता रही थी–

जो एहि बरइ अमर सोइ होई।
समर भूमि तेहि जीत न कोई।।
सेवहिं सकल चराचर ताही।
बरै सीलनिधि कन्या जाही।।

(रा॰ १/१३१–३,४)

जो दुनिया में अमर होगा, जिसके समान दुनिया में कोई नहीं होगा, युद्ध भूमि में जिसे कोई जीत नहीं सकेगा, समस्त चर–अचर जिसकी सेवा करते हैं, वह इस कन्या का वरण करेगा, यह था उसका अभिप्राय किन्तु मुनि की बुद्धि भ्रमित थी, वह सोचने लगा कि यह कन्या जिसको वरण कर लेगी वह दुनिया में अद्वितीय हो जायेगा, समस्त चर–अचर जीव उसकी सेवा में लग जायेंगे। इस प्रकार से नारद ने सोचा कि यदि कहीं यह कन्या मुझे वरण कर ले, फिर तो बात बन जाये, समस्त चराचर मेरी सेवा करने लग जायेगा। उनको यह समझ नहीं आया कि जिसकी चराचर सेवा करता है, वह इस कन्या को वरण करेगा। नारद जी की धारणा विपरीत होने पर वह विचार करने लगे–

सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं।

(रा॰ १/१३१–६)

तुम्हारी कन्या बड़ी सुलक्षणा है, इतना कहकर नारद जी चल पड़े। रास्ते में विचार करने लगे, यह कन्या मुझे वरण कैसे करेगी? यदि तपस्या करता हूँ तो तपस्या में बहुत दिन लगेंगे। स्वयंवर तो कल होने वाला है इसीलिए–

जप तप कछु न होइ तेहि काला।
हे बिधि मिलइ कवन विधि बाला।।

(रा॰ १/१३१–८)

प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! यह राजकुमारी मुझे कैसे मिले। इस समय न जप होगा, न तप होगा। याद आया–

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ।
एहि अवसर सहाय सोइ होऊ।।

(रा॰ १/१३२–२)

नारद जी के चरित्र से हमें यह भी ज्ञान होता है कि भक्त का आश्रय केवल भगवान् होता है। जैसे छोटा सा बच्चा अपनी माँ का आँचल पकड़ कर कहता है, माँ मेरी शादी करवा दे, मेरी लिये

नई सी दुल्हिन ला दे, बाप से भी कहता है क्योंकि उस छोटे अबोध बालक को पता नहीं होता कि हमें यह कहना है अथवा नहीं कहना है। इसी रूप से भगवान् कहते हैं कि जो भक्त है वह मेरा अबोध बालक है, वह सदैव मेरी ही शरण में आयेगा, चाहे अच्छाई को लेकर आये अथवा बुराई को लेकर आये, आयेगा मेरे ही पास। नारद को जब राजकुमारी को प्राप्त करने की चाह हुई तो उन्होंने निश्चय किया कि प्रभु के अतिरिक्त मेरा कोई हितैषी नहीं है, इस अवस्था में वही प्रभु मेरी सहायता करेंगे। ऐसा सोचते ही प्रभु की स्तुति करने लगे। कौतुकी भगवान् वहीं प्रकट हो गए। भगवान् ने पूछा, नारद जी! तुम घबराये हुए क्यों हो? नारद ने कहा, प्रभो! 'आपन रूप देहु प्रभु मोही', सदैव के लिये नहीं, अल्प समय के लिये आप अपना रूप मुझे दे दें। शिवपुराण में आया है कि नारद जी सोचते हैं कि नारी के लिये आकर्षण का प्रमुख आधार सौन्दर्य ही होता है। भगवान् से सुन्दर दुनिया में कोई नहीं, यदि थोड़े समय के लिये भगवान् उन्हें अपनी सुन्दरता दे दें तब यह राजकुमारी उनके गले में जयमाला डाल देगी। यह विचार कर वे भगवान् से उनका रूप मांगते हैं। भगवान् मुस्कुराये, अरे भई! मेरे रूप को क्या करेगा? मेरा रूप तो ऋषि, योगी लोग मोक्ष के लिये चाहते हैं और तुम मेरे रूप का भोग के लिये दुरूपयोग करना चाहते हो। नारद इस समय कुछ समझ नहीं पा रहे थे। भगवान् से बार–बार यही कह रहे हैं–'आन भाँति नहिं पावौं ओही'। उसको हम ओर रास्ते से पा नहीं सकते। नारद ने एक विशेष बात वहाँ पर कह दी। शिवपुराण में भी वही बात आई और तुलसीदास जी भी यही बात कहते हैं कि नारद प्रार्थना करते हुए भगवान् से कहते हैं–

जेहि बिधि नाथ होई हित मोरा।
करहु सो बेगि दास मै तोरा।।

(रा० १/१३२–७)

सारी प्रार्थना करने के बाद अन्त में यह कह दिया कि हे प्रभो! मैं आपका दास हूँ, जिससे मेरा हित हो, आप वही करना। भगवान् ने कहा, तुम हित की कामना करते हो–

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनिहु तुम्हार।

(रा० १/१३२)

'जिससे तुम्हारा परम हित होगा, वही मैं करूँगा।' एक और बात संकेत में कह दी–

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।।

(रा॰ १/१३३–१)

अरे मुनि! तुम तो योगी हो, यदि रोगी कुपथ्य मांगे, क्या वैद्य देता है? नहीं देता? तुम योगी हो, बस इतना समझ जाओ। कहने का अभिप्राय तुम्हारे लिये स्त्री कुपथ्य है और वह तुम्हें मिलने वाली नहीं। संकेत तो कर दिया किन्तु तुलसीदास जी कहते हैं–

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा।
समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा।।

(रा॰ १/१३३–३)

नारद जी भगवान् के इस संकेत को समझ नहीं पाये क्योंकि माया के वशीभूत हुए मुनि उस समय मूढ़ हो चुके थे। यहाँ पर प्रश्न बड़ा मज़ेदार है। रामायण में दो योगियों की कथा आती है। एक योगी शिव हैं और दूसरे योगी नारद। शंकर से तो भगवान् राम स्वयं जाकर कहते हैं–

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मांगे देहु।।

(रा॰ १/७६)

'हे शिव! मेरे ऊपर आप यदि प्रसन्न हैं, मुझे अपना हितैषी मानते हैं तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जाकर गिरिजा से विवाह कीजिए।' एक योगी विवाह नहीं करना चाहता तो भगवान् जबरदस्ती उसका विवाह करवा रहे हैं और एक योगी विवाह के लिये रो रहा है तो भगवान् कह रहे हैं, नहीं, यह तुम्हारे लिये कुपथ्य है। इसमें कारण क्या है? आपको एक फिलौस्फी की बात बताऊँ।

वैदिक सनातन धर्म में विवाह का प्रयोजन निर्माण है, सृजन है संभोग नहीं। संभोग तो पथ में मिलने वाली छाया के समान सुख है। जहाँ पर लक्ष्य निर्माण है, सृजन है और संभोग उसके पीछे है वहाँ पर सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होती है किन्तु जहाँ पर प्रयोजन सृजन नहीं है, निर्माण नहीं है केवल भोग है, वहाँ पर सौन्दर्य की नहीं असौन्दर्य की प्रतिष्ठा होती है। भगवान् शंकर के विवाह में मूल

कारण है सृजन। देवता लोग तारकासुर से व्यथित हैं, उसके लिये यदि भगवान् शंकर का विवाह हो जाये तो–

संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ।

(रा॰ १/८२)

'भगवान् शिव से कोई पुत्र उत्पन्न होगा तो वह इस राक्षस का नाश करेगा।' देवता लोग भगवान् विष्णु से प्रार्थना करते हैं, तब भगवान् विष्णु शंकर से प्रार्थना करते हैं कि आप विवाह कर लें। किसलिए? सृजन के लिए। कैसा सृजन? जो लोक के लिए मंगलकारी हो। यदि संभोग में सृजन हो जाए तो लोक के लिये मंगलकारी नहीं होता; क्योंकि वहाँ लक्ष्य संभोग है सृजन नहीं। भगवान् प्रार्थना करते हैं शिव से कि आप उमा से विवाह करें परन्तु उसके लिये शिव आतुर नहीं हैं, यह गम्भीर बात समझने की है। शिव आतुर नहीं हैं, वह तो अकाम, निष्काम होकर बैठे हैं, शक्ति जो सृजन का माध्यम बनने वाली है, वह तपस्या कर रही है, वह छल नहीं रही, हाव–भाव प्रदर्शन नहीं कर रही, वहाँ नाटक नहीं हो रहा है, बल्कि पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या कर रही है। शिव समाधिस्थ हैं, उदासीन बैठे हुए हैं। शिव पार्वती के संयोग से ही सृजन होगा जो लोक के लिये मंगलकारी होगा। ऐसे सृजन की भावना से भगवान् विष्णु शंकर से प्रार्थना करते हैं–

जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मांगे देहु।

(रा॰ १/७६)

इस सृजन में संभोग नहीं, ऐसी बात नहीं। शिव पुराण में शिव और पार्वती के विवाह का बड़ा वृहद् विवेचन है किन्तु वह विवाह सृजन का माध्यम है, स्वयं में लक्ष्य नहीं है। "पुत्रार्थे हि भार्या" ऐसा नीति शास्त्र का सन्देश है। जहाँ पर सन्तान के लिये विवाह सम्बन्ध किया जाता है, उसमें सृजन लक्ष्य होता है संभोग उसका माध्यम होता है, किन्तु नारद के जीवन में सृजन का कोई लक्ष्य नहीं है। नारद तो उसके आकर्षण से विमोहित हो रहे हैं और वहाँ पर कन्या उनके लिये तपस्या नहीं कर रही है। आप इस बात को ध्यान से समझें कि वहाँ भोक्ता पुरुष तपस्या नहीं कर रहा है, बल्कि वह अपने सौन्दर्य वृद्धि के लिये प्रार्थना कर रहा है, सौन्दर्य से युक्त सौन्दर्य की खोज कर रहा है। इसलिए ऐसी स्थिति में जो कुछ निर्माण होगा वह असुन्दर होगा, लोक कल्याणकारी नहीं होगा बल्कि

अकल्याणकारी होगा। भगवान् स्वयं ऐसे अहितकारी कार्य में किसी महाशक्ति को प्रयुक्त नहीं कर सकते इसलिए नारद के चाहते हुए भी भगवान् कहते हैं कि यह विवाह नहीं होगा।

वहाँ शंकर और पार्वती दोनों तप में बैठे हुए हैं। सनातन धर्म के सिद्धान्तानुसार विवाह से पूर्व कन्या और वर को ब्रह्मचर्यमय, तपमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। वहाँ पर रूप नहीं एक दूसरे के गुण पर आकर्षण होता है। वहाँ पर बाह्य आकर्षण के लिये स्थान नहीं है, बल्कि आन्तरिक आकर्षण के लिये व्यवस्था है। वैदिक विधान में विवाह का प्रयोजन सन्तान की उत्पत्ति है किन्तु नारद के इस विवाह में कोई ऐसी भावना नहीं है। यहाँ पर तो केवल सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे प्राप्त करने के लिये प्रभु से सौन्दर्य की आकांक्षा है, लालसा है, प्रार्थना है। भगवान् ने सौन्दर्य नहीं दिया, परिणाम क्या हुआ? भगवान् ने शरीर नीलवर्ण का बना दिया और मुँह बन्दर का देकर भेज दिया। नारद बड़े मग्न थे कि मुझे भगवान् का रूप मिल गया। जब सभा में गये तो वहाँ सभी ने उनको प्रणाम किया। नारद यह सोचते हैं कि लोग मुझे विष्णु जानकर प्रणाम कर रहे हैं। सारी सभा तो नारद को नारद ही देख रही है, प्रणाम कर रही है। ऋषि आ गये, सभा–मण्ड़प में उनका स्वागत किया किन्तु जब राजकुमारी जयमाला लेकर घूमने लगी–

जेहि दिसि बैठे नारद फूली।
सो दिसि तेंहि न बिलोकी भूली।।

(रा॰ १/१३५–१)

जहाँ नारद बैठे हुए थे, उस ओर उसने देखा ही नहीं। तुलसीदास जी लिखते हैं–

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।
देखि दसा हर गन मुसुकाहीं।।

(रा॰ १/१३५–२)

नारद जी बारम्बार उचक–उचक कर देख रहे हैं कि राजकुमारी इधर आये। जब वह घूमकर पास से निकल जाती है तो उसके आगे जाकर खड़े हो जाते हैं किन्तु राजकुमारी उनको देख नहीं रही। इतने में भगवान् स्वयं राजकुमार का वेश बनाकर आते हैं। राजकुमारी उनके गले में जयमाला डालती है और चले जाते हैं। नारद अति व्याकुल हो जाते हैं–

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी।
मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।।

(रा० १/१३५–५)

मुनि इतने व्याकुल हैं, मानो उनकी बहुत बड़ी अमूल्य निधि खो गई हो। रोते हुए जा रहे थे, इतने में शिव के दो गण जो उनके साथ थे, उन्होंने कह दिया–"निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई" अरे आप इतने उचक रहे थे, क्या बात है? आपने अपना रूप देखा है? नारद ने सोचा मेरी शक्ल को क्या हुआ, मैं तो भगवान् हूँ। उन्होंने कहा–जाकर देखो तो! तुलसीदास जी लिखते हैं–"बदन दीख मुनि बारि नीहारी" मुनि तो आखिर मुनि थे, कोई आजकल के लड़के तो थे नहीं कि जेब में कंघी और शीशा ले सदैव अपनी शक्ल देखते रहें। उन्होंने पानी में जाकर अपनी शक्ल देखी–

बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा।
तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा।।

(रा० १/१३५–८)

पहले काम और क्रोध को जीता था, यहाँ काम और क्रोध दोनों आ गये। रुद्रगणों को श्राप दिया, वही रुद्रगण आकर रावण और कुम्भकर्ण बने। नारद जी क्रोध में चले जा रहे थे कि जाकर भगवान् की खबर लूँगा। भगवान् विष्णु रास्ते में मिल जाते हैं। राजकुमारी उनके साथ है, देखते ही क्रोध आ गया और कहने लगे–

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू।

(रा० १/१३७–३)

तूने दुनिया में बहुत को ठगा है। ठग कर तू परच गया है लेकिन आज मैं तेरी सारी कसर निकालूँगा।

अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा।

(रा० १/१३७–४)

अब तक तुम्हें कोई ठीक करने वाला मिला नहीं था किन्तु आज तुम मेरे पाले पड़े हो। इतना कहकर श्राप दिया–

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।
सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा।।

(रा० १/१३७–६)

जिस राजकुमार का शरीर धारण करके मुझे ठगा है, जाओ तुम्हें वही राजकुमार होना पड़ेगा–

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।।

(रा० १/१३७–७)

मेरी शक्ल तुमने बन्दर की बनाई है, वही बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे–

मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी।
नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।।

(रा० १/१३७–८)

जैसे आज मैं स्त्री के लिये रो रहा हूँ ऐसे तू भी स्त्री के लिये रोयेगा। भगवान् अपनी माया की महिमा देख मुस्कुराते हुए–

श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया के प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि।।

(रा० १/१३७)

उनके श्राप को शिरोधार्य किया, बारम्बार प्रार्थना करके भगवान् ने अपनी माया समेट ली–

जब हरि माया दूरि निवारी।
नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।।

(रा० १/१३८–१)

प्रभु ने जब अपनी माया हर ली तो न वहाँ लक्ष्मी थी और न राजकुमारी थी। नारद के समक्ष केवल भगवान् थे। नारद की जब माया दूर हुई तो प्रभु के चरणों में गिरकर रोने लगे, प्रभो! आप मेरा अपराध क्षमा करें। भगवान् ने कहा–

मम इच्छा कह दीन दयाला।

(रा० १/१३८–३)

यह तो मेरी रुचि थी। नारद कहते हैं, मेरा पाप कैसे कटेगा? भगवान् कहते हैं–

जपहु जाइ संकर सत नामा।
होइहि हृदय तुरत विश्रामा।।
जेहि पर कृपा न करहि पुरारी।
सो न पाव मुनि भगति हमारी।।

(रा० १/१३८–५,७)

तुम जाकर भगवान् शंकर के सत नाम का जाप करो, तभी तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलेगी। हे मुनि! भगवान् शंकर जिसके

ऊपर कृपा नहीं करते, वह मेरा कृपापात्र नहीं हो सकता, मेरी भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। शिवपुराण में भी यही प्रसंग है। महारुद्र संहिता में नारद ने ब्रह्मा के चरणों में बैठकर के शिव तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की। नारद जी ने कहा प्रभो! जिस शिव की भक्ति के बिना विष्णु को कोई प्राप्त नहीं कर सकता, वह शिव कौन है, आप मुझे समझा दो। मैं तो शिव को अपना भाई समझता था क्योंकि शिव ब्रह्मा के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं और वह सोचते थे कि यह मेरा भाई है। शिव तत्त्व का उन्हें बोध नहीं था। आज रुद्र संहिता का जो पाठ हुआ है और कुछ आगे होगा, उसमें नारद शिव तत्त्व के विषय में प्रशन करते हैं और ब्रह्मा उनको समझा देते हैं। इस विषय में कल आपको बतायेंगे।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१३/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

कल की कथा में आप लोगों को बहुत सी बातें बताई गई थी। मुझे विश्वास है कि आप लोग बहुत कुछ समझे होगें। कल मैंने आपको एक बात बताई थी कि सृष्टि के विषय में सनातन धर्म का जो सिद्धांत आज से हज़ारों वर्ष पूर्व निश्चित किया गया था, वर्तमान के वैज्ञानिकों ने उसकी खोज करके उसे स्वीकार किया है। अन्तर इतना है कि सनातन धर्म की भाषा में एवं वर्तमान की वैज्ञानिक भाषा में भेद है। सनातन धर्म सृष्टि को परमात्मा की अभिव्यक्ति मानता है, परमात्मा का अवतरण मानता है, परमात्मा का प्राकट्य मानता है और वैज्ञानिक इसे प्रकृति का विकास मानते हैं। यदि कोई भौतिक दृष्टि से परमात्मा के स्थूल रूप को प्रकृति कहे, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि प्रकृति भी परमात्मा की शक्ति है। उसी को उमा, शिवा, पार्वती, भगवती एवं दुर्गा कहते हैं अर्थात् अनेक नामों में उस प्रकृति की महिमा का गान होता है। वही प्रकृति परमेश्वर के आश्रित होकर अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना करती है इसलिए यदि वैज्ञानिक उसे प्रकृति कहते हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं, भेद नहीं एवं अनर्थकारी बात भी नहीं है। हम भी वही कहते हैं कि यह सृष्टि प्रकृति का विलास है किन्तु प्रकृति विलास को तब प्राप्त होती है जब उसे पुरुष का प्रकाश मिलता है। अभी वैज्ञानिक पुरुष के प्रकाश तक नहीं पहुँचा है, अभी वह प्रकृति के विलास की खोज कर रहा है और मुझे विश्वास है कि धीरे-२ चलते हुए एक दिन वह प्रकृति के विलास को पार कर पुरुष के प्रकाश का भी अनुभव करेगा।

उपनिषद् में एक बड़ी सुन्दर कथा है। एक शिष्य गुरु के पास जाता है। गुरु के चरणों में प्रणाम कर प्रश्न करता है—गुरुदेव! वह परम तत्त्व क्या है, उसके विषय में आप मुझे बताइये? गुरु

कहता है–वत्स! परम तत्त्व की व्याख्या नहीं होती।

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।

(तैत्ति॰ ३/२)

'तप के द्वारा तू परमतत्त्व ब्रह्म को जानने की चेष्टा कर।' वह माना नहीं जाता जाना जाता है। उसकी व्याख्या नहीं की जाती वा सुनी नहीं जाती, उसको अनुभव किया जाता है। अनुभव कैसे होगा? गुरु कहता है "तपसा" तप के द्वारा। शिष्य कहता है, गुरुदेव! कोई लक्षण तो बता दीजिये। हम कैसे समझें कि हम उस परम तत्त्व को जान गये। गुरु ने लक्षण बताया–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि। जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।

(तैत्ति॰ ३/१)

'जिससे यह समस्त भूत समुदाय प्रकट होकर पालित होता है और अन्त में जिसमें लय हो जाता है, वही परम तत्त्व है, वही ब्रह्म है।' शिष्य ने यह लक्षण समझ लिया, अब वह अनुसंधान में लग गया। जानते हो सबसे पहले उसे क्या अनुभव हुआ था? सबसे पहले उस शिष्य को अनुभव हुआ–

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

(तैत्ति॰ ३/२)

अन्न ही ब्रह्म है क्योंकि अन्न से ही सारे जीव पैदा होते हैं। विश्व में जहाँ कहीं भी जीवन होता है अन्न से ही पैदा होता है। अन्न न हो तो जीव पैदा नहीं हो सकता। यह पूरा का पूरा पार्थिव है, पूरा का पूरा प्राकृत है किन्तु शिष्य ने उसी प्रकृति को ही परमात्मा समझा। उसने जब अनुभव किया कि अन्न से ही सृष्टि होती है, अन्न से पलती है, मरने के बाद भी अन्न में ही उसका लय होता है, इसलिए अन्न ही ब्रह्म है, वह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रसन्नता से गुरुदेव के पास आया, चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बैठ गया। गुरुदेव ने पूछा–वत्स! आज तुम बहुत प्रसन्न हो? शिष्य ने कहा–गुरुदेव! मैंने ब्रह्म को समझ लिया। पूछा–क्या समझे बेटे? उसने अपनी बात दोहरा दी–

अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

अन्न से ही सृष्टि उत्पन्न होती है इसलिए 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।' गुरु मुस्कराये, गुरु ने यह नहीं कहा कि तुम गलत कह

रहे हो, अज्ञानी हो, तेरे को रोटी ही दिखाई दे रही है। गुरु ने कहा, वत्स! जो तू कह रहा है, सत्य है किन्तु–

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।

(तैत्ति॰ ३/२)

तपस्या करो, अभी तो उसकी एक सीढ़ी तुमने देखी है। तपस्या करके तुम्हें पता चलेगा कि इससे आगे क्या है? शिष्य जाकर तपस्या करता है फिर मनन करता है। तपस्या के पश्चात् उसे पुनः अनुभव होता है, वह विचार करता है कि मैंने गलत समझा है। सोचता है, यदि शरीर में प्राण न हो तो भूख लग सकती है? यदि भूख नहीं लगेगी तो अन्न कौन खायेगा? प्राण के बिना कोई सृष्टि हो सकती है? जब कोई जीवित ही नहीं रहेगा तो सृष्टि कहाँ से होगी? प्राण से ही आदमी पलता है और यदि मर गया तो उसका क्या गया? प्राण निकल गया, यही न! अब उसने जाना कि मैंने सही बात समझ ली। दौड़ा हुआ गुरु के चरणों के पास आया। गुरुदेव! अब मैं समझा। क्या समझा?–"प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्", प्राण ही ब्रह्म है, ऐसा मैंने जाना है। गुरु ने पूछा, कैसे? कहा –

प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

(तैत्ति॰ ३/३)

जब तक शरीर में प्राण चलता है तभी तो सृष्टि होती है। प्राण चलता है तभी आदमी पलता है, प्राण निकल जाये तो आदमी राम–नाम सत् हो जाता है, इसलिए प्राण ही ब्रह्म है। गुरु पुनः मुस्कराये, उन्होंने कहा–वत्स! यह दूसरी सीढ़ी है।

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।

(तैत्ति॰ ३/३)

जाओ पुनः तप करो। वह जाकर तप करता है, तप करते हुए सोचता है, प्राण ब्रह्म नहीं हो सकता। प्राण से सृष्टि हो, यह कोई नियम नहीं है। प्राण होते हुए भी सृष्टि नहीं होती, प्राण से सृष्टि पलती है, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। इसमें क्या कारण है? प्राण है, शरीर है, सब कुछ है किन्तु यदि मन उसके साथ न हो, यदि मन में संकल्प न हो तो क्या स्त्री–पुरुष का कभी संयोग होगा? नहीं होगा। बिना संयोग के सृष्टि नहीं होगी। मन न हो तो किसी की संभाल नहीं की जा सकती है। बिना संभाल के पालन

होगा? नहीं, इसलिए मन ब्रह्म है—

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति॰ ३/४)

उसने जाना कि मन ही ब्रह्म है। प्रसन्न होता हुआ गुरु के पास दौड़ा गया। गुरु से कहता है कि गुरुदेव ! अब मैं वास्तविक बात समझ गया। गुरु पूछता है, अब क्या समझा? उसने दोहरा दिया—'मनो ब्रह्मेति', ऐसा अनुभव किया है। गुरु मुस्कराये, कहा बहुत निकट पहुँच गया है। वत्स! एक कदम और शेष है, जाओ पुनः तपस्या करो।

शिष्य विचार करने लगा कि मन से परे कुछ दिखाई नहीं देता। मन से परे क्या है? जो सृष्टि, पालन, प्रलय में कारण है, उसे वह समझ नहीं सका। तपस्या में लगा रहा, बहुत दिनों बाद जब मन का संयम हुआ तो उसे एक प्रकाश दिखाई दिया। आनन्द में निमग्न हो गया, अब मैं समझा—

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति॰ ३/५)

'विज्ञान ब्रह्म है'। मन होते हुए यदि बोध वा ज्ञान नहीं है तो सृष्टि नहीं हो सकती। ज्ञान के बिना पालन नहीं हो सकता, ज्ञान में ही सृष्टि का लय होता है इसलिए ज्ञान ब्रह्म है। गुरु के पास भागा आया, पुनः उसने अपनी सारी अनुभूति सुनाई। गुरु ने कहा—बेटे! अब एक कदम और रह गया है। अब लौट कर आया, विचार करने लगा कि ज्ञान से ऊपर और क्या हो सकता है? अनुसंधान करने लगा। अनुसंधान के पश्चात् कुछ दिनों बाद उसे एक दिव्य ज्योति का दर्शन हुआ। उसने समझा, अब मैंने समझ लिया। क्या समझा? शरीर, प्राण, मन, विज्ञान और बुद्धि, इन चारों से सृष्टि न होती है, न पलती है और न इनमें लय होती है। विचार करने लगा कि इनके पीछे एक और सत्ता है। वह क्या है? वह कहता है—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति॰ ३/६)

आनन्द ही ब्रह्म है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

'आनन्दस्वरूप परमात्मा के बिना बुद्धि की गहन गति नहीं है, मन की गति नहीं है, इन्द्रियों का कहीं ठिकाना नहीं है और प्राण का अस्तित्व नहीं है, फिर इस शरीर की तो बात ही क्या कही

जाये! आत्मा के अभाव में, आनन्द एवं रस–स्वरूप परमात्मा के अभाव में इनकी कोई स्थिति नहीं है। अब उसने अनुभव किया–

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति।

(तैत्ति॰ ३/६)

'आनन्द से ही सृष्टि होती है, पलती है और इसी में लय हो जाती है'। समस्त क्रियायें किसके लिए हो रही हैं? मनुष्य क्या चाहता है? कोई क्रिया आनन्द के अभाव में की जा सकती है? नहीं की जा सकती। स्त्री पुरुष को प्यार करती है, पुरुष स्त्री को, माँ बच्चे को और बच्चा माँ को प्यार करता है, किसलिए? केवल आनन्द के लिए। हम संसार में रातों–दिन धन के पीछे दौड़ रहे हैं। लक्ष्य क्या है? इससे आनन्द मिलेगा। मिलता है वा नहीं, यह अलग बात है। धन से आनन्द खरीदा जा सकता है वा नहीं, वह दूसरी बात है किन्तु दौड़–धूप तो इसी के लिए है कि शायद कहीं से आनन्द मिल जाये या उसकी एक झलक मिल जाये। जब उसने यह अनुभव कर लिया कि आनन्द ही ब्रह्म है तो उसके बाद वह गुरु जी से पूछने नहीं गया। क्यों नही गया, जानते हो? आपको जब अपनी बात पर पूर्ण विश्वास न हो तब आप दूसरे के पास पुष्टि करवाने के लिए जाते हो। आप सोचते हो कि दूसरा यह कह दे कि हाँ यह बात ठीक है। कई लोग अपनी बात को सिद्ध करवाने के लिए बार–बार पूछते हैं कि व्यक्ति उनकी बात को ठीक कह दे। जब वे सुनते हैं कि वे ठीक कह रहे हैं तो उनको सन्तुष्टि हो जाती है। यदि कोई कह दे कि ठीक नहीं है तो दो प्रकार की प्रतिक्रियायें होती हैं। एक तो वह मूर्ख आदमी है, उसको कुछ पता नहीं कि मेरा विश्वास ठीक है। क्रोध आयेगा। क्यों? निर्बलता के कारण, आशंका वा भ्रम के कारण या दूसरा यह कि इतने बड़े आदमी ने कहा है ठीक नहीं, तो जरूर ठीक नहीं होगा। इसलिए शास्त्र कहता है कि जब तक तुम अपनी बात के लिए दूसरे का समर्थन चाहते हो तो तुम्हारा विश्वास कच्चा है, अनुभूति नहीं है, तुम्हारी मान्यता अन्धी है, अन्धी मान्यता में ही चाहते हैं कि दूसरा हमारी बात का समर्थन कर दे। दूसरे से हम उस समय पूछना चाहते हैं जब अपने पर विश्वास नहीं होता और जहाँ प्रत्यक्षानुभूति हो जाये वहाँ अपने पर विश्वास हो जाता है। जब हम अन्तिम छोर

पर पहुँच जाते हैं तो उस समय हमें आवश्यकता नहीं पड़ती कि हम किसी से पूछें कि हम ठीक कर रहे हैं वा गलत। वह जानता है कि अब आगे किसी के न्याय की आवश्यकता नहीं है इसलिए वह गुरु के पास दुबारा नहीं गया।

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

(तैत्ति॰ ३/६)

उसने निश्चय किया कि–"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।" तैत्तिरी–योपनिषद् का यह रहस्य है, तत्त्व है जो मैंने अभी आपको सुनाया।

मेरे कहने का अभिप्राय कि जब व्यक्ति किसी अनुसंधान में लगता है तो सबसे पहले उसके समक्ष स्थूल तत्त्व आता है। आजकल के वैज्ञानिक जो अनुसंधान में लगे हैं, उनके समक्ष भी पहले स्थूल तत्त्व आयेगा। यदि वे स्थूल तत्त्व से आगे बढ़ें जैसा छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है, 'चरैवैति–चरैवैति', आगे चलो, आगे चलो, जहाँ जाने का रास्ता बन्द हो जाये, जहाँ से तुम चले, वहीं पहुँच जाओगे तो तुम्हारे जीवन की यात्रा समाप्त हो जायेगी। पूछा–यदि वहीं पहुँचना है तो आगे क्यों जायें? कहा कि आगे चलते–चलते तुम वहीं पहुँच जाओगे जहाँ से तुम चले थे इसीलिए हमारे यहाँ सृष्टि को चक्र कहा जाता है। चक्र कौन सा? वह गोला सा जो घूमता है। उस चक्र का कहीं आरम्भ नहीं और न कहीं अन्त है? यह एक गोल वस्तु है, उसका आरम्भ कहाँ है, क्या बताओगे? जहाँ तुम खड़े हो वहीं से उसका आरम्भ और अन्त है। सृष्टि के चक्र की भी यही कथा है, इसका यही स्वरूप है इसीलिए इस सृष्टि चक्र को हमारे यहाँ आदि–अन्त रहित बताया गया है। इसका न आदि, न मध्य और न अन्त है। आदि–मध्य–अन्त रहित जो है वही नित्य तत्त्व है, वही सत्य तत्त्व है और वही परमात्मा का स्वरूप है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि प्राचीन ऋषियों ने अनुसंधान करके परम तत्त्व का अनुभव किया, जाना, देखा और पहचान कर उन्होंने अपने ग्रन्थों में उसका वर्णन किया।

शिव पुराण में सृष्टि का जिस ढंग से वर्णन है, ठीक उसी प्रकार की व्याख्या आज के वैज्ञानिक भी करते हैं। कल मैंने आप लोगों को थोड़ा सा समझाया था किन्तु उनकी समझ और ऋषियों की समझ में अन्तर है। अन्तर केवल इतना है कि ऋषियों ने स्थूल से जो परे है उसको भी समझा किन्तु वैज्ञानिक अभी स्थूल को ही

देख पा रहा है। उससे जो परे है, वह उसकी खोज में है और एक दिन उसे भी प्राप्त कर लेगा। आप लोगों को तो मालूम है कि इस समय विज्ञान के क्षेत्र में जीवन तत्त्व का अनुसंधान प्रारम्भ हो चुका है। आजकल भौतिक विज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण विज्ञान जो विशेष कर अमेरिका की यूनिवर्सिटी में मैंने देखा, वहाँ मनोविज्ञान का अध्ययन चल रहा है। मनोविज्ञान और जीवन विज्ञान का इतनी तीव्र गति से अनुसंधान हो रहा है जिसकी आप लोग कल्पना नहीं कर सकते। भारत के लोगों से भी मैं बात किया करता हूँ कि तुम लोग पुस्तक पढ़ लेते हो, समझते हो कि बहुत बड़ी बात जान ली गई है। जीवनी शक्ति के अनुसंधान में अमेरिका के लोग इतने तल्लीन हैं और इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ रहे हैं कि तुम उसकी कल्पना नहीं कर सकते।

१९८० की बात है, अमेरिका की वरजीनिया नोरफोक यूनिवर्सिटी की एक प्रोफेसर थी। मेरे प्रवचन के पश्चात् वह उठकर मेरा धन्यवाद करने लगी, उसने कहा मैं ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि आज तक मैंने इस यूनिवर्सिटी में जिस साईकालोजी विषय में अनुसंधान किया है, वह सब मेरा एक भ्रम था क्योंकि जिस चेतन सत्ता की आपने बातें की हैं, उसके विषय में हमने कभी सोचा नहीं। साइकालोजी के सिद्धान्तानुसार जो कुछ हम देख रहे हैं वह मन का ही कार्य है। आपके मन की जो क्रिया है, वही सारे प्रपंच का मूल आधार है और उसी के द्वारा यह समस्त प्रपंच चल रहा है। मेरा सिद्धान्त इस विषय में अलग है। जब मैंने उन लोगों के समक्ष प्रश्न के साथ वह सिद्धान्त रखा कि मन स्वयं में एक कार्य है या कारण? कार्य माने परिणाम है या कारण है? तुम ऐसा विश्वास करते हो कि मन स्वयं में कारण है तो इसका अभिप्राय यह होता है कि कारण में जो कुछ भी निहित है कार्य में उसी की अभिव्यक्ति होती है इसलिए मन से कोई वस्तु अज्ञात वा अछूती नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात जो कारण है वह एकदेशीय नहीं हो सकता। यदि कोई वस्तु सीमित है तो वह कारण नहीं हो सकती। यदि सीमा तक ही उसमें गति वा ज्ञान है तो कारण नहीं हो सकता। कारण के कुछ लक्षण बताये गये हैं। यदि तुम यह विश्वास करते हो कि मन स्वयं में कारण नहीं है, वह तो कार्य है तो What is the cause of mind, फिर वह मन क्या है? मैंने उन लोगों से यह कहा कि तुम लोग जो

यह कहते हो कि यह लोअर कान्शोयिशनैस है, वह हायर कान्शोयिश–नैस है, यह सब कान्शोयिशनैस है, कान्शोयिशनैस है, beyond consciousness या तुम इसे Super Conscious मानते हो तो क्या तुम चेतना को कोई पार्थिव तत्त्व मानते हो? नहीं। यदि चेतना पार्थिव तत्त्व नहीं है तो क्या उसका विभाजन हो सकता है? जो पार्थिव नहीं, परमाणुओं का संघात नहीं है, क्या तुम विश्वास करोगे कि मन पदार्थों के संघात से बन गया है? यदि तुम कहते हो कि पदार्थों का संघात नहीं है तो क्या तुम उसको विभाजित कर सकते हो? तुम कहोगे कि विभाजन तो नहीं कर सकते। जब विभाजन नहीं कर सकते तो कैसे कह सकते हो कि यह Lower Consciousness है वा Higher Consciousness है, Sub Consciousness या Unconscious है? मन के विभाजन का कोई आधार नहीं। दूसरी बात मन कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसको पकड़ा जा सके, जिसको मापा जा सके, इसलिए दोनों अवस्थाओं में यह निश्चित होता है कि मन तुम्हारा कार्य है कारण नहीं। मन का जो कारण है, उसकी खोज करो। वेदान्त उसकी बात करता है जो मन का कारण है। उपनिषद् का मन्त्र है–

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

(केन॰ १/५)

केनोपनिषद् में यह बात बताई गई कि मन के द्वारा जो मनन नहीं किया जा सकता, मन जिसके द्वारा मनन करने की शक्ति प्राप्त करता है, "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि" उसको तुम परम सत्य समझो। "नेदं यदिदमुपासते" यह कह कर तुम जिसकी उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है यानी मन के द्वारा ब्रह्म का मनन नहीं हो सकता, मन ब्रह्म से मनन करने की शक्ति प्राप्त करता है। छान्दोग्योपनिषद् में इसका बड़ा सुन्दर एवं वृहद विवेचन किया गया है।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि भारतीय मनीषियों (अध्यात्म वैज्ञानिकों) ने बहुत उच्चतम अवस्था में इस परम तत्त्व का अनुसंधान किया था। मैं ऐसा समझता हूँ कि आधुनिक वैज्ञानिक भी इस दिशा में आगे बढ़ रहा है, वह भी एक न एक दिन इस परम तत्त्व का अनुसंधान करके इसे स्वीकार करेगा। आईनस्टाईन ऐसे

कई वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने उस परम सत्ता को स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने यह विश्वास किया है कि इस सृष्टि में आपको सब जगह जो व्यवस्था दिखाई दे रही है, इस व्यवस्था के पीछे कोई ज्ञानमय तत्त्व है। ज्ञानमय तत्त्व ही वेदान्त का ब्रह्म है। इस व्यवस्था के लिए वेद में दो शब्द आये हैं–सत्य और ऋत। आप लोगों ने सुना होगा कि प्रत्येक हिन्दू सन्ध्यावंदन करते समय "ऋतं च सत्यं च" ऋग्वेद का यह मन्त्र बोलता है। सृष्टि के आधार एवं व्यवस्था में ऋत और सत्य दो तत्त्व काम कर रहे हैं। ऋत क्या है? ऋत वह नियम है जिसके आधार पर अनन्त ब्रह्माण्ड अपने–अपने स्तर पर स्थित हैं, अपनी–अपनी धुरी पर घूम रहे हैं, गति के साथ चल रहे हैं। अपने आप में जो गति है, गति में जो सारी व्यवस्था है, उसको वेद ने ऋत कहा है और जिसमें गति है, जो गति रूप में गति कर रहा है, जो तत्त्वात्मक है, उसको वेद ने सत्त कहा है। सत्त और ऋत ही सृष्टि के आधार हैं। ऋत और सत्य के द्वारा ही सारी सृष्टि चल रही है। वैदिक ऋषियों ने उस परम तत्त्व का अनुसंधान किया है, उस सत्य तत्त्व को ही उन्होंने ब्रह्म कहा है। वही सत्य तत्त्व शिव रूप है। शान्तं–शिवं–अद्वैतम् ऐसा उपनिषद् कहती है। वह शान्त, शिव और अद्वैत है। वह परम सत्ता शिव नाम से कही जाती है और उस शिव की महिमा का हम लोग गान कर रहे हैं। शिव पुराण में उस सृष्टि से जो नियम पूर्वक एक विशाल अण्ड का आविर्भाव हुआ, उसको शिवलिंग कहा जाता है। लिंग नाम क्यों पड़ा? पश्चिम के विद्वानों ने इस सम्बन्ध में एक और कहानी गढ़ी, वह भी आप लोगों की सुना दूँ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य पहले भारत के पूर्वी इलाके पर हुआ। बर्तानिया सरकार का बंगाल से राज्य प्रारम्भ हुआ था। सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यापार करने आई थी, बाद में उसने सेना बुलाकर बहुत बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ पर इनका शासन हुआ। उस शासन की व्यवस्था में एक अंग्रेज कलकत्ता में जज बन कर गया और बहुत दिनों तक वहाँ रहा और देखा कि यहाँ के लोगों के दिल–दीमाग में यहाँ की भूमि के प्रति बहुत बड़ी आस्था है। उसने इसका कारण ढूँढने की चेष्टा की और जाना कि यहाँ के लोगों के हृदय में अपने धर्म ग्रन्थों के प्रति बहुत आस्था है। उसने भारतीय धर्म ग्रन्थों का अध्ययन

करने के लिए किसी ब्राह्मण की तलाश की क्योंकि धर्मग्रन्थ सभी संस्कृत में थे। उस जज को संस्कृत पढ़ाने के लिए ब्राह्मण बुलाया गया किन्तु उसने कहा कि मैं संस्कृत पढ़ा नहीं सकता क्योंकि यह देव भाषा है और किसी मलेच्छ को नहीं पढ़ाई जा सकती। यह सुनकर वह बड़ा दुःखी हुआ। तब उसने एक लोभी पण्डित ढूँढा। सब जगह ऐसे ईमानदार पंडित तो होते नहीं प्रत्येक धर्म में प्रत्येक स्थान पर ऐसे लोग मिल जाते हैं। दूसरे पण्डित को कहा कि तुम साहब को संस्कृत पढाओ। धन के लोभ में उनको दूसरा ब्राह्मण संस्कृत पढ़ाने लगा। संस्कृत पढ़ने के पश्चात् उसने हमारे ग्रन्थ पढ़ने प्रारम्भ किये और विचार किया कि ये तो बड़े अमूल्य ग्रन्थ हैं। यदि इन ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद हो तो इंग्लैंड के लोग भी नीति से सम्बन्धित कुछ बातें सीख लें। उसके हृदय में इस भावना के जागृत होने पर उसने सरकार को लिखा। हमें कुछ ऐसे मिशनरी चाहिये जो यहाँ आकर भाषा विशेषज्ञ से संस्कृत का अध्ययन करें किन्तु इसके साथ उसके हृदय में जो दूसरी बात थी कि इसमें जो सार तत्त्व है वह हम लेंगे और इसका एक ऐसा गलत अर्थ करके लोगों को समझायें जिससे इनकी आस्था इन ग्रन्थों से हट जाये, दिमाग से निकल जाये। परिणामतः सात मिशनरी भारत में आये, उन सातों में एक का नाम मैक्समूलर था जो इनका लीडर था जिसका नाम आप लोगों ने सुना होगा। उन सातों ने भारत में आकर संस्कृत का अध्ययन किया।

उसके बाद लार्ड मैकाले को भारत में शिक्षा का विशेषज्ञ बनाकर भेजा गया जिससे भारत के अनपढ़ लोगों को सही शिक्षा देकर उनको क्राइस्ट का कृपापात्र बनाया जाये। उनका यह विचार था कि जब तक भारत के लोगों को क्राइस्ट का कृपापात्र नहीं बनाया जाता, तब तक इस जाति का उद्धार नहीं होगा, यह सब नरक में ही जायेंगे। भारतीयों पर बड़ी दया करके स्कूल और कालेज चलाये गये। आप लोगों को आश्चर्य होगा कि मैक्समूलर और मैकाले के समस्त पत्र ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुके हैं। उसने अपने पिता को लिखा कि मैं यहाँ पर ऐसी योजना चला रहा हूँ कि अल्प वर्षों में ही आपको भारत में भारतीय शक्ल में अंग्रेजी अक्ल का आदमी मिलेगा। अभिप्राय यह कि शक्ल से भारतीय होगा किन्तु उसकी बुद्धि शुद्ध इंग्लिश होगी। उसके हृदय से यहाँ

की आस्था की मूल जड़ भी समाप्त कर देंगे। प्रथम उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारत में आर्य जाति बाहर से आई है। उन्होंने भारतीय लोगों के हृदय से यह निकालने का प्रयास किया कि यह मातृभूमि तुम्हारी नहीं है। फिर किसकी है? यह कोल, भील आदि जो जंगलों में पड़े हुए हैं, उनकी मातृभूमि है, इनको मारकर आर्य लोग बाहर से आये और राज्य किया, फिर उनको मारकर मुसलमानों ने राज्य किया और उन्हें मारकर हम राज्य कर रहे हैं इसलिए यह देश किसी का नहीं है। आप लोग यह बात समझ गये होंगे कि उनकी यह कूटनीति थी कि भारतीयों के दिल–दीमाग से मातृभूमि का भाव निकाला जाये किन्तु सभी धोखेबाज नहीं होते, सभी असत्यवादी नहीं होते।

उन्हीं दिनों वहीं से कुछ जर्मन विद्वान् भारत गये। मैक्समूलर भी जर्मन था लेकिन सभी एक से नहीं होते। उन्होंने संस्कृत पढने के पश्चात् उसका खण्डन किया। उन्होंने कहा कि वेदों और संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने से कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि आर्य जाति भारत में बाहर से आई? कर्नल टाड ने कहा कि आर्य जाति का जन्म स्थान भारत है, हिमालय है, इसके अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। राथ ने कहा कि वेदों में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि भारत में आर्य जाति बाहर से आई। कीथ ने भी यही कहा। एक नहीं बल्कि अनेकों विद्वानों ने यह घोषणा की किन्तु उनकी बात यूनिवर्सिटी तक नहीं गई क्योंकि यूनिवर्सिटी सरकार के हाथ में थी और ये समस्त बातें सरकार के विरुद्ध थी? वे विद्वान् स्वतन्त्र विचार देने वाले थे। दुर्भाग्य हमारा यह है कि आज भी स्वतन्त्र भारत में बच्चों को यही पढ़ाया जा रहा है–लार्ड मैकाले की वह गढ़ी हुई कहानी कि आर्य जाति बाहर से आई और यहाँ के रहने वाले द्रविड़ लोग थे। आर्यों ने आकर उन्हें बाहर कर दिया और स्वयं राज्य करने लगे। पता नहीं, उनको कहाँ से द्रविड़ और आर्यों की कहानी गढ़ने का अवसर मिल गया। साधारण जनता अनपढ़ थी, उन्हें कुछ पता नहीं था, कुछ भारतीय विद्वान् जो इसका खण्डन करने में लगे, वह इसलिए नहीं कर सके क्योंकि कोई भी विचार यूनिवर्सिटी तक ले जाने के लिए प्रमाण पत्र चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति तो यूनिवर्सिटी में पढ़ाने नहीं जा सकता। वहाँ पढ़ाने के लिए आपको डाक्टरेट करना पड़ेगा, थीसिज लिखने

के लिए गाइड चुनना पड़ता है। गाइड सरकार का अपना होता है, यदि उसकी बात मानो तो आपको स्वीकार कर लेगा और यदि उसके उलटा लिखें तो रिजेक्ट कर देगा। ऐसी अधिकांश थीसिज़ अस्वीकार की गईं जो सत्यानुसंधान पर स्थित थीं।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि भारत में इस प्रकार धोखा करके विदेशियों ने कुसंस्कार डाले। कुसंस्कार यह भी डाले कि गणेश, दुर्गा और शिव, ये अनार्यों एवं द्रविड़ों के देवता हैं, आर्यों के देवता नहीं। आर्यों के देवता विष्णु, इन्द्र और सूर्य हैं। आर्यों–अनार्यों में पहले संग्राम हुआ बाद में इनमें समझौता हो गया। आर्यों ने अनार्यों को अपने अधीन कर लिया। अनार्यों को प्रसन्न करने के लिए इन्होंने उनके देवताओं को भी स्वीकार कर लिया। उन मूर्खों की बात सुनकर आपको भी आश्चर्य होगा, इतना ही नहीं उन्होंने एक और आधार गढ़ा। मैक्समूलर के एक लेख में लिखा था कि वेद में तत्त्व विज्ञान की बातें नहीं बल्कि वे तो गडरियों के गीत हैं। पहले यहाँ के निवासी गडरिये का काम करते थे, बकरे, गाय, भेड़ चराया करते थे। वे कान में अंगुली डालकर जो गाया करते थे, वही वेद नाम से संकलित है किन्तु एक दिन उन्हीं की बुद्धि पलटी क्योंकि जिस वस्तु का खण्डन करने के लिए आप बार–बार पढोगे, मनन वा अध्ययन करोगे, उससे कुछ तो बुद्धि में परिवर्तन होगा। वही मैक्समूलर जिसने यह कहा कि वेद गडरियों के गीत हैं, उसी ने अपनी वृद्धावस्था में एक व्याख्यान दिया। उसकी पुस्तक है 'धर्म' जिसमें उसने यह कहा कि दुनिया में वेद से बढ़कर कोई पुस्तक नहीं होगी। वह कहता है कि वेद वह ग्रन्थ है जिसमें सृष्टि तत्त्व का विज्ञान भरा हुआ है, जिसमें भारत के प्राचीन ऋषियों का अनुसंधान निहित है। यदि कोई मनुष्य बनना चाहे, मनुष्यता का प्रकाश करना चाहे तो उसे वेद का अध्ययन करना होगा। ऐसे कई विद्वान् मैंने अपने समय में और इस समय भी देखे हैं जिन्होंने केवल खण्डन करने के लिए पुराणों का अध्ययन किया था। आपको पता होगा कि भारत में कुछ सम्प्रदाय हैं जो पुराणों को नहीं मानते। उन सम्प्रदायों के पंडितों की सनातन पंडितों के साथ कलह होती थी। उन्होंने पुराणों का अध्ययन खण्डन करने के लिए किया। जब बार–बार अध्ययन किया तो वे उसके दास एवं भक्त बन गये। उन्होंने अपने सम्प्रदाय से अलग होकर पुराणों की व्याख्या की,

पुराणों पर ग्रन्थ एवं थीसिज़ लिखा और यह घोषणा की कि पुराण भारतीय संस्कृति के कोष हैं।

उन्हीं पश्चिम वालों ने हमें यह भी पढ़ाया कि शिवलिंग अपवित्र वस्तु है और अनार्य लोग इसकी पूजा किया करते थे। आप जानते होंगे कि लिंग शब्द विशेष इन्द्रिय के लिए भी प्रयुक्त होता है, अतः अपवित्र वस्तु है, ऐसी उनकी मान्यता थी। वेद में एक मन्त्र आता है 'शिष्णो देवाः'। शिष्णो देवाः का संस्कृत में अर्थ होता है कि जो अपनी इन्द्रियों की पूर्ति को ही सब कुछ समझता है। उन्होंने उस मन्त्र का अर्थ यहाँ लगा लिया कि 'शिष्णो देवाः' का अभिप्राय है लिंग की पूजा करने वाले जबकि इससे उसका कोई मतलब नहीं। याद रखें शिवलिंग तो सृष्टि के प्राकट्य का प्रतीक है। सृष्टि के आविर्भाव का शिवपुराण में वृहद् वर्णन है। सर्वप्रथम इसकी उपासना भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा ने की। सृष्टि के प्रारम्भ में महाशिव जिसे सदाशिव कहते हैं, के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उस महाप्रलय में भी अन्धकार के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उस घोर अन्धकार में जब सृष्टियोन्मुख प्रकृति का समय आया तो उसमें एक गति पैदा हुई। आप जानते हैं जहाँ गति होगी वहाँ निर्माण प्रारम्भ हो जायेगा। गति का परिणाम ही निर्माण है। उस गति में एक हलचल सी हुई, उसमें अपस तत्त्व, नार तत्त्व एवं रस तत्त्व का आविर्भाव हुआ। रस तत्त्व जब दिव्य चेतन से परिपूर्ण हुआ तो उसकी संज्ञा थी नार।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

(मनु॰ स्मृति १/१०)

जल अथवा रस तत्त्व को नारा कहते हैं, इस कारण कि जल नररूप नारायण से उत्पन्न हुआ है, ऐसा मनुस्मृति कहती है। शिव पुराण में भी यही बात बताई गई है कि सृष्टि में सर्वप्रथम अपस तत्त्व का आविर्भाव हुआ, वह जब चेतन से युक्त हुआ तो उसकी संज्ञा हुई नार और जो चेतन व्यापक था उसको नारायण कहने लगे।

नारायण तत्त्व के विषय में एक बार एक व्यक्ति पूछने लगा कि आपके पुराण में लिखा है कि नारायण की नाभि से कमल पैदा हुआ। कमल से ब्रह्मा पैदा हुए, इसको आप सत्य मानते हैं? मैंने कहा, शत–प्रतिशत। इसमें तुम्हें क्या असत्य दिखाई दे रहा है? यह

आवश्यक नहीं कि जो सत्य हो वह समझ में आ जाये। सभी सत्य समझ में आ जायें, ऐसा कोई कानून नहीं। चेष्टा करो, किसी विद्वान् के पास जाओ, वह तुम्हें समझा देगा। यह कैसे हो सकता है कि नाभी से कमल निकल आये और कमल से बच्चा पैदा हो जाये? आपको मालूम है कि वर्तमान में बच्चा कैसे पैदा होता है? बिल्कुल ऐसे ही पैदा होता है। नाभी से नाल निकलती है, नाल में कमल होता है और कमल में बच्चा होता है और उसी से वह बाहर निकलता है। बच्चा जब बाहर आता है तो उसकी नाल काटी जाती है। आज भी वह प्रक्रिया है। सन्तानोत्पत्ति में तो कोई अन्तर नहीं आया और उसी का वह प्रतीक है। वहाँ तो सारा जल है, जल में से नाल निकली हुई है? हाँ, वहाँ जल होता है, उसी जल में बच्चा पलता है और जब नाल निकलती है तो बच्चा बाहर आता है, बिल्कुल उसी नाल की शक्ल का होता है। जब वह फूटता है तो वहाँ जल के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। जिसे तुम रक्त कहते हो वह भी जल ही है, उसी में वह पैदा होता है। आज भी वही प्रक्रिया है, सृष्टि में कोई अन्तर नहीं आया। जो इस सृष्टि रहस्य को नही जानता वह सोचता है ऐसे कैसे हो सकता है! अनादि काल से ऐसे चला आ रहा है और आज भी हो रहा है। जब आज का तुम्हें बोध नहीं तो तुम्हें कल का बोध क्या होगा? ऋषियों ने किसी बात को समझाने के लिए जो संकेत किया है, वह मिथ्या नहीं था, उनकी अपनी अनुभूति है। आज भी सन्तान वैसे ही उसी कमल की नाल से पैदा हो रही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

सृष्टि के अण्डज, पिण्डज, उद्‌भिज और स्वेदज चार भेद हैं। अण्डज जो अंडे से पैदा होते हैं, अण्डा फूटा उससे बच्चा पैदा हो गया। जैसे अनेक पक्षी उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही सरीसृप जीव भी पैदा होते हैं जैसे सर्प आदि, उनको अण्डज कहते हैं। स्वेदज जो पसीने से पैदा होते हैं, जैसे जूँ, खटमल आदि पैदा होते हैं। जो जमीन फोड़कर निकलते हैं जैसे वनस्पति, वृक्ष, लता आदि, इन्हें उद्‌भिज कहते हैं। पिण्डज उसे कहते हैं जो पिंड के द्वारा बाहर आता है जैसे पशुओं का बच्चा और मनुष्य का बच्चा। ब्रह्मा की सृष्टि का जो स्वरूप है वह पिण्डज सृष्टि का है अण्डज का नहीं। अण्डज के बाद पिण्डज हुआ है, यह भी याद रखना। पहले ब्रह्माण्ड है जिसे बड़ा अण्डा कहते हैं, वह अण्डज सृष्टि है। यह बात समझ

नहीं आई कि पहले अण्डज बाद में पिण्डज की क्या जरूरत पड़ गई? पिण्डज प्रायः मैथुनी सृष्टि होती है। अण्डज में यह नियम नहीं कि वह मैथुनी सृष्टि में ही हो, अमैथुनी सृष्टि भी अण्डज हो सकती है, बहुत से ऐसे अण्डे पैदा होते हैं जो अमैथुनी हैं। दार्शनिक दृष्टि से वह मैथुन से पैदा नहीं हुए। इस पृथ्वी के गर्भ में ऐसे अनेकों अण्डे पैदा हो जाते हैं जहाँ मैथुन की कोई क्रिया नहीं है। अमैथुनी सृष्टि अण्डज होती है किन्तु पिण्डज सृष्टि कभी अमैथुनी नहीं हो सकती। नर और नारी के संयोग से ही पिण्डज सृष्टि हो सकती है। ब्रह्मा का आविर्भाव पिण्डज सृष्टि का ही प्रतीक है जो कमल और कमल के ऊपर ब्रह्मा हैं। शिवलिंग अण्डज सृष्टि का प्रतीक है। पूर्व में सर्वप्रथम सारा प्राकृत तत्त्व गति के द्वारा गोलाकार होकर दो भागों में टूटा था। एक भाग द्यू हो गया और एक पृथ्वी हो गया। पृथ्वी की आकृति खप्पर जैसी बताई है। जैसे गोली सी कोई वस्तु टूट जाये अथवा अण्डे का टूटा हुआ निचला भाग, इस प्रकार पृथ्वी का स्वरूप है। वह जो पृथ्वी तत्त्व है टूटे हुए अण्डे की आकृति का, उसे भू कहा जाता है, ऊपर का भाग द्यू और बीच का भाग अन्तरिक्ष है, यह सारा मिलाकर ब्रह्माण्ड होता है। पहले यह कभी एक था, बाद में टूटने पर विभिन्न भागों में विभक्त हो गया। हम जो भगवान् के शिवलिंग की उपासना करते हैं, वह उस पूर्ण रूप की करते हैं। जब वह अण्डे रूप में था तो न वह स्त्री था न पुरुष था, वह कुछ नहीं था। वेद कहता है–

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।।

(श्वेता॰ ५/१०)

'वह न स्त्री है न पुरुष है और न नपुंसक है। जिस प्रकार के शरीर को ग्रहण कर लेता है वैसा हो जाता है।' वेद का दूसरा मन्त्र कहता है–

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।

(श्वेता॰ ४/३)

"तू ही स्त्री और तू ही पुरुष है, तू ही कुमार और कुमारी है। वेद दोनों बातें कहता है और दोनों बातें ही सही हैं। जब वह कारण अवस्था में होता है तो वहाँ न स्त्री है न पुरुष है और जब

कार्य अवस्था में होता है तो वही पुरुष और वही स्त्री बन जाता है।"

आज के पाठ में अर्धनारीश्वर के प्राकट्य का वर्णन है। जब सर्वप्रथम अण्डा पैदा होता है शिवलिंग के रूप में तो बहुत समय तक वह वैसे पड़ा रहता है। जब ब्रह्मा और विष्णु उसकी प्रार्थना करते हैं तो वही शिवलिंग दो भागों में प्रकट हो जाता है। लिंग निराकार है साकार नहीं। साकार इसलिए नहीं कहते कि इसके हाथ, पाँव, मुँह, नाक, कान आदि कुछ नहीं हैं इसलिए निराकार है परन्तु कैसा निराकार? वह सगुण निराकार है। ब्रह्म के तत्त्व विज्ञान की दृष्टि से निर्गुण निराकार, सगुण निराकार, निर्गुण साकार और सगुण साकार, चार भेद बताये गये हैं। निर्गुण निराकार सर्वव्यापी है, जिसका पता नहीं। जब वह अपने आप में घनीभूत होता है तो वह सगुण निराकार होता है, आकार उसका कुछ नहीं है लेकिन वह सगुण है। शिवलिंग सगुण निराकार है। स्त्री का आकार है वा पुरुष का, कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन है अवश्य। प्रकाश युक्त है इसलिए ज्योतिर्लिंग कहा जाता है। ज्योतिर्लिंग सगुण निराकार है। बाद में सगुण साकार हो जाता है। जब वह सगुण निराकार सगुण साकार होता है तब वह अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट होता है। तब उसके आधे भाग से स्त्री और आधे भाग से पुरुष का आविर्भाव होता है। वह स्वयं में मूल होता है इसलिए पुरुष–स्त्री दोनों होता है। इस कारण उसको अर्धनारीश्वर कहते हैं।

एक सज्जन मेरे से पूछने लगे, आपके ग्रन्थ में यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आपका देव जब पैदा हुआ था तो वह आधा स्त्री और आधा पुरुष था। मैंने कहा–जी हाँ। वह बोला, यह तर्कसम्मत नहीं लगता है। मैंने कहा–आपको मालूम है कि आज भी जो सैल प्रकट होता है, उसमें नर और मादा दोनों सम्मिलित होते हैं। मैं तो कहता हूँ कि जैसे–जैसे विज्ञान का विकास होगा, वैसे–वैसे सनातन धर्म के तत्त्वों का प्रकाश होगा। हिन्दू धर्म का तत्त्व आपके प्रकाश में तभी आयेगा जब विज्ञान का विकास होगा। सृष्टि में बहुत ऐसे जीव उत्पन्न होते हैं जो एक से ही विभाजित होकर एक नर और दूसरा मादा हो जाता है। अर्धनारीश्वर की व्याख्या सृष्टि के प्रारम्भिक अवस्था की है। इसके पश्चात् वह नारी अलग रूप में प्रकट होती है जो उमा, शिवा, शक्ति, प्रकृति, दुर्गा,

रयी और क्षेत्रादि अनेकों नामों से पुकारी जाती है और पुरुष शिव, विष्णु, नारायण आदि अनेकों नामों से पुकारा जाता है। यह अनन्त नाम अनन्त रूप उसी के ही हैं। पहले वह निराकार है, निराकार के बाद सगुण निरांकार होता है, सगुण निराकार के बाद सगुण साकार होकर एक होता है, पुनः दो भागों में विभक्त होकर दोनों के सहयोग से सृष्टि का प्रवाह चलता है। यह वैज्ञानिक तत्त्व है, इसमें ज़रा भी सन्देह के लिए गुन्जाइश नहीं। जिसको सन्देह हो वह बड़े प्यार से मेरे पास आकर समझ सकता है।

मैं आप लोगों को एक और रहस्य की बात बतलाऊँ। क्रिश्चिनिटी और इस्लाम में आज भी नारी के लिए वह स्थान नहीं जो हिन्दू धर्म में है। आप जानते हो क्यों नहीं है? वहाँ पर उत्पत्ति का क्रम अलग है। वहाँ पर परमात्मा ने पहले एडम को बनाकर आनन्द वन में उसके रहने की व्यवस्था कर दी, जिसको मुसलमान भाई अदन का बगीचा कहते हैं। वहाँ पर खुदा प्रतिदिन उसे मिलने आता था। एक दिन खुदा ने देखा, वह उदास था, पूछा तू उदास क्यों है? कहने लगा, अकेले मन नहीं लग रहा। खुदा ने उसके बाँई पसली से एक पसली निकाली और उसे फूंक कर स्त्री बना दिया, जिसको ईव कहते हैं। ईव बनाकर उसे दे दिया कि तुम इससे अपना मनोरंजन किया करो। वहाँ पर जो स्त्री पैदा हुई वह पुरुष के मनोरंजन के लिए पैदा हुई। पुरुष परमात्मा का सही पुत्र और स्त्री उसकी पसली से निकाल कर बनाई गई थी। आप लोगों को जानकर आश्चर्य होगा कि आठवीं सदी तक रोम के पोप के अधीन यह विचार था कि स्त्री में भी आत्मा होती है वा नहीं? इतिहास के जानने वालों को मालूम होगा कि अभी तक वह इस बात का निर्णय नहीं कर पाया। पुरुष को तो परमात्मा ने बनाया और स्त्री को पुरुष की पसली से निकाल कर बनाया जो उसके मनोरंजन की वस्तु है इसलिए उसे पूर्ण अधिकार नहीं है।

हिन्दू धर्म में स्त्री–पुरुष एक तत्त्व के दो विभाजन हैं इसलिए सृष्टि के प्रारम्भ में एक सृष्टि की माँ और दूसरा सृष्टि का बाप है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म ब्रह्म को माँ भी कहता है और बाप भी। 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'–ये शब्द किसके लिए कहते हैं? सगुण निराकार के लिए। सगुण साकार के लिए कह ही नहीं सकते। भगवान् को माँ हम कह ही नहीं सकते। वह माँ कैसे

बनेगा? वह तो पुरुष है। उसमें मातृत्व का जन्म कैसे हो सकता है? असम्भव है। हम माँ कहते हैं सबल ब्रह्म को जो सगुण निराकार है क्योंकि वह माँ भी है बाप भी है। वह अर्धनारीश्वर है। हम जिसकी उपासना करते हैं वह माँ-बाप की युक्तावस्था है इसलिए 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' इस श्लोक का प्रयोग हम उस परम तत्त्व के लिए करते हैं जो स्वयं में माँ भी है और बाप भी है, स्त्री भी है और पुरुष भी है। जो न स्त्री है न पुरुष है, न माँ है न बाप है, जब उससे कुछ पैदा ही नहीं होता और वह किसी से पैदा नहीं होता तो माँ-बाप कहाँ से बनेगा? वेद में जहाँ उसकी अभिव्यक्ति का प्रसंग आया है वहाँ पर बताया गया कि सब कुछ वह ही हो गया। जब वह ही सब कुछ है तो उसमें माँ कौन है और बेटा कौन? सब कुछ वह ही है। यह वेदान्त ऋषियों ने हम लोगों को समझाने के लिए पुराणों की व्याख्या करके सारा विवेचन किया। हम 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कब कहते हैं, क्यों कहते हैं, उसका पूरा वर्णन आया। शिवलिंग माँ भी है और बाप भी है। यहाँ लिंग शब्द का अर्थ कोई इन्द्रिय विशेष नहीं है, इस शब्द का अर्थ होता है अभिव्यक्त हुआ तत्त्व। संस्कृत में लिंग शब्द का अर्थ होता है–'लीलाम् गच्छन्ति इति लिंगम्' जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड लीन हो जाता है, उसे लिंग कहते हैं। वह कौन है? परमात्मा। यह समस्त जगत् परमात्मा से ही प्रकट होता है और जब उसका लय होता है तो प्रलय काल में उसी में लीन हो जाता है। जैसे सृष्टि का आविर्भाव होता है वैसे ही तिरोभाव होता है, इसलिए इसको लिंग कहते हैं। इसी का दूसरा नाम प्रधान है–

प्रकृष्ट रूपेण धीयते अन्तर्लीयते यस्यामिदं सर्वं स प्रधानम्।

जिसमें प्रकृष्ट रूप से सारे लय हो जायें, समा जायें, उसे प्रधान कहते हैं, इसी को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति क्यों कहते हैं?

प्रकृष्ट रूपेण क्रियते अनया इदं सर्वं स प्रकृति।

जिससे प्रकृष्ट रूप से अनेक रूपों में निर्माण अथवा क्रिया हो जाए, उसे प्रकृति कहते हैं। संस्कृत में जितने शब्द हैं सभी साभिप्रायी और साहेतुक हैं, इनका मनमाना अर्थ नहीं किया जा सकता। यहाँ पर शिवलिंग परमात्मा का प्रथम रूप है, वह निराकार से जब साकार होता है, उस समय आकृति रहित होता है किन्तु होता है सगुण इसलिए उसे लिंग कहते हैं। योगदर्शन में बताया

गया है–

अलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि।

(यो॰ सू॰ २/१६)

वह अलिंग है, अलिंग से लिंग मात्र होता है। लिंग शब्द का अर्थ चिन्ह भी होता है। लिंग रहित है, लिंग रहित होने पर भी वह लिंगवत् है, अलिंग होते हुए भी लिंगमय हो जाता है। उसका कोई रूप नहीं, फिर भी वह रूपवान् होता है। उसका कोई चिन्ह न होने पर भी वह चिन्हवाला होता है। जैसे मैंने पूर्व में आप लोगों को बताया कि पश्चिमी विद्वान् जो केवल हमारी संस्कृति का नाश करने के लिए ही संस्कृत पढ़े थे, उन्होंने इसका ऐसा भ्रमात्मक अर्थ फैलाया कि अनार्य लोग 'शिश्नो देवाः' की अर्थात् इन्द्रियों की पूजा करने वाले थे। शिव आर्य देवता हो नहीं सकता क्योंकि वह खप्पर लिये हुए, श्मशान की राख लगाये हुए, मुण्डों की माला धारण किये हुए और साँप गले में डाले हुए है। उन्होंने यह भ्रम फैलाया कि साँप की पूजा तो अनार्य लोग किया करते थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि शिव के जितने प्राचीन मन्दिर हैं, सभी उत्तर भारत में हैं। पश्चिमी विद्वान् भी यही मानते हैं कि उत्तर भारत तो आर्यों की भूमि है और दक्षिण भारत अनार्यों की या द्रविड़ों की है। दक्षिण भारत में यदि कोई शिवलिंग है तो उसकी स्थापना उत्तर भारत से ही जाकर किया है? राम ने ही रामेश्वरम् की स्थापना की है। दक्षिण भारत में ज्योतिर्लिंग की स्थापना भी भगवान् राम के द्वारा हुई।

एक सज्जन मेरे से बातचीत कर रहे थे कि आर्यों एवं द्रविड़ों के अलग–अलग लक्षण हैं। मैंने पूछा–उनका लक्षण क्या है? बोले, आर्य लोग गौरवर्ण के होते हैं। मैंने कहा, इसका अभिप्राय राम आर्य नहीं थे क्योंकि राम ओर कृष्ण दोनों श्याम वर्ण थे। कृष्ण का नाम ही कृष्ण श्याम वर्ण के कारण पड़ा था। क्या तुम समझते हो कि राम और कृष्ण आर्य नहीं थे? आप राम की स्तुति करते हो–"नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगम्' किसी काले व्यक्ति को यदि आप सभ्य भाषा में कहो तो क्या कहोगे? यही न कि इसका श्याम वर्ण है। श्याम कहो या ठेठ भाषा में काला कहो, काले को ही श्याम कहते हैं, श्याम और काला दो नहीं हैं। भगवान् राम का स्वरूप कैसा है? नील वर्ण के समान श्याम रंग का। राम भी श्याम वर्ण के

थे, कृष्ण भी श्याम वर्ण के थे। यदि अनार्य काले और आर्य गौरवर्ण के होते हैं तो इसका अभिप्राय राम और कृष्ण दोनों अनार्य थे। हमारे उपासना के क्रम में इतना भ्रम फैलाया गया।

यजुर्वेद में रुद्रिका पाठ है जिसमें भगवान् शंकर की उपासना का विधान है। जो मन्त्र मैं प्रतिदिन बोलता हूँ—

ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च
ॐ नमः शंकराय मयस्कराय च
ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च।

यह यजुर्वेद का मन्त्र है। यजुर्वेद किसका है? आर्यों का ग्रन्थ है। मैंने एक सज्जन से पूछा, यदि तुम यह विश्वास करते हो कि शिव अनार्य देवता थे तो यजुर्वेद की रचना आर्यों से पहले हुई थी या द्रविड़ों के मिलने के बाद? शुक्ल यजुर्वेद तो पहले का है, शुद्ध आर्यों का है। मैंने कहा—आपने शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा है? यदि यह वेद विशुद्ध आर्यों का है तो उसमें 'ॐ नमः शम्भवाय च' कहाँ से आ गया?

वही व्यापक चेतना विष्णु रूप से नारायण रूप में प्रकट होती है। जो समुद्र में शैया के ऊपर नारायण सो रहे थे, यह वही स्वरूप है। इसका आदि स्वरूप शिव, शिव से नारायण, नारायण की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा के भ्रू मध्य से रुद्र का अवतार होता है, इसलिए विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र, ये त्रिदेव कहे जाते हैं। इन त्रिदेवों का आदि कारण सदाशिव है, उसे शिव कहते हैं, ब्रह्म कहते हैं। सदाशिव ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप में प्रकट होता है। ये तीनों मूर्तियाँ सदाशिव की हैं। हम रुद्र को ही शिव क्यों कहते हैं, ब्रह्मा, विष्णु को शिव क्यों नहीं कहते, इसके विषय में थोड़ा सा तत्त्व विज्ञान की दृष्टि से भी समझ लें। विशुद्ध चेतन जब चित्ताकाश से युक्त होता है तब उसकी संज्ञा विष्णु होती है, उसमें जब गति होकर बोध प्रकट होता है तो उस बोधात्मक अवस्था की संज्ञा ब्रह्मा होती है, जब उस बोध में अहं पैदा होता है तो उसको शिव कहते हैं, रुद्र कहते हैं। यह रुद्र ही अहं है। विशुद्ध अहं का नाम रुद्र, विशुद्ध बुद्धि का नाम ब्रह्मा और विशुद्ध चित्त का नाम विष्णु है। इस अहं, बुद्धि और चित्त का जो आदि आधार है, वही सदाशिव ब्रह्म है। उस चेतन का अनुभव, चेतन की क्रिया का प्रकाश तब होता है जब अहं का उदय होता है। आप विचार कीजिए—अहं के अभाव में आप

कुछ कर सकते हैं? ध्यान, ज्ञान, उपासना, धर्म, कर्म, पाप वा पुण्य, विश्व का कोई भी काम आप अहं के बिना नहीं कर सकते। अहं यदि न हो तो आपका अस्तित्त्व ही समाप्त हो जाये। सुषुप्ति अवस्था एवं प्रगाढ़ निद्रा में अहं नहीं होता। उस समय आपको अपने अस्तित्त्व का पता नहीं होता। स्वप्नावस्था में अहं होता है। जहाँ अहं नहीं होता वहाँ आप नहीं होते। आपके अस्तित्व का बोध ही अहं से है। फिर स्वामी जी! लोग क्यों कहते हैं कि अहं को मारो? मैंने कहा–नासमझ ही कहता होगा कि अहं को मारो। अहं को नहीं अहंकार को मारना है। अहं और अहंकार में बहुत अन्तर है। यह शुद्ध तत्त्व है, चेतन का स्वरूप है और उसी की अभिव्यक्ति है। वही अहं जब आकार ग्रहण कर लेता है तब उसको अहंकार कहते हैं। जहाँ उसने आकार ग्रहण किया, वहीं उसने तुम्हें मृत्यु के मुँह में लगाया। अहं बुरा नहीं अहंकार बुरा है। आकार रहित अहं शुद्ध अहं है, शुद्ध अहं को ही शिव कहते हैं। रामायण में तुलसीदास जी ने लिखा है–

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।

(रामा॰ ६/१५क)

यहाँ शुद्ध अहं शिव है। योगी लोग शिवोऽहम्–शिवोऽहम् का ध्यान करते हैं। जो शिवोऽहम्–शिवोऽहम् की घोषणा करते हैं, वह क्या है? आकार रहित अहं। अपने अहं को किसी आकार में मत बाँधो। जहाँ से अहं को आकार में बाँधा वहीं से तुम्हारे लिए मृत्यु और दुःख का निमन्त्रण शुरू हो जाता है। अहं को आकार में बाँध देना ही अज्ञानता है जबकि अहं का कोई आकार नहीं है, आकार तो शरीर का है। अहं तो शुद्ध चेतन है, वह शरीर से परे है, उसकी कोई आकृति नहीं है। जहाँ आपने अहं को आकार के साथ युक्त किया, वहीं पर आप में अहंकार पैदा हुआ। आपको अहंकार किस बात का होता है? अपने होने का? नहीं। अभी तक संसार में मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जिसे अपने होने का अहंकार हो। अहंकार किसी पदार्थ, परिधि, घेरे, आकृति वा ग़ुण का होता है, होने में आकार नहीं है। जहाँ आपने अहं को आकार में बाँधा वहीं मेरापन शुरू हो जाता है। मेरे पन को अहंकार कहते हैं। अहं में आकार नहीं है, अहं बन्धन का कारण नहीं है, बन्धन का कारण मम और मेरा है। मेरे में अहंकार होता है, जैसे मेरा मकान, मेरा पुत्र, मेरी

वस्तु, मेरा पति, मेरा धन, मेरी सम्पत्ति आदि। मेरे का जन्म 'मैं' से हुआ। मैं कब मेरे में परिवर्तित हो गया? जब मैं किसी आकार में बन्ध गया तब। जब 'मैं' को वा अहं को शरीर में बाँध दिया तो शरीर के नाते सभी इकट्ठा होने लगे। श्रीमद्भागवत में बड़ी सुन्दर कथा है।

हमारे यहाँ परमात्मा का एक अवतार भगवान् दत्तात्रेय के रूप में हुआ है। भगवान् दत्तात्रेय एक दिन चले जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक चील को माँस का टुकड़ा ले जाते हुए देखा। कौए इकट्ठे होकर उसे मारने लगे। चील के मुख में तो माँस का टुकड़ा था इसलिए वह किसी को मार नहीं सकती थी। जब चील मार खाते–२ थक गई तो उसने माँस का टुकड़ा गिरा दिया। ज्यों ही माँस का टुकड़ा गिरा कि सभी कौए उस माँस पर टूट पड़े। वह चील जाकर एक वृक्ष पर शान्ति से बैठकर देखने लगी। अब कौए आपस में झगड़ने लगे। वहाँ पर भगवान् दत्तात्रेय ने चील से कहा कि तू भी मेरा एक गुरु है। तेरी इस दुर्गति से मुझे ज्ञान हो गया कि जब तक संसार का कोई पदार्थ तुम्हारे साथ लगा है तब तक संसार के सभी सम्बन्धी तुम्हें ठोकर मारते रहेंगे। ये सारे चोंच कब तक लगते रहेंगे? जब तक मुँह में 'मेरा' कह कर कुछ रख रखा है। जब त्याग दोगे तब संसार का कोई व्यक्ति तुम्हारे पास नहीं आयेगा। अहं बुरा नहीं अहंकार बुरा है इसलिए अहंकार से बचो। शुद्ध अहं शिव का स्वरूप है, उसी का चिन्तन करो। शिवोऽहम् शिवोऽहम्–अहं शिव है, अहं शिव है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि रुद्र को ब्रह्मा का प्रतीक इसलिए मानते हैं क्योंकि वहाँ अहं में चेतन की जागृति है, वहीं से सारा प्रसार है, वही सृष्टि का आधार है इसलिए उसे विश्व कहते हैं। वेदान्त की भाषा में विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म–ये चार अवस्थायें हैं। ब्रह्म तो सदाशिव है, प्राज्ञ विष्णु, तैजस ब्रह्मा और विश्व रुद्र है। माण्डुक्योपनिषद् में इसकी पूरी मीमांसा की गई है और उसी वेदान्त के रहस्य को शिवपुराण में समझाया गया है। ब्रह्म सदाशिव हैं, ब्रह्म से जो प्राज्ञ पैदा हुआ वही विष्णु है, नारायण है और उससे जो बुद्धि पैदा हुई, बोध हुआ वही ब्रह्मा है, बोध में जो 'मैं पना' वा स्वीकृति आई, वही रुद्र है। रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु, ये तीनों एक ही चेतन शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं, तीन अवस्थायें हैं।

इसके मूल में सदाशिव ही तीन रूपों में प्रकट होता है। आपके चित्त, बुद्धि और अहं रूप में वही है। यदि परम चैतन्य को आप जान जायें तो तीनों रूपों का आपको बोध हो जायेगा। दुनिया की कोई भी शक्ति आपको बन्धन में नहीं डाल सकती। समस्त बन्धनों से मुक्त होने के लिए ही शिव तत्त्व का बोध करवाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को इस परम तत्त्व का बोध हो जाना चाहिए। बोध हो जाने पर फिर संसार में उसे कोई भी बाँधने में समर्थ नहीं हो सकता इसलिए शिवलिंग जो शिवस्वरूप है, उसकी हम आराधना करते हैं।

शिवपुराण में लिंग पूजा का विधान है। लिंग पूजा के ऊपर रसात्मक द्रव्य डाले जाते हैं, रस आत्मा का प्रतीक है। वही रस प्रेम रूप में प्रवाहित होता है। शिव की पूजा में हर–हर महादेव कहकर जल चढ़ाया जाता है। आप जानते हो जल क्या है? यह जल जीवन का, प्रेम का, रस का, स्नेह का प्रतीक है और शिवलिंग ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। सही शिव की पूजा है समस्त ब्रह्माण्ड के प्राणियों के लिए अपने प्रेम रूपी रस का समर्पण। अखण्ड जल की धारा से शिव की पूजा होती है। अखण्ड धारा का अभिप्राय है कि तुम्हारा अनवरत प्रेम समस्त प्राणियों के ऊपर बरसता रहे, कभी उसमें छेदन वा भेदन न हो। अखण्ड रूप से जब तुम विश्व के प्राणियों के कल्याण का चिन्तन और ध्यान करोगे, उनको अपनी क्रियाओं के द्वारा रस प्रदान कर पूजा करोगे तो शिव के कृपापात्र बनोगे। यदि तुम सोचो कि एक लोटे पानी में एक पाव दूध मिलाकर शिवलिंग की पिण्डी के ऊपर चढ़ा दिया, बाहर जाकर बकरे को काटकर पेट में डाल लिया तो इससे भगवान् शंकर प्रसन्न नहीं हो सकते, तुम्हारा और कोई देवता प्रसन्न हो जाये तो कह नहीं सकते। मैं ऐसा नही मानता कि वह माँ जिसके बच्चे का तुम वध कर रहे हो और मन्दिर में जाकर माँ को हार पहना रहे हो तो माँ तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो जायेगी, वह कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकती। माँ को प्रसन्न करने का केवल एक ही तरीका है कि उसके बच्चे से प्यार करो, इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। इसी रूप से यदि जगदम्बा को प्रसन्न करना है तो उसकी सन्तानों को प्यार करो। प्रत्येक जीव जगदम्बा की, शिव की सन्तान है, यदि शिव से तुम प्यार करना चाहते हो तो शिव की सन्तानों से

प्यार करो। अनेक रूपों में शिव की अभिव्यक्ति है। यही शिवलिंग की पूजा का रहस्य है। यदि तुम इस रहस्य को समझकर उसकी उपासना करते हो तो शिव के कृपापात्र बनोगे और यदि उसके विपरीत तुम अहंकार की पुष्टि के लिए शिव की पूजा करते हो कि भगवान् शिव यह भी दे दें, वह भी दे दें तो ऐसा नहीं होता। सब कुछ मिलेगा जब तुम सही रूप में उसकी उपासना करोगे तब। बार–२ इस शिवपुराण में यही बताया गया है। जो प्राणिमात्र से प्यार करता है वही वास्तविक रूप में शिव का पुजारी है। इसमें यह भी बताया गया है कि संसार में जितने प्राणी हैं, जीव हैं, सब भगवान् के लिंग हैं। यदि समस्त प्राणियों में भगवान् को देख रहे हो तो शिवलिंग की पूजा कर रहे हो और यदि समस्त प्राणियों में भगवान् दिखाई नहीं दे रहा है तो अहंकार की पूजा कर रहे हो।

तत्त्व विज्ञान की दृष्टि से शिवपुराण का जैसे–२ आप लोग श्रवण करोगे, इसमें आपको इतनी अमूल्य बातें मिलेंगी, जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। कतिपय लोगों के लिए पुराण कहानियों के रूप में है। पुराणों में फिलॉसफी को इस ढंग से व्यक्त किया गया है जिसका रहस्य समझना बड़ा कठिन है। जब वेद–शास्त्र का पूर्ण रूप से अध्ययन हो तभी पुराण तुम्हारी समझ में आ सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के पास इतना समय नहीं जो इन ग्रन्थों का अध्ययन करे। इसलिए जिन्होंने अध्ययन किया है उनके पास बैठकर, उनकी बातें सुनकर समझने का प्रयास करो। जो बातें अनेकों वर्ष लगाकर तुम समझ नहीं सकते, उन बातों को एक घण्टे के व्याख्यान में तुम समझ लोगे। मैं अपने एक जीवन का नहीं, अनेकों जीवन की साधनाओं का निचोड़ एवं अनुभव आप लोगों को बता रहा हूँ। यदि आप लोग एक घण्टा निकाल कर इन बातों को सुनने–समझने का प्रयास करो तो आपका कल्याण होगा। वो बातें आपको मिल जायेंगी जो आप वर्षों पढ़ कर नहीं जान सकते। यह एक जन्म की नहीं अनेकों जन्म की अनुभूतियाँ हैं जो आपको समझा रहा हूँ। जो शिव तत्त्व आज आप लोगों को समझाया है, इसका मनन कीजिए। शिव पुराण का जैसे–२ कथा प्रसंग आयेगा उसी अनुसार आप लोगों को उस तत्त्व का बोध करवाया जायेगा। आज मैंने आप लोगों को वह तत्त्व बोध करवाया जो नारद को मोह से मुक्त करने के लिए ब्रह्मा ने नारद को समझाया था। नारद को भ्रम हो जाता है कि शिव तो

ब्रह्मा के पुत्र हैं, ब्रह्मा विष्णु के कमल से पैदा हुए हैं; जो शिव ब्रह्मा के पुत्र हैं, वह परब्रह्म कैसे हो सकते हैं? इस भ्रम का ब्रह्मा ने समाधान करके नारद को समझाया कि परब्रह्म परमात्मा ही परम शिव है, वही शिवतत्त्व है, उसी से नारायण का आविर्भाव होता है, नारायण से ब्रह्मा का और ब्रह्मा से पुनः शिव का रुद्र रूप में आविर्भाव होता है। यह रहस्य मैंने आप लोगों को समझाया कि जो परम चेतन तत्त्व है, उस से ही प्रकृति में क्षोभ होकर आपके चित्त का निर्माण हुआ है। आपके चित्त से आपकी बुद्धि का जन्म हुआ है और बुद्धि से ही अहं का जन्म हुआ है। यह अहं ही विशुद्ध चेतन है और यह अहं उस परम शिव की पूर्णाभिव्यक्ति है। इसलिए जो परम अव्यक्त चेतन है, वही अहं है इनमें कोई भेद नहीं, दोनों तत्त्वतः एक हैं। अन्तर इतना है कि यह अहं साकार है और वह अहं निराकार है, यही तत्त्व समझने का है। इसलिए इस अहं को उस निराकर शिव के साथ जोड़कर शिवोऽहम्–२ का चिन्तन करो, तभी आपका कल्याण होगा।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१४/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

शाश्वत सनातन धर्म की खोज में ऋषि मण्डली एक बार बैठकर विचार करती है कि धर्म जीवन के ध्येय को प्राप्त करने की प्रक्रिया वा विधि का नाम है। वह विधि वा प्रक्रिया केवल मानने मात्र से ही नहीं बल्कि जानने की साधना है। वैदिक ऋषियों ने जीवन के ध्येय के विषय में चिन्तन किया। हमारे यहाँ ध्येय के चिन्तन की प्रक्रिया में विज्ञानत्रयी की प्रतिष्ठा हो गई। विज्ञानत्रयी ब्रह्मविज्ञान, जीवन विज्ञान और कर्म विज्ञान से समन्वित है। जीवन क्या है, जीवन का कारण क्या है और जीवन का उद्देश्य क्या है, यही शाश्वत जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा की पूर्ति जिसके द्वारा होती है, वही धर्म तत्त्व है। इस जिज्ञासा की पूर्ति की विधा का बोध करवाना शास्त्र का प्रयोजन है। "शाश्नाथ शास्त्रं" इसलिए उसका नाम शास्त्र है। जीवन के विकास की व्यवस्था का वह शासन करता है, विधान करता है। उपनिषदों में इस विज्ञानत्रयी की जिज्ञासा को लेकर ऋषि समूह बैठकर विचार कर रहा है–

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।

(श्वेता॰ १/१)

यह प्रश्न ऋषियों ने आज से लाखों वर्ष पूर्व किया था, वह आज के मनुष्य के लिए भी ज्यों का त्यों है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उन ऋषियों की खोज से जो उनका समाधान हुआ था, उसको पढ़कर के आपका समाधान नहीं हो सकता। उसको उन्हीं की विधि वा प्रकार से खोजना होगा। उन्होंने एक प्रश्न किया–"किं कारणं" हम सब जीवित हैं, आखिर इस जीवन का क्या कारण है? वेद जिसे ब्रह्म कहता है, वह ब्रह्म क्या है? "कुतः स्म जाता" हम सभी कहाँ से प्रकट हो गये, कहाँ से पैदा हो गये वा कहाँ से आ गये? हमारे जन्म का कारण क्या है? हमारे जन्म में हेतु

क्या रहा और हमारे जन्म में प्रयोजन क्या रहा है? जन्म के कारण, हेतु और प्रयोजन को जानने की जिज्ञासा प्रथम जिज्ञासा है। प्रबुद्ध मानव में यही जिज्ञासा जागृत होती है। अल्प बुद्ध के लिए जिज्ञासा नहीं और अबुद्ध मानव को जिज्ञासा यदि होगी तो केवल यह होगी कि हम क्या खायें, कैसे रहें आदि। हम कहाँ से आये हैं, क्यों आये हैं, उन्हें इसकी जिज्ञासा नहीं होती, किन्तु धर्मशास्त्र का संदेश है कि जब तक जीवन में यथार्थ को जानने की जिज्ञासा नहीं होगी तब तक जीवन को सुखमय, रसमय, आनन्दमय एवं शाश्वत नहीं बनाया जा सकता है। श्रुति का कथन है–

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। (श्वेता॰ ३/८)

तुम्हारे सुख, आनन्द और शाश्वत शान्ति के लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इसके अतिरिक्त उस परम तत्त्व एवं परम कारण को जो कि–

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
(श्वेता॰ ६/१३)

नित्य का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है, जो अकेले ही अनन्त की कामनाओं को तृप्त करने की सामर्थ्य रखता है, उस कारण तत्त्व को तुम जब तक नहीं जानते तब तक तुम्हें शाश्वत शान्ति उपलब्ध नहीं होगी, यह श्रुति का कथन है। ऋषियों ने उस कारण को जानने की जिज्ञासा की और आपस में विचार करने लगे।

श्वेताश्वतर की श्रुति को जब पढ़ते हैं तो हमें ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कई वाद प्रचलित थे। विश्व में जो नये–नये वाद आप लोग देखते हैं, ये अनादि काल से चले आ रहे हैं। मनुष्य के मस्तिष्क की भिन्न–भिन्न अवस्थायें हैं और प्रत्येक मानव अपनी अवस्थानुसार ही सोचता है, समझता है और मानता है, इसीलिए सनातन धर्म ने इस सत्य को समझते हुए अनेकों वादों को अपने यहाँ स्थान दिया। अचिन्तय भेदाभेदवाद, त्रैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, भेदाभेदवाद और विशुद्धाद्वैतवाद, अनेक प्रकार के वादों को सनातन धर्म ने पूर्ण स्वतन्त्रता और पूर्ण प्रतिष्ठा दी है। जहाँ पर आरम्भवादी न्याय और वैशेषिक, परिणामवादी सांख्य और योग की प्रतिष्ठा है, वहीं पर विवर्त्तवादी वेदान्त की भी प्रतिष्ठा है।

भारतीय दर्शन, भारतीय मनीषा, भारतीय प्रज्ञा, भारतीय विचारधारा विश्व के मानव की आन्तरिक अवस्था को स्वीकार करते हुए प्रत्येक वाद को अपने स्थान पर सही मानती है और कहती है कि तुम जहाँ हो यदि वहाँ तृप्त एवं संतुष्ट हो तो तुम्हें किसी खोज की जरूरत नहीं है। यदि तुम जहाँ हो वहाँ संतुष्ट वा तृप्त नहीं हो तो इसका अभिप्राय है कि तुम उससे आगे जाना चाहते हो। जहाँ तुम जाना चाहते हो, उसके लिए जो जाने हैं, पाये हैं, उन्हें समर्पित होना होगा।

इसको पुनः समझिये, भारतीय दर्शन का यह संदेश है कि जहाँ तुम हो, स्वप्नावस्था में नहीं जागृतावस्था में, यदि वहाँ संतुष्ट वा तृप्त हो तो फिर तुम्हें उससे आगे की चिन्ता ही नहीं करना है। किन्तु यदि तुम संतुष्ट नहीं हो तो इसका अभिप्राय कि अभी कुछ प्राप्तव्य है, कुछ पाना है, जिसको पाने की, जानने की तुम्हें कामना है। जहाँ पहुँचने की तुम्हें कामना है, उसको प्राप्त करने, जानने और पहुँचने के लिए जहाँ तुम हो उसको छोड़ना पड़ेगा। जब तक प्रथम सीढ़ी पर जहाँ तुम्हारा पाँव है उसको नहीं छोड़ते तब तक उससे आगे वाली सीढ़ी पर तुम्हारा पाँव जा नहीं सकता। इसलिए तुम अपनी मान्यता को मत पकड़ो बल्कि उस मान्यता का अन्वेषण करो, विशेष रूप से उसकी मीमांसा करो। मीमांसा करने के बाद तुम्हें उसके यथार्थ का बोध होगा और जब तुम उस यथार्थ को जान लोगे तब अपने आप उससे आगे बढ़ने की तुम्हारी चाह होगी। मनुष्य तब तक शान्त वा स्थिर नहीं हो सकता जब तक वह अद्वैत में प्रतिष्ठित न हो जाये। इसलिए उपनिषदें कहती हैं कि तुम पहले अपनी कोई कल्पना मत बनाओ, बल्कि पहले तुम जानने के लिए आगे बढ़ो। ऋषियों ने कोई कल्पना नहीं बनाई–

किं कारणं ब्रह्म कुतःस्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।

(श्वेता॰ १/१)

ऋषि प्रश्न करते हैं लेकिन इसके लिए उनकी कल्पना नहीं है। उस समय विभिन्न मत थे जिन्होंने अपनी मान्यता को व्यक्त किया था–

कालःस्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।

(श्वेता॰ १/२)

इस सम्बन्ध मे एक नहीं अनेक सिद्धान्त प्रचलित थे। उस समय भी कालवादी थे, नियतिवादी थे, कर्मवादी थे, अदृष्टवादी थे और जीववादी थे। इतने प्रकार के वादों का दर्शन हमें उस उपनिषद् काल में होता है। इन सब पर विचार करते हुए इनकी मीमांसा एवं विश्लेषण किया गया, इनकी चीर–फाड़ एवं सर्जरी हुई। सर्जरी के बाद सबको नकारा गया कि यह ठीक नहीं है। फिर सही मार्ग कैसे मिले? उपनिषद् अगले मंत्र में कहती है–

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

(श्वेता॰ १/३)

उन योगियों वा ऋषियों ने पुनः देखा कि बुद्धि जब तक बाहर दौड़ रही है तब तक सत्य का पता नहीं चलेगा। सत्य बाहर नहीं मिलता, सत्य का अनुसंधान आप बाहर से नहीं कर सकते, क्योंकि बाहर सत्य का अनुसंधान करते समय आप अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करोगे, जो आपके पास साधन हैं। जब तक आपकी बुद्धि इन्द्रियों पर नहीं बैठेगी तब तक वह बाहर का कुछ पता नहीं लगा सकती, इसलिए "पंच दृगयो" ऐसा सांख्य सूत्र बताता है कि आपके अन्दर ज्ञान को प्रकाशित करने वाली ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही हैं। यदि आपके पास आँख नहीं है तो बाहर आपके लिए कोई रंग–रूप, आकृति वा दृश्य नहीं है। दृश्य के रंग और आकृति दो रूप होते हैं। दुनिया के समस्त दृश्य जिनको आप देखते हैं, उनमें ये दोनों वस्तुयें हैं। रंग से रहित आप कोई वस्तु देख नहीं सकते और न आकृति रहित कोई दृश्य देख सकते हैं। ये दोनों किसके द्वारा आप जानते हैं? आँख यदि नहीं है तो बाहर आपके लिए कोई रंग–रूप, आकृति वा दृश्य नहीं है। आँख यदि नहीं है तो दुनिया आपके लिए अन्धकारमयी है, यदि कान नहीं तो दुनिया में आपके लिए कोई शब्द नहीं है और यदि ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं हैं तो दुनिया का ज्ञान आपको प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु मेरे दोस्त! ये जितने ज्ञानेन्द्रियों के साधन आपके पास हैं, बहुत ही सीमित सामर्थ्य रखते हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान आपको प्राप्त हो रहा है अथवा जो कुछ आप देखते हैं यथार्थतः ६६ प्रतिशत, मिथ्या होता है और एक प्रतिशत सही होता है।

हम जैसे प्रातःकाल सूर्य का उदय देखते हैं। यथार्थ क्या

है? क्या दुनिया में कभी सूर्य का उदय होता है? क्या सूर्य कभी अस्त हो सकता है? नहीं। सूर्य न उदय होता है और न अस्त होता है। सूर्य के उदय और अस्त की कल्पना मिथ्या ज्ञान पर अवलम्बित है। दूसरी बात सूर्य को हम एक गोले के रूप में देखते हैं। क्या सही में सूर्य इसी प्रकार का एक गोला है? एक दिन मैंने बताया था, शायद आप लोगों को याद होगा कि सूर्य लम्बा, चौड़ा, गोला, टेढ़ा है या कैसा है, कुछ नहीं कहा जा सकता। क्यों नहीं कहा जा सकता इसके लिए बड़ा सीधा सा तर्क है कि जो वस्तु गतिशील है, जिस वस्तु में गति हो रही हो वह किस आकृति की है, आप कह नहीं सकते। इस बात को आप पुनः समझिये। हमारे यहाँ संस्कृत में एक शब्द आता है 'अलातचक्र'। लकड़ी के दोनों ओर कुछ पदार्थ बाँधकर उसमें अग्नि लगाकर उसे घुमाते हैं। लकड़ी को जब गति देकर घुमाते हैं तो वह गोल सा एक चक्र बन जाता है और दूर से देखने वाला यही कहेगा कि अग्नि का गोला घूम रहा है। क्या वहाँ अग्नि का गोला है? नहीं। वह गोला नहीं बल्कि दूर से गोला दिखाई दे रहा है। आपको गोला दिखाई दे रहा है क्योंकि उसमें गति है। प्रत्येक गतिशील पदार्थ आपको गोले के रूप में दिखाई देगा लेकिन वह गोल है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। उसके यथार्थ का बोध तो तब हो जब वह रुक जाए, उसका घूमना बन्द हो जाए, उसकी गति बन्द हो जाए। जब तक उसकी गति बन्द नहीं होती तब तक उसका क्या स्वरूप है, क्या स्थिति है, यह कहना मिथ्या वा भ्रम है, केवल स्वीकृतिमात्र है।

आप किसी वैज्ञानिक से पूछिये कि क्या सूर्य अपने स्थान पर स्थिर है? क्या वह बतायेगा कि सूर्य जहाँ है, वह अपने स्थान पर अचल है, स्थिर है? कोई भी ग्रह, उपग्रह जिस पृथ्वी पर हम हैं वा कोई भी इस सृष्टि में ऐसा सृष्ट तत्त्व है जो अपने में स्थिर हो? यदि स्थिर नहीं है तो उसमें गति है। गतिशील तत्त्व को आप कैसे कह सकते हैं कि वह इस आकृति का है? उसकी आकृति का पता नहीं लगाया जा सकता। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि आपकी आँखें आकृति देखेंगी किन्तु जो देखेंगी वह यथार्थ नहीं होगा। दर्शन शास्त्र की इतनी सूक्ष्म अभिव्यक्ति, इतना सूक्ष्म विश्लेषण भारत के अतिरिक्त और कहीं मुझे नहीं मिला। मैंने संसार के बहुत से दार्शनिकों का अध्ययन किया लेकिन हमें और कहीं ऐसा विश्लेषण

नहीं मिला। हमारे यहाँ एक सूत्र है 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'। यदि जगत् मिथ्या है तो क्या यह दीवार मिथ्या है? मिथ्या है। इस पर सर मारो तो क्या होगा? सर टूट जायेगा। मिथ्या है तो सर कैसे टूटा? यह आपसे किसने कहा कि मिथ्या से चोट नहीं लगती। पहले आप इसको समझिये कि मिथ्या क्या है? मिथ्या का अर्थ अभाव नहीं होता, मेरे दोस्त! मिथ्या का अर्थ होता है–

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।।

(यो॰ सू॰ १/८)

जो वस्तु जैसी है, उसको हम वैसे नहीं जानते, उसके विपरीत जानते है तो कहते हैं कि वह मिथ्या है। विपर्यय का अर्थ है। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी न मानकर उसके विपरीत मानना। किन्तु जो हम मानते हैं कि वह वस्तु है ही नहीं, यह मिथ्या का अर्थ नहीं होता, यह गलत है इसलिए कुछ लोगों को भ्रान्ति हो जाती है। यदि कोई विद्वान् यह कहता है कि जगत् मिथ्या है तो वे समझते हैं कि वह कह रहा है जगत् है ही नहीं। जगत् है ही नहीं, यह कौन कह रहे हैं? जो सांख्य और वेदान्त के सिद्धान्त को नहीं जानते। यदि जगत् नहीं है तो "ब्रह्म सत्य" कहाँ से आयेगा? उसकी अनुभूति कैसे होगी? जो शास्त्र हम पढ रहे वा व्याख्यान दे रहे हैं, यह जगत् में है। इसके लिए जिस मन, बुद्धि और अहं का प्रयोग कर रहे हैं, वह भी जगत् में है। यदि सब कुछ जगत् में है और वह जगत् है ही नहीं तो हमारी व्याख्या कहाँ होगी? वह भी नहीं होगी। इसलिए मेरे दोस्त! जगत् मिथ्या है इस शब्द का अर्थ यह नहीं है कि जगत् है ही नहीं। मिथ्या शब्द का अभिप्राय यह है कि जैसा आप देख रहे हो वैसा नहीं है। जिस वस्तु को जैसा आप देख रहे हो, जान रहे हो, समझ रहे हो, वैसी वह नहीं है। जैसे इस दीवार को आप देख रहे हो लेकिन यथार्थ में यह दीवार नहीं है।

एक बात और याद रखना कि दर्शन शास्त्र का प्रयोजन अज्ञात का ज्ञापन होता है। बहुत कठिन बात कह दी है, इसे पुनः समझिये। दर्शन शास्त्र का प्रयोजन है कि जो आप देख नहीं रहे, जान नहीं रहे, समझ नहीं रहे हैं, उसको समझाना, बताना और दिखाना। उसका प्रयोजन यह नहीं कि जो हम जान रहे हैं, उसको बता दें। आप दीवार को देख रहे हो, हमारी फिलोस्फी भी कह दे कि यह दीवार है, फिर फिलोस्फी का क्या प्रयोजन है? इस फिलोस्फी

की क्या आवश्यकता पड़ गई? आप भी कह रहे हो दीवार है, हम भी कह दें दीवार है, फिर फिलोस्फी की क्या आवश्यकता? फिलोस्फी यह कहती है कि जिसे आप दीवार मान रहे हो, वह दीवार नहीं है, आपने इसको दीवार का नाम दिया है, यह तो परमाणुओं का संघात है। परमाणु क्या होते हैं? इलैक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन का संघात। सूक्ष्म तत्त्व के संघात को परमाणु कहते हैं और परमाणु के संघात को आपने दीवार का नाम दे दिया। यह दीवार आज से कुछ वर्ष पहले नहीं थी और आज से कुछ वर्ष बाद भी नहीं होगी। तीनों काल में एक रस नहीं रहेगी। जैसे यह दीवार एक रूप में भी नहीं रहेगी वैसे ये परमाणु भी नहीं रहेंगे क्योंकि परमाणु सूक्ष्म तत्त्व के परिणाम हैं, ये स्वयं में कारण नहीं कार्य हैं। फिर कारण क्या है? परमाणु का कारण इलैक्ट्रोन, प्रोटोन एवं न्यूट्रोन है। इलैक्ट्रोन, प्रोटोन एवं न्यूट्रोन भी स्वयं में कारण नहीं कार्य हैं। फिर कारण क्या है? वैज्ञानिक कहता है कि एनर्जी ही समस्त पदार्थों का मूल कारण है। एनर्जी को आप क्या कहते हैं? इसको हम आकाश कहते हैं। इसका अर्थ प्रकृति नहीं है। जो वैज्ञानिक की एनर्जी है, वह भारतीय दर्शन में आकाश तत्त्व है।

आसमन्तात् काशः आकाशः।

जो चारों ओर से चमक रहा है, वह आकाश है। कुछ लोग कहते हैं कि आकाश का अर्थ शून्य होता है। आकाश का अर्थ यदि कोई शून्य लगाता है तो यह उसकी बुद्धि की महिमा है किन्तु वेदान्त आकाश का अर्थ शून्य नहीं मानता। आकाश तो तत्त्व है, शून्य कभी तत्त्व नहीं हो सकता। तत्त्व उसे कहते हैं जिससे आगे अन्य पदार्थों की अभिव्यक्ति हो, शून्य से कोई वस्तु व्यक्त नहीं होती, अतः शून्य कोई तत्त्व नहीं लेकिन आकाश तत्त्व है, उस से व्यक्त होता है। क्या होता है? उपनिषद् कहती है–

एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।

(तैत्ति॰ २/१)

उस परम तत्त्व के संकल्प से आकाश प्रकट हुआ है इसलिए आकाश का अर्थ खाली अथवा शून्य नहीं। आकाश कारण तत्त्व है। तैत्तिरीयोपनिषद् में बताया गया है कि यदि वह रसस्वरूप आकाश न होता तो इस जगत् में कौन जीता? भारतीय दर्शन व्यक्ति के

दिमाग की उपज नहीं है, जीवन की खोज है। एक पश्चिम का दार्शनिक प्लेटो हुआ है, वह कहता है कि आश्चर्य वा कौतुहल से फिलोस्फी का आविर्भाव होता है किन्तु भारतीय दार्शनिक कहता है कि आश्चर्य से फिलोस्फी का जन्म नहीं होता। फिर कैसे होता है? जिज्ञासा से दर्शन प्रकट होता है। आश्चर्य और जिज्ञासा में बड़ा अन्तर है। भारतीय दर्शन का आविर्भाव अनुसन्धान में हुआ है। ऋषि कहता है–आकाश स्वयं में एक तत्त्व है, जिसका गुण शब्द है और वह आकाश अनेक प्रकार के तत्त्वों का कारण है। भिन्न–२ प्रकार के तत्त्व जैसे अग्नि तत्त्व, वायु तत्त्व आदि आकाश से प्रकट हुए हैं, सब का वह स्रोत एवं कारण भी है इसलिए हमारी भाषा में आकाश ही एनर्जी तत्त्व है। क्या इसकी व्याख्या हो सकती है? नहीं, उसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। यही कहा जा सकता है कि वह अनन्त है इसलिए वही समस्त दृश्य पदार्थों का कारण है। कहा नहीं, वही परम तत्त्व वा मूल कारण नहीं कयोंकि उपनिषद् कहती है–

एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।

उस परमात्मा से आकाश प्रकट हुआ है, कारण तो परमात्मा है। वह अनन्त चेतन कारण है, आकाश चेतन नहीं है। आकाश रसमय है लेकिन चिन्मय नहीं है। प्रकाशमय है किन्तु चिन्मय नहीं है क्योंकि प्रत्येक प्रकाशमय वस्तु चिन्मय नहीं होती। जो चिन्मय वा ज्ञानमय नहीं किन्तु प्रकाशमय है उसका नाम आकाश पड़ा। 'काश' धातु है उसमें 'आ' उपसर्ग लगा हुआ है जिसका अर्थ होता है 'आकाश' अर्थात् सब ओर से चमकता हुआ।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि भारतीय दर्शन में उस परम तत्त्व को समझने के लिए एक सुन्दर क्रम बताया गया। उस क्रमानुसार आपको जानने के लिए यह बताया गया कि जो मूल तत्त्व है वह शून्य नहीं। सूक्ष्मतम तत्त्व आकाश का भी कारण है। अच्छा तुम यह बताओ कि तुम स्वयं को व्यक्ति मान रहे हो कि मेरा यह व्यक्तित्व है। वेदान्त कहता है कि तुम्हारा व्यक्तित्व मिथ्या है। मिथ्या माने जिसे तुम व्यक्ति मान रहे हो वह नहीं है। व्यक्तित्व माने सीमित। आप ज़रा एकान्त में आँख बन्द करके बैठ जाओ और अपना अनुसंधान करो। फिर आपको यह ज्ञात होगा कि आपका यह व्यक्तित्व आकाश का ही परिणाम है। मेरे और आपके मध्य में जो

खाली स्थान दिखाई दे रहा है, यह स्थान पूरा आकाश से भरा हुआ है। आकाश से भरे हुए का अर्थ एनर्जी से भरा है। इसमें वही तत्त्व है जिस तत्त्व से आपका शरीर बना हुआ है। अन्तर यह है कि इस आकाश में वही तत्त्व सूक्ष्म रूप से हैं जो कि घनीभूत होकर आपके शरीर में परिणत हो गये हैं। जो वस्तुएँ आपके शरीर में और इस दीवार में हैं, वे सभी इस आकाश में हैं किन्तु जो आकाश में हैं वे सूक्ष्म हैं और जो दीवार में हैं वे स्थूल हैं। प्रश्न होता है कि सूक्ष्म वस्तुएँ कैसे स्थूल हो गईं? आपने बर्फ अथवा बर्फ की चट्टान देखी होगी, यदि उसको उठाकर फेंक दिया जाये तो सर फूट जाये। बर्फ की चट्टान क्या है? जमा हुआ पानी। पानी क्या है? ऑक्सीजन और हाईड्रोजन, दो प्रकार की गैसेज़ का परिणाम। जिनसे पानी बनता है वे गैसेज़ इस आकाश में हैं या नहीं? किसी वैज्ञानिक से पूछिए तो वह कहेगा कि यह आकाश तो गैसेज़ से भरा हुआ है। यदि ऑक्सीज़न हमारे नाक के द्वारा फेफड़ों में न जाए तो राम नाम सत् हो जाए। यदि हाइड्रोजन इसमें न हो तब भी राम नाम सत् हो जाए। आपको बाहर से जो उष्णता मिलती है, यह विभिन्न गैसेज़ की देन है। वही गैसेज़ इस आकाश में भरी हुई हैं। जो बर्फ का टुकड़ा आपने किसी को मार दिया और सर फट गया, उसी बर्फ के टुकड़े का कारण यह आकाश वा खाली स्थान है किन्तु यहाँ ऐसे–२ मारने से किसी का सर टूट रहा है? बिल्कुल नहीं। वही सूक्ष्म तत्त्व इस दीवार के रूप में प्रकट हैं, किन्तु उनसे आपको किसी प्रकार का आघात नहीं होता। यह रहस्य समझाना ही दर्शन का विषय है न कि जो आप जान रहे हैं उसे बताना। सनातन धर्म में आप क्या मानते हैं, कहाँ विश्वास करते हैं, किसको जल–पत्र चढ़ाते हैं, इससे कोई मतलब नहीं। आप कहीं भी चन्दन, रोली, पुष्प, अच्छत चढाओं, हमें कोई भी एतराज़ नहीं है। हम जानते हैं कि सत्य सर्वरूप में है।

हमारे यहाँ शास्त्रों में बताया गया है कि धर्म के दो अंग होते हैं, उनको दर्शन और नीति कहते हैं। दर्शन को हमारी भाषा में श्रुति कहते हैं और नीति को स्मृति। श्रुति का अभिप्राय है वे वैदिक मन्त्र जिनके अनुसंधान एवं व्याख्या के रूप में औपनिषदिक विज्ञान प्रतिष्ठित है। सांख्य और वेदान्त ने उन्हीं औपनिषदिक मन्त्रों की व्याख्या की है। वेदव्यास ने वेदान्त के सूत्रों में उपनिषद् के मन्त्रों

का समन्वय किया है। आप जानते हो, वेदान्त का पहला सूत्र है–"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।" यह ब्रह्म जिज्ञासा कहाँ से आई? श्वेताश्वतरोपनिषद् में:–

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।

(श्वेता॰ १/१)

यह मन्त्र 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस सूत्र का आधार है। पुनः दूसरा सूत्र है–

जन्माद्यस्य यतः। (वेदान्त दः १/१–२)

यह सूत्र तैत्तिरीयोपनिषद् से आया है–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि। जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्मेति।

(तैत्ति॰ ३/१)

वेदान्त दर्शन के सूत्र उपनिषदों के मन्त्रों का ही सामञ्जस्य हैं और कुछ नहीं। सांख्य में जिस सिद्धान्त की व्याख्या की गई है, वह प्रकृति और पुरुष उपनिषदों की ही देन हैं–

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

(श्वेता॰ ४/१०)

उसी को लेकर भगवान् कपिलदेव ने हमें सांख्य शास्त्र दिया और उन्हीं उपनिषदों के तत्त्वज्ञान को लेकर भगवान् व्यासदेव ने हमें वेदान्त शास्त्र दिया। तत्त्व विज्ञान के हमारे मूल दर्शन दो हैं-सांख्य और वेदान्त। तत्त्वतः यदि आप अनुसंधान करेंगे तो एक ही मिलेगा जिसे सांख्य कहते हैं। इसलिए मैं बता रहा था कि भारतीय दर्शन का मूल स्रोत श्रुति है, वेद है और दूसरा है नीति। नीति का आधार स्मृति है। श्रुति और स्मृति, ये दो ग्रन्थ माने जाते हैं, उन्हें दर्शन और नीति कहते हैं। नीति समय–२ पर परिवर्तित होती रहती है, नीति नित्य नहीं हो सकती। इसलिए हमारे यहाँ स्मृतियों के विषय में कहा गया है कि जो स्मृतियाँ श्रुति विरोधी हों उनको नहीं मानना चाहिए क्योंकि स्मृतियाँ परिवर्तनशील हैं? वे परम सत्य की व्याख्या नहीं करती, वे हमें रास्ता बताती हैं किन्तु सत्य का बोध करने के लिए तो श्रुति ही आधार है। श्रुति और स्मृति इन दोनों के द्वारा धर्म की प्रतिष्ठा होती है। एक का अभिप्राय है अभ्युदय और दूसरे का निःश्रेयस। इसलिए धर्म का मूल लक्षण करते हुए शास्त्रकारों

ने बताया—

यतो अभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धि स धर्मः।

जिसके द्वारा, जिससे मनुष्य अपना सर्वतोमुखी विकास करता हुआ निःश्रेयस् वा परम तत्त्व को प्राप्त कर ले, उसको धर्म कहते हैं। हम सनातन धर्म के दार्शनिक हैं। हम सनातन धर्म के रूप को बताते हैं। आजकल धर्म का अर्थ कुछ और ही है। वर्तमान का धर्म सनातन धर्म नहीं बल्कि सनातन धर्म का कार्टून है। जब किसी बात को, किसी रूप को विकृत करके प्रकट किया जाए तो उसे अंग्रेजी में कार्टून कहते हैं। इस समय जो सनातन धर्म आपको दिखाई देता है, यह उसका विकृत रूप है इसलिए मैं कहा करता हूँ कि यह धर्म नहीं बल्कि धर्म का कार्टून है। धर्म तो जाना जाता है, माना नहीं जाता। धर्म में विश्वास नहीं किया जाता, धर्म खोजा जाता है। धर्म को खोजने वा जानने के लिए श्रुति का संदेश है—"चरैवेति चरैवेति" आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, तब तुम उस धर्म को जानोगे। इन समस्त बातों को समझाते हुए मैं आप लोगों को बता रहा था कि सनातन धर्म आपको उस परम तत्त्व को प्राप्त करने की एक सुन्दर विधि बताता है और उस परम तत्त्व की मीमांसा करता है। वह आपको समझाता है कि यदि उस परम तत्त्व को प्राप्त करना है तो श्रुति और स्मृति प्रतिपादित, नीति और दर्शन, इन दोनों का अवलम्बन लो। विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो नीति और दर्शन का त्याग कर अपने जीवन को सुखी और शान्त बना सके।

नीति के अनुसार जीवन व्यतीत करने को ही हमारे यहाँ सदाचार कहते हैं, इसलिए सनातन धर्म का मूल आधार सदाचार है। हमारे यहाँ कर्म के तीन भेद बताये गये हैं—कर्म, शुभ कर्म, और सत्कर्म। एक विकर्म है, विकर्म करणीय कर्म नहीं है इसलिए उसको कर्म की गणना में नहीं लिया जाता। सद्कर्म की व्याख्या गीता के १७ वें अध्याय में है जिसमें 'सद् भावे साधुभावे च' की व्याख्या की गई है। सत्कर्म को ही यज्ञार्थ कर्म कहा गया है और गीता उसी का प्रतिपादन करती है। सत्कर्म के द्वारा ही मनुष्य सद्बुद्धि को प्राप्त कर मोक्ष का पात्र बनता है। शुभ कर्म के द्वारा मनुष्य को स्वर्ग मिलता है और कर्म के द्वारा मनुष्य को मृतलोक में सुख मिलता है। अब आप थोड़ा सा विचार करें, विश्व में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है

जो कर्म न करता हो। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है। बहुत कम व्यक्ति ऐसा कर्म कर पाते हैं जिसके द्वारा उन्हें सुख प्राप्त हो। क्यों नहीं कर पाते? कर्म की सम्यक् व्यवस्था ज्ञान के अभाव में नहीं हो सकती। एक बात और समझ लो। कर्म जो है वह आपके भाव की अभिव्यक्ति है, भाव आपके ज्ञान का प्रकाश है। जैसा ज्ञान होगा वैसा भाव बनेगा, जैसा भाव होगा वैसा आप कर्म करोगे इसलिए कर्म के साथ तीन बातें जुड़ी हुई हैं—कर्म, भाव और ज्ञान। यदि मूल में ही रोग लगा हुआ हो तो क्या उसका फल सुन्दर होगा? नहीं हो सकता। अज्ञानता कैसे फैलती है? अज्ञानता का मूल कारण जानते हो क्या होता है? भ्रान्तियाँ शब्द में होती हैं। हमारे यहाँ सनातन धर्म में, तन्त्र ग्रंथों में कई जगह बताया गया है कि बलि देने से देवता प्रसन्न होता है। भगवती को, भूतेश्वर को यदि बलि दो तो वे प्रसन्न हो जायेंगे। बलि किसकी देनी चाहिए? शास्त्रों में बताया गया है 'अज' की। 'अज' की बलि देने से भगवती प्रसन्न होती हैं। अज शब्द के दो अर्थ बताये गये हैं। अज का एक अर्थ बकरा, दूसरा अर्थ अहं होता है क्योंकि दोनों की आवाज़ एक सी ही होती है—'मैं' 'मैं'। भ्रान्ति कहाँ से होती है, देखिए आप। बकरा भी 'मैं' कहता है और अहं से भी "मैं" पैदा होता है। अहं की बलि देने से ही भगवती प्रसन्न होती है, इसमें कोई संदेह नहीं लेकिन अहं का काटना बड़ा कठिन था बकरे बेचारे को काटना बड़ा सरल था, इसलिए पुरोहित जी ने कहा 'मैं' नहीं बकरा काटो। अब इस 'मैं' के नाते बकरे बेचारे की बलि शुरू हो गई। कब से शुरू हो गई, भगवान् जाने या भगवती जाने। एक माहत्मा से पूछा गया कि इस संसार को बने कितने वर्ष हुए? कहा ४० वर्ष। अरे सन्त होकर झूठ बोलते हो? कहा इस संसार में हम तो चालीस वर्ष से हैं, इससे पूर्व संसार था कि नहीं, हमें क्या पता? मैं आप लोगों को समझा रहा था कि किस ढंग से विकृति आती है।

बड़े मज़े की एक बात और सुनाऊँ। भगवान् बुद्ध का नाम आपने सुना होगा। हमारे यहाँ सनातन धर्म में भगवान् बुद्ध विष्णु के अवतारों में नवें अवतार हैं। २४ अवतारों की गणना में २३ वें अवतार हैं। हम लोग बच्चेपन से ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने से संध्या वन्दन के समय संकल्प लेते हैं। तब हाथ में जल लेते ही "ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः" करके आखिर में 'बौद्धावतारे वर्तमाने यथा नाम

संवत्सरे' बोलते हैं। 'बौद्धावतारे वर्तमाने' बोले बिना हमारा संकल्प पूरा नहीं होता। हम सनातन धर्मी बुद्ध को भी भगवान् का अवतार मानते हैं। उतना ही महान् अवतार मानते हैं जितना राम को या कृष्ण को। भगवान् बुद्ध का अवतार क्यों हुआ था? हिंसा के विरोध में अवाज़ उठाकर राक्षस वृत्ति को प्राप्त हुए ब्राह्मणों की हिंसा वृत्ति का नाश करके अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा करना, भगवान् बुद्ध के अवतार का प्रयोजन था। भगवान् बुद्ध की मृत्यु के तीन सौ वर्ष बाद बुद्ध धर्म बाहर गया। बाहर जो लोग धर्म को ले गये, उनके संदेश को भी ले गये, उनकी जीवनी को भी ले गये। भगवान् बुद्ध की जीवनी में लिखा हुआ था कि उनकी मृत्यु शूकर मार्दव से हुई।

एक बार कुशीनारा में भगवान् बुद्ध अपने १२ सौ शिष्यों के साथ विराजमान थे। उनका एक चंदु नामक बढ़ई शिष्य था। उसने भगवान् को आमन्त्रित किया कि एक दिन की भिक्षा आप मेरे यहाँ स्वीकार करें। वह बहुत गरीब था, भगवान् बुद्ध ने उसकी भक्ति और गरीबी को देख कर कहा—एवमस्तु। उन्होंने जाकर चंदू के यहाँ भोजन किया। भोजन करने भगवान् बुद्ध जब बैठे तो उनके भोजन में जो सब्जी थी, वह शूकर मार्दव की सब्जी थी जिसको भगवान् बुद्ध ने खाया। खाने के बाद अपने शिष्यों से उन्होंने कहा, भिक्षुओ! मेरे जीवन के ये दो महत्वपूर्ण अन्न हैं, एक सुजाता की खीर, दूसरा चंदू की यह भिक्षा। कहने का अभिप्राय सुजाता की खीर खाने के बाद भगवान् बुद्ध को परमतत्त्व की, बुद्धत्व की, समाधि की प्राप्ति हुई थी। उन्होंने कहा—यह जो चंदू का आहार है, भिक्षा है, यह हमें महासमाधि में पहुँचायेगा क्योंकि भगवान् बुद्ध यह जानते थे कि शूकर मार्दव के खाने से मैं मर जाऊँगा। उनको डायसैन्टरी हो गई थी, जिसको संस्कृत में अतिसार कहते हैं। इसमें जो कुछ खाओ बाहर निकलता ही रहता है। अतिसार वाले रोगी को यदि शूकरमार्दव खिला दिया जाए तो वह उसके लिए विष है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को बता दिया कि मैं इन्कार तो कर नहीं सकता क्योंकि भिक्षा से प्राप्त हुआ है यह भोजन किन्तु मेरी यह आखिरी भिक्षा होगी। यह खाकर जब वह चले तो रास्ते में एक साल का वन था, वहाँ जाकर लेटे, इतना दर्द हुआ उनके पेट में कि दुबारा उठे नहीं। शूकर मार्दव खाकर के बुद्ध के जीवन का अन्त हुआ था। जब बुद्ध का धर्म बाहर गया ओर वे लोग भारत में आकर अध्ययन करने लगे कि

बुद्ध जो शूकर मार्दव खाकर मरे थे, वह शूकर मार्दव क्या है क्योंकि बाहर वाले सभी मांसाहारी थे सो उनको एक बात मिल गई। शूकरमार्दव का अर्थ है सूअर का बच्चा। अब उन्होंने निश्चय किया कि यदि हमारे भगवान् सूअर का बच्चा मरते–२ खाकर गये तो हम पीछे क्यों रहें। आप ज़रा सोचिए कि भगवान् बुद्ध जिस अहिंसा का प्रचार करने चले थे, बाद में सारा बौद्ध समाज हिंसा पर उतर आया और घोर मांसाहारी हो गया।

मांस किस ढंग से वे खाते हैं, उसकी व्याख्या करूँ तो आपको दुःख होगा। भगवान् ने मना किया है कि किसी को मारना नहीं परन्तु मांस खाना है। उन्होंने एक ढंग निकाला? जिन बातों का बुद्ध ने विरोध किया था, उन्हीं बातों को उन्होंने पकड़ा। भगवान् बुद्ध ने यज्ञों में बलि दिये जाने वाले पशुओं के विरोध में आवाज़ उठाई। पुरोहितों से पूछा कि तुम बकरे की बलि क्यों देते हो यज्ञ में? वे कहते हैं कि यज्ञ पशु को मोक्ष मिल जाता है। उन्होंने पुरोहितों से कहा कि यदि बकरे की बलि देने से मोक्ष मिलता है तो तुम अपनी बलि क्यों नहीं देते, सीधे मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। भले आदमी! मोक्ष जैसी अमूल्य वस्तु को तुम बकरे पर दया करके क्यों दे रहे हो? अपने को मोक्ष क्यों नहीं देते, सीधे स्वर्ग में पहुँच जाओगे। ये बुद्ध के तर्क थे ओर इन्हीं तर्कों ने सारी जनता को अपनी तरफ आकर्षित किया इसलिए भारत की सारी जनता उनके पीछे हो गई। हम इतिहास में पढ़ते हैं, पाँच–२ हज़ार सन्यासी अपने शिष्यों सहित बुद्ध को समर्पित हुए थे लेकिन दुर्भाग्य की बात, जिस बुद्ध ने हिंसा के विरूद्ध आवाज़ उठाई थी उन्हीं बुद्ध के अनुयायियों ने हिंसा का एक अलग ढंग अपनाया कि भगवान् ने कहा है कि मोक्ष करना चाहिए। मनुष्य का मोक्ष तो होगा त्याग से। पशुओं का मोक्ष कैसे होगा? इसके लिए उन्होंने ने एक युक्ति निकाली। भेड़ का, बकरे का, सूअर का मुँह कसकर बाँधते हैं। बाँधने से उसका श्वास बाहर नहीं जाता। नाक बन्द करने के लिए रूई ठूस देते हैं। जब उस पशु का श्वास बाहर नहीं निकलता तो पेट फूलने लग जाता है, पेट फट जाता है, इस प्रकार पशु मर जाता है। एक बार मुझे दुर्भाग्य से यह देखने को मिल गया था इसलिए मैं जानता हूँ। कई वर्षों तक मैं भारत का कोना–२ घूमता रहा। एक बार मैं अरुणांचल चला गया, जिसे नेफा कहते हैं,

आजकल वह अरुणांचल बन गया है। वहाँ मैं बौद्धों को देखने के लिए, उनका अध्ययन करने के लिए जाता रहा। उस समय मैंने उनकी इस दुर्गति को देखा। मैंने समझाया भी किन्तु उन नासमझ लोगों को कोई बात समझ नहीं आती क्योंकि सभी अबोध लोग हैं।

शूकर मार्दव क्या होता है, अब उसको समझिये। संस्कृत में हमारे यहाँ औषधियों में जो वस्तुएँ हम लोग खाते हैं उनके अनेक प्रकार के नाम हैं। हमारे यू॰ पी॰ में बण्डा होता है, पंजाब में जिसे कचालु कहते हैं। कचालु छोटा होता है बण्डा थोड़ा बड़ा होता है। अरबी जैसे उसके पत्ते होते हैं, अरबी का वह बड़ा रूप होता है। उसके ऊपर सूअर के बाल जैसे छिलका होता है इसलिए उसको संस्कृत में शूकर मार्दव कहते हैं। उस बण्डे के लिए बताया गया है कि यदि कोई संगृहिणी का रोगी उसे खा ले तो उसकी मृत्यु हो जाती है। वह उसके लिए विष तुल्य है। चन्दू ने उस बण्डे की सब्जी बना कर दी। वह गरीब आदमी था। बण्डा वहाँ आम मिलता है। बण्डा की सब्जी खाकर भगवान् बुद्ध का शरीर छूटा। संस्कृत में बण्डे का नाम सब्जी के रूप में शूकर मार्दव है लेकिन हिन्दी में शूकर मार्दव माने सूअर का बच्चा आम प्रचलित है। लोगों को शूकर मार्दव अर्थात् बण्डा खाने के बजाए सूअर का बच्चा खाना अधिक मधुर लगा। यहाँ से हिंसा शुरू हो गई। मैं आप लोगों को यह बता रहा हूँ कि शास्त्रों में अर्थ का अनर्थ कैसे होता है? पश्चिमी विद्वानों ने शिव पुराण एवं वेद मन्त्रों के श्लोकों का अनर्थ किया है। इन्हीं अनर्थों के कारण हमारा धर्म विकृत हो गया। धर्म की विकृति का एक यह भी कारण है।

एक बार मैं योग की एक पुस्तक पढ़ रहा था—हठयोग प्रदीपिका। उसमें लिखा है कि जो व्यक्ति गौ मांस खाता है, उसकी मुक्ति में संदेह के लिए कोई स्थान नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है। एक सज्जन वह पुस्तक लेकर मेरे पास पहुँच गये। कहने लगे, "गुरु जी! आप ज़रा इसकी व्याख्या कर दो।" मैंने कहा, भले आदमी! यह आपको किसने दे दिया? वह कहने लगे, "यह तो ग्रन्थ है, मैं इसे पढ़ने के लिए ले आया था। आप कहते हैं सनातन धर्म में मांस वर्जित है, इसमें तो गौ मांस की व्याख्या की गई है।" मैंने उससे कहा—भले आदमी! इस पुस्तक के प्रारम्भ में तूने पढ़ा है क्या लिखा है ? लिखा है—यह पुस्तक, यह ग्रन्थ, वह विद्या किसी तत्त्वज्ञ

गुरु से समझनी चाहिए। हमारे यहाँ जो रहस्यात्मक ग्रन्थ हैं, उनके प्रारम्भ में ही लिखा होता है कि इसको किसी सद्‌गुरु की शरण में जाकर समझो। अब वहाँ पर गौ माँस शब्द का अर्थ होता है खेचरी मुद्रा। मांस शब्द का संस्कृत में अर्थ होता है सार, जिस्ट (essence)। संस्कृत में गौ शब्द का अर्थ होता है जीह्वा। इन इन्द्रियों का रस जो है जीह्वा है और जिह्वा के रस का जो कोई भक्षण करता है, जो जिह्वा को खेचरी मुद्रा द्वारा तालु के मूल में लगाकर उसके रस का पान करता है, वह मोक्ष का अधिकारी होता है। खेचरी मुद्रा कैसे की जाती है? इसका क्रम बताया गया है कि प्रथम जिह्वा का दोहन होता है। इतनी लम्बी जीभ हो जाये जो नाक तक लग जाये, फिर उसे उठाकर अन्दर की तरफ ले जाओ। अन्दर जो छोटी जिह्वा है उसके बगल में उसे दबाओ। दबाने पर ऊपर से जो रस गिर रहा है उसका पान करो। यदि आपकी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो गई तो आप दीर्घायु प्राप्त करोगे, यह बात उसमें समझाई गई है। यह करना तो बड़ा कठिन था किन्तु उसका यह अर्थ लगाना बड़ा सरल था कि गऊ बिचारी को काटो, खाओ और अमर हो जाओ। यह जो प्रवृत्तियाँ रहीं इसका कारण था कि व्यक्ति अज्ञानता और अहंकार के नाते किसी सद्‌गुरु की शरण में नहीं जाता।

एक सज्जन कहने लगे, मैंने १८ अध्याय गीता पढ़ ली परन्तु गुरु किसी को नहीं बनाया। अरे भाई! बिना गुरु बनाए गीता कैसे पढ़ ली? वह कहता है मैंने गुरु बनकर गीता पढ़ी। वह कैसे? कहने लगा, अच्छा वेश बनाकर मैं एक पंडित के पास गया, उसने दूर से देखा यह तो बड़ा विद्वान् है। मैंने जाकर पूछा, क्यों भाई तुम्हें गीता पढ़नी आती है? पण्डित ने सोचा शायद कहीं यज्ञ हो रहा होगा उसमें पंडित की आवश्यकता होगी। उसने कहा, हाँ मैं जानता हूँ। जानता ही है या पढ़नी भी आती है, लिखनी भी आती है? पण्डित ने कहा, पढ़नी भी आती है और लिखना भी जानता हूँ। मैंने कहा, गीता के पहले अध्याय का पहला श्लोक लिखो। उसने लिख दिया। पढ़ो इसे। उसने पढ़ना प्रारम्भ किया—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।

(गीता १/१)

वह बोला, अच्छा तुम ठीक हो। वह देखता रहा कि इसका उद्‌देश्य क्या है? उससे डांट करके श्लोक लिखवा लिया, उससे

पढ़ भीं लिया। पढ़कर उसको बाहर जाकर याद कर लिया। ऐसे ही सात सौ श्लाक पण्डितों को डांटकर लिखवा भी लिये और पढ़ भी लिये लेकिन गुरु किसी को नहीं बनाया। क्या समझे? यह जो प्रवृत्ति है ज्ञान प्राप्त करने की मेरे दोस्त! इससे ज्ञान नहीं होता। ऐसे ही ज्ञानियों ने धर्म का सत्यनाश किया है। हम लोगों ने गुरुओं के चरणों में बैठकर सेवा की है, स्वाध्याय किया है, साधना की है। यथार्थ ज्ञान का बोध सद्गुरु की सेवा से ही प्राप्त होता है लेकिन मध्यकाल में यह प्रवृत्ति नहीं थी। उस कुप्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि हमारी भाषा में पल्लवग्राही पांडित्य का प्रचार हुआ अर्थात् शब्द ज्ञान हुआ। शब्द ज्ञान से अर्थ करने लगे, अर्थ का अनर्थ कर दिया। जो सुविधाजनक लगा उसको स्वीकार कर लिया, बाकी का छोड़ दिया। यह दृष्टिकोण हमारे पतन का कारण बना। हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म या अन्य सम्प्रदायों में हिंसा की प्रवृत्ति यहाँ से आई। एक सज्जन मेरे से कहने लगे कि वेद में भी हिंसा का विधान है। मैंने उससे कहा—देवता! तुम्हें मालूम है वेद में यज्ञ के लिए शब्द होता है अध्वर। यज्ञ में चार विद्वान् होते हैं—एक ब्रह्मा, एक होता, एक उद्गाता और एक अध्वर्यु। अध्वर्यु किसलिए होता है जानते हो? यज्ञ की सम्पन्नता के लिए ऋग्वेद का विद्वान् वहाँ बैठता है। उसका नाम अध्वर्यु क्यों है? ध्वर इति हिंसायाम। ध्वर का अर्थ है हिंसा, अध्वर्य का अर्थ है अहिंसा अर्थात् जिससे वह यज्ञ अहिंसापूर्वक पूर्ण हो, जिससे यज्ञ में किसी प्रकार की हिंसा वृत्ति की प्रवृत्ति न हो, इसलिए अध्वर्यु वहाँ बैठता है किन्तु बाद के मूर्खों ने उस अहिंसामय यज्ञ को हिंसा में परिवर्तित कर दिया।

महाभारत के एक श्लोक में आया है कि प्राचीन काल में यज्ञ देवताओं की तृप्ति के लिए शुद्ध सात्त्विक पदार्थों से किया जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा हुआ है कि ब्राह्मण के साथ ही गौ को परमात्मा ने जन्म दिया जिससे वह ब्राह्मण के यज्ञ की हवि बने। हविष्य को पैदा करने के लिए गौ का गोबर, गौ का मूत्र, गौ का दूध, गौ का दही, गौ का घृत, ये पदार्थ जिसे पंच गव्य कहते हैं, गौ माता से प्रकट होते हैं, इसलिए इन पंच गव्यों की महिमा है। यह बड़े रहस्य की बात है कि इन पंच गव्यों में ही सोम तत्त्व होता है। उसी सोम तत्त्व की यज्ञ में हवि दी जाती है। अग्नि और सोम के संयोग से ही सृष्टि हुई है इसलिए वेद कहता है 'अग्नि सोमात्मकं

जगत्'। यह सारी सृष्टि अग्नि और सोममय है। यज्ञ में उस सोम को अग्नि से युक्त करते हैं। यजुर्वेद में एक प्रश्न है कि यह सूर्य इतने वर्षों से जल रहा है, यह शान्त क्यों नहीं हो गया, इसको ईंधन कहाँ से मिल रहा है? ऋषि कहता है कि सोम इसका ईंधन है इसलिए यह जल रहा है। जब तक सोम है तब तक सूर्य का अंत नहीं हो सकता, यह शांत नहीं हो सकता। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि अग्नि और सोम की युक्तता ही यज्ञ का प्रयोजन है। सोम तत्त्व जिन–२ पदार्थों में है उन्हीं को हवनीय बताया गया है। यज्ञ में तिल की आहुति दी जाती है, जौं और चावल की आहुति दी जाती है, गेहूँ की नहीं दी जाती। और भी अन्न हैं, उनकी नहीं दी जाती। जिस–जिस अन्न में सोम तत्त्व अधिक होता है उन्हीं पदार्थों की आहुति दी जाती है। हर एक वृक्ष की लकड़ी का यज्ञ के लिए विधान नहीं। अमुक–२ वृक्ष की लकड़ी यज्ञ में डालनी चाहिए। क्यों? इसलिए कि सोम तत्त्व उन–उन लकड़ियों में, उन–२ वृक्षों में अधिक होता है। इस प्रकार यज्ञ अपने आप में बहुत बड़ा विज्ञान है। वो विज्ञान अब नहीं रहा, अब रही केवल परम्परा पूर्ति, तत्त्व की दृष्टि समाप्त हो गई। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि सनातन धर्म के मूल में जो सिद्धान्त हैं, वे श्रुति और स्मृति द्वारा प्रतिपादित हैं, उसको समझो।

हमारे इतिहास को विकृत किया गया अल्प बुद्धता के नाते, अबोधता के नाते, उस अबोधता को दूर करके सनातन धर्म के सही अर्थ को जानो। इसके लिए साधन–स्वाध्याय करो। मैं तो उन लोगों को कहता हूँ जिनका जीवन सनातन धर्म के नाते बीत रहा है या सनातन धर्म जिसका उपजीव्य है। ऐसे लागों को अपने जीवन को पूर्ण रूप से उसके लिए समर्पित करके उसका अनुसंधान करना चाहिए, तभी उस रहस्य को समझ पाऐंगे। मैंने विश्व में सनातन धर्म के नाम पर जितने लोगों को जीविका कमाते देखा है उतना किसी और के नाम पर नहीं देखा। लाखों नहीं करोड़ों लोग भारत में हैं जो केवल धर्म के नाम पर जीविका कमाते हैं। किन्तु दुर्भाग्य है कि उन करोड़ों में से लाख भी नहीं, हज़ार भी नहीं हैं जो कि उस धर्म के अनुसंधान के लिए अपने आपको समर्पित करें। यही कारण है कि विश्व का महानतम धर्म जिसके पास सांख्य एवं वेदान्त जैसी फिलोस्फी हो, जिसके पास महाभारत और रामायण जैसा इतिहास

हो, जिसके पास राम और कृष्ण जैसे आदर्श पुरुष हों, उस धर्म की यह अवस्था! ऐसा इसलिए है कि जो लोग उसके उपजीव्य हैं, जो लोग उसके द्वारा अपने आपको सुरक्षित रखे हैं, वे उसके प्रति समर्पित नहीं हैं। याद रखो एक सूत्र है मेरा जिसे मैं भारत में भी लोगों को समझाया करता हूँ कि धर्म जब जीवन के विकास की अपेक्षा जीविका का साधन बनकर रह जाए, उस समय धर्म का पतन होता है, विनाश होता है, ह्रास होता है। दुर्भाग्य से यही हुआ।

मैं आप लोगों से पुनः निवेदन करूँगा कि आप शाश्वत सनातन धर्म के वैदिक सिद्धान्त को किसी भी ग्रन्थ से समझिये। मैं आज कल शिव पुराण पढ़ रहा हूँ। ये जितनी बातें आप को तत्त्व विज्ञान की समझाई, सभी इसमें आई हैं लेकिन दूसरे रूप में, दूसरे ढ़ंग से। इन पुराणों में वेद का ही व्याख्यान है। इतिहास और पुराण दोनों वेद की व्याख्या के लिए ही प्रकट हुए हैं किन्तु पुराणों की भाषा बड़ी रहस्यमयी होती है, इसलिए उनको जानना बड़ा कठिन होता है।

आपको एक छोटी सी बात बताऊँ। पुराण में एक कथा आई है। भगवान् शिव पार्वती के निवास स्थान पर जहाँ वो स्नान कर रही थी, अन्दर जाने लगे। पार्वती ने अपने को पर्दे में रखने के लिए या लीला वश अपने शरीर के उबटन को मल कर के एक तत्त्व अर्थात् पुरुष पैदा किया। उसको ड्योढ़ी पर बिठा दिया, उसको आज्ञा दी कि कोई पुरुष अन्दर न आने पाये। शक्ति का प्रतिनिधि बाहर खड़ा हो गया। भगवान् शंकर आये और कहने लगे कि मुझे अन्दर जाना है। वह कहने लगा आप अन्दर नहीं जा सकते। शंकर पूछतें हैं–तुम कौन हो? वह कहने लगा–मैं माँ का पुत्र हूँ। वे कहते हैं–मैं तुम्हारी माँ का पति हूँ, मुझे अन्दर जाना है। उसने कहा–चाहे कुछ भी हो मैं नहीं जानता, मैं तो केवल माँ को जानता हूँ। वे समझाते हैं पर बात नहीं बनती। बाद में भगवान् शंकर अपने त्रिशूल से उसका सिर काट देते हैं। परिणाम क्या होता है? जब सती पार्वती को मालूम होता है तो बाहर आकर वह क्रुद्ध होती हैं। उनके क्रोध से सारा विश्व त्राहि–त्राहि करने लगता है। देवताओं की स्तुति से वे प्रसन्न होती हैं, इस शर्त पर कि मेरे पुत्र को जीवित किया जाये। भगवान् शंकर पुनः हाथी का सर लाकर उसके मस्तक को धड़ पर रख देते हैं और वह बालक

जीवित हो जाता है जिसे गजानन अथवा गणेश कहते हैं। इस प्रकार गणेश की उत्पत्ति हुई। बात सीधी सी है किन्तु इसमें इतनी महान् फिलोस्फी छिपी है, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। पहले शिव पुराण में जहाँ यह कथा है वहाँ देखिए कि शिव क्या हैं, पार्वती क्या हैं? इस यथार्थ का बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक आप शिव पुराण के शिव और पार्वती को न समझ लें। पुराणकार ने पूरे पुराण का ढ़ाँचा तैयार किया है इसलिए जब तक आप पूरे पुराण को नहीं जानते तब तक गणेश की कथा को आप कैसे समझेंगे? जब आप यह समझेंगे–**आत्मा त्वं गिरिजामति।** हे प्रभो! आप आत्मा हैं, गिरिजा बुद्धि है और "परिजनः प्राणाः शरीरं गृहं" प्राण ही परिजन हैं, यह शरीर उसका गृह है और हमारा शिखर जो है यही कैलाश है। जब तक यह नहीं समझेंगें तब तक क्या आप शिव पुराण के रहस्य को समझ पाएँगे? क्या कहानियाँ पढ़कर उस तत्त्व को आप समझ जाएंगे? नहीं समझ सकते। इसलिए किसी भी ग्रन्थ को, किसी भी चरित्र को, किसी भी कथा को समझना हो तो उसके समग्र रूप को आप समझिये। भागवत की कथा सुन कर लोगों को भ्रम हो जाता है। भगवान् कृष्ण गोपियों का चीर चुरा कर पेड़ पर चढ़ गये। वे बिचारी जल में नंगी खड़ी रहीं। उन्हें प्रभु ने कहा, बाहर आओ तब तुम्हें वस्त्र दे देंगे। कैसा भगवान् तुम्हारा है? अरे भले आदमी! तुम्हें कहाँ से पता चला? बोला, यह श्रीमद्भागवत में लिखा हुआ है। मैंने कहा कि श्रीमद्भागवत परमहंस संहिता का अर्थ यह है कि तुम लोगों के पढ़ने के लिए नहीं है, यह तो परमहंसों के पढ़ने के लिए है। 'परमहंस' किसे कहते हैं? जो उस परम तत्त्व को जाने हैं, समझे हैं।

श्रीमद्भागवत के वक्ता परमहंस शुकदेव जी हैं जिनको पता नहीं है कि मैं नंगा हूँ या वस्त्र धारण किए हूँ। आगे–२ शुकदेव जी जा रहे थे पीछे–२ उनके पिता व्यासदेव जी जा रहे थे। रास्ते में कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थी, शुकदेव को देखकर उनके पीछे लग गईं, उनको पता नहीं रहा अपने शरीर का। इतने में पीछे जब व्यासदेव को आते देखा तो उनको देखते ही लज्जा गईं, दौड़ कर वस्त्र पहनना आरम्भ कर दिया। व्यासदेव वहीं खड़े हो गये। बोले देवियो! तुम लोगों की बुद्धि इतनी भ्रष्ट है। क्या हुआ भगवन्? मेरा युवा पुत्र जा रहा है, उसके पीछे तुम लोग नंगी दौड़ रही हो। मैं

बूढ़ा आ गया, मुझे देखकर वस्त्र पहनने लगीं। इसका अभिप्राय है कि तुम मेरे पुत्र को मोहित करना चाहती थी अपने नग्न शरीर को दिखाकर। देवियों ने कहा–ऋषिवर! सावधान, हम लोग कुलांगना हैं, उत्तम संस्कारों में पली हुई स्त्रियाँ हैं, हम वैश्याएं नहीं हैं। आप जैसे ऋषि के मुँह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते। आपको समझना चाहिए कि हम आपके पुत्र के पीछे जब नग्न जा रही थीं तो हमें मालूम था कि आपके पुत्र को पता ही नहीं कि नग्न क्या होता है और आवरण क्या होता है। आपका पुत्र नग्नता और आवरण दोनों से परे है इसलिए उसके सामने लज्जा के लिए कोई स्थान नहीं था। लज्जा तो वहाँ हो जहाँ आवरण की जरूरत हो, जहाँ आवरण का बोध हो। जहाँ शरीर का ही बोध नहीं वहाँ आवरण की क्या आवश्यकता है? आप ऋषि हैं, फिर भी आपको आवरण का पता है, लज्जा का पता है, शरीर के अवयवों का पता है, इसलिए आपके लिए वस्त्र धारण करना हमारे लिए आवश्यक हो गया। आपकी दृष्टि में हम नग्न हैं लेकिन शुकदेव की दृष्टि में ना हम नग्न हैं ना वस्त्र वाली। वहाँ प्रतिपल आत्मतत्त्व की अनुभूति है और आपको शरीर और आत्मा दोनों की अनुभूति साथ–२ चल रही है। जब यह मीमांसा सुनी तो व्यासदेव का सिर देवियों के सामने झुक गया और उन्होंने उनसे क्षमा मांगी।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि वह शुकदेव जिनको अपने शरीर का भान नहीं, वो श्रीमद्भागवत के वक्ता हैं और जिनकी मृत्यु सातवें दिन होने वाली है, जो प्रत्येक परमाणु में मृत्यु के दर्शन कर रहा है, वह राजा परीक्षित अपने मोक्ष के लिए श्रीमद्भागवत का श्रोता है और ऋषिगण वहाँ पर बैठकर उसका साथ दे रहे हैं। परमहंस के द्वारा व्याख्यात जो परमहंस संहिता है, उसे तुम विषयी जीव जब पढ़ोगे तो यही सोचोगे और क्या सोचोगे? जब भगवान् श्री कृष्ण चीर का हरण किए थे मालूम है, कितने वर्ष के थे? सात वर्ष के। सात वर्ष का बालक कितना बड़ा होता है। सात वर्ष के बालक को तुम विषयी मान सकते हो? नहीं मान सकते। जब भगवान् ने महारास किया था, मालूम है कितने वर्ष के थे? नौ वर्ष के थे। नौ वर्ष का बालक क्या होता है? यह भगवान् की लीला है, उसको समझो। रास पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत का सार है, रहस्य है और वेदान्त का निचोड़ है लेकिन दुर्भाग्य है कि

छापेखाने की महिमा से घर–२ में यह पुस्तक पहुँच गई। लोगों ने उसका मनमाना अर्थ कर दिया। कहते हैं पुराण में सारा गप है। पहले उसको समझो, पुराण क्या है, उसका तत्त्व क्या है, उसका रहस्य क्या है? जब तक तुम इसको नहीं समझोगे, तब तक उसके भाव को प्राप्त नहीं कर सकते, इसलिए मैंने आपको समझाया कि इस शिव पुराण में जो गणेश तत्त्व है, उसे भी समझो। सनातन धर्म का जो दार्शनिक रूप है, वह नित्य है, इसको समझ लो। उसके ऊपर लिखी जितनी मान्यताएं हैं, उनमें से जितनी अनुकूल हैं उनको स्वीकार करो, जो अनुकूल नहीं हैं उनको छोड़ते चले जाओ। अनावश्यक मान्यताएँ यदि तोड़ दी जाएँ, छोड़ दी जाएँ तो इसमें कोई पाप नहीं है। कब पाप नहीं? जब वे हमारे विकास के प्रतिकूल हों। दो शब्दों में समझाकर बंद करता हूँ।

रामायण में एक कथा आती है। भगवान् राम और भरत दोनों भाई हैं, एक बाप के बेटे हैं। माँ दोनों की अलग–२ है। माँ और बाप की बात मानकर राम वन को जाते हैं। माँ और बाप को अस्वीकार करके भरत वन को जाते हैं। मान्यता यह है कि माता पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए। इस मान्यता का पालन राम करते हैं और इस मान्यता का त्याग भरत करते हैं। त्याग करने वाले भरत भी धर्मात्मा, महात्मा और माँ–बाप की आज्ञा का पालन करने वाले राम भी धर्मात्मा, महात्मा हैं। दोनों के स्तर में कोई अन्तर नहीं है। यदि पूछा जाए कि मान्यता सही थी वा गलत? मैं यही कहूँगा कि राम के लिए सही थी और भरत के लिए गलत थी। जो बात मानकर राम वन को गए, यदि वही बात मानकर भरत राज्य कर लेते तो रामायण का आदर्श समाप्त था, रामायण की कथा समाप्त थी, रामायण का गौरव समाप्त था। आज दुनिया में ना राम की कीर्ति होती न रामायण की होती किन्तु माता–पिता की आज्ञा को ठोकर मारकर के ही भरत ने राम को श्रीराम के रूप में प्रतिष्ठित किया और आज उनकी महिमा का प्रकाश है। इसलिए मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि जो मान्यताएँ आपके विकास में बाधक हों उनको त्याग दीजिए, कोई पाप नहीं वहाँ पर। जो मान्यताएँ आपके विकास में उपयोगी हों उनको स्वीकार कीजिए। नित्यप्रति नई–२ मान्यताएं बनती रहती हैं, इसलिए हमारे यहाँ स्मृतियाँ बनती रहती हैं, बनती आई हैं और

बनती रहेंगी समय–समय पर। जीवन के विकास की व्यवस्था का विधान नित्य नहीं हो सकता। इसमें परिवर्तन होता रहता है और सबके लिए एक नहीं होता। राम कह रहे हैं बाप की आज्ञा धर्म है। लक्ष्मण से कह रहे हैं तुम बाप की आज्ञा मानकर घर पर रहो। लक्ष्मण कहते हैं कि आपके लिए यह धर्म होगा मेरे लिए नहीं है, मैं तो आपके साथ चलूँगा। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन चार भाई हैं। चारों का जीवन आप देखिये, चारों की विचारधारा अलग–२ है। आजकल लोग कहते हैं कि जब हम सबकी विचारधारा एक हो जाएगी तो हम एक हो जाऐंगे। याद रखो, जब हम सबकी विचारधारा एक हो जाएगी तो हम पशु हो जाएंगे। तब हम मनुष्य नहीं रहेंगें। मनुष्य वह है जिसकी बुद्धि काम करती हो। राम की बुद्धि अपनी जगह काम कर रही है और लक्ष्मण की अपनी जगह। राम कह रहे हैं लक्ष्मण तुम घर पर रहो।

भवन भरतु रिपु सूदनु नाहीं।
राउ वृद्ध मम दुखु मन माहीं।।
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा।
होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।।

(रा॰ २/७१–२,३)

लक्ष्मण उत्तर देते हैं–

धरम नीति उपदेसिअ ताही।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।

(रा॰ २/७२–७)

हे नाथ! जो आपने धर्मनीति का मुझे उपदेश दिया, उसका पात्र मैं नहीं, यह तो आप उसको दीजिए जिसको स्वर्ग प्रिय हो, कीर्ति प्रिय हो, सद्‌गति प्रिय हो। हमें स्वर्ग नहीं चाहिए, कीर्ति नहीं चाहिए। भगवान् पूछते हैं फिर क्या चाहिए? वे कहते हैं –

नाथ दासु मै स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ।

(रा॰ २/७१)

कहा, हमें तो इन चरणों में शरण दीजिए। राम उसी समय द्रवित हो जाते हैं–

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई।।

(राम॰ २/७३–१)

जाओ माता से विदा माँग आओ, मेरे संग चलो। लक्ष्मण दौड़कर माँ से विदा माँगने के लिए गये। माँ ने पूछा, कैसे आए? लक्ष्मण ने बता दिया कि राम वन को जा रहे हैं। माँ ने कहा, तुम यहाँ कैसे आ गये? लक्ष्मण ने कहा कि उन्होंने मेरे से कहा है कि तुम माँ के पास जाकर विदा माँग आओ। माँ ने कहा, अरे वत्स! मैंने तुम्हें कई बार समझाया, मैं तेरी माँ नहीं। लक्ष्मण हैरान हो गये कि फिर मेरी माँ कौन?

तात तुम्हारि मातु बैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अबध तुम्हार काजु कुछ नाहीं।।

(रा० २/७४–२,४)

तुम्हारी माँ सीता है। मैं तो तुम्हारे शरीर की माँ हूँ। दशरथ तुम्हारे शरीर के पिता हैं। तुम्हारे माता–पिता तो राम और सीता हैं। सीता प्रकृति स्वरूपा तुम्हारी माँ है और राम परमात्मा स्वरूप तुम्हारे पिता हैं। लक्ष्मण की आँख खुल गई। सुमित्रा ने कहा–एक बात याद रखो, अभी राम ने कहा तुम माँ से विदा माँग लाओ तो तुम मेरे पास चले आए, अब यहाँ से जाओगे तो कहेंगे पिता के पास जाओ तो तुम पिता दशरथ के पास चले जाना, फिर कहेंगे स्त्री से विदा माँग आओ क्योंकि तुम संसार को स्वीकार करते हो तो संसार के कर्तव्य को भी स्वीकार करो और उसके प्रति तुम्हारा जो धर्म है उसे भी स्वीकार करना पड़ेगा। माँ सुमित्रा कह रही हैं कि लक्ष्मण तुम्हें मैंने समझाया था–

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें।
सब मानिअहिं राम के नातें।।

(रा० २/७४–७)

लक्ष्मण ने कहा कि मैंने तो कहा था–

गुर पितु मातु न जानउँ काहू।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबन्धु उर अंतरजामी।।

(रा० २/७२–४,६)

"मैं माता, पिता, गुरु किसी को नहीं जानता, मेरे सब कुछ

आप हो"। कहा, फिर? प्रभु ने कहा माँ से विदा माँग आओ। माँ बोली, जब एक बार तुमने प्रभु से कहा कि मैं माता, पिता, गुरु को जानता ही नहीं, फिर तुम मेरे पास क्यों आज्ञा लेने आए? तुम्हारी वो बात सही है या यह बात सही है, कौन सी सही है? एक व्यक्ति कहता है, मैं तो माँ को जानता ही नहीं। जब जानते ही नहीं तो आए क्यों? कहा, तुम्हारे साथ धोखा हुआ है। तुम सीधे चले जाओ। मैं तुम्हारी कुछ नहीं लगती। आप ज़रा सोचिए राम का सिद्धान्त जो है उससे बिल्कुल विपरीत लक्ष्मण का सिद्धान्त है। राम कहते हैं–

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें।
चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें।।

(रा॰ २/३१५–५)

माता–पिता, गुरु की आज्ञा यदि गलत मार्ग के लिए हो तो उस पर भी तुम चले जाओ, तुम्हारा पाँव नीचे नहीं जाएगा। भरत कहते हैं–

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू।
धरमु जाइ सिर पातक भारू।।

(रा॰ २/१७७–३,४)

मैं जानता हूँ कि माता, पिता, गुरु की आज्ञा सिर माथे स्वीकार करनी चाहिए। यदि उनका उलंघन करता हूँ तो धर्म नष्ट होता है, पाप लगता है। गुरु वशिष्ठ से कह रहे हैं–

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें।
तदपि होत परितोषु न जी कें।।

(रा॰ २/१७७–५)

"मैं सब कुछ समझता हूँ, गुरुदेव! परन्तु आपकी बात को मानकर हृदय को शान्ति नहीं है। धर्म शास्त्र में बताया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

धर्म का निर्णय करने के लिए चार आधार हैं–वेद, स्मृति, सदाचार और जो आपकी आत्मा को प्रिय हो। भरत जी कह रहे हैं कि वेद कहता है, आप कहते हैं, सदाचार कहता है लेकिन जब मेरी आत्मा को ही प्रिय नहीं है तो ऐसे धर्म को लेकर क्या करूँगा? इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा हूँ कि लक्ष्मण की विचारधारा

भिन्न है, राम की विचारधारा भिन्न है, भरत की विचारधारा भिन्न है और शत्रुघन की विचारधारा भिन्न है। चारों भाईयों की चार विचारधाराएं थी। आप कहोगे कि उन चारों के चार धर्म थे? नहीं, चारों शाश्वत सनातन धर्म के साकार विग्रह हैं। इसलिए भ्रम को छोड़कर जो मान्यताएँ तुम्हारे विकास में बाधक हैं, उन्हें त्याग दो। साहस के साथ, बुद्धि के साथ, विवेक के साथ जीवन के विकास पथ पर आगे बढ़ो, यही सनातन धर्म की सीख है।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१५/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

शिव पुराण महायज्ञ का आज पाँचवां दिवस है, धीरे–२ समय बीत जाता है पता नहीं लगता। ऐसे ही १२ दिन पूरे हो जायेंगे। शाश्वत सनातन धर्म के विषय में जितनी बातें मैं आप लोगों को बताना और समझाना चाहता हूँ, उसके लिए १२ दिन तो क्या शायद १२ वर्ष भी कुछ नहीं होंगे। मेरा प्रयत्न है कि अल्प समय में अधिक से अधिक मूल बातें जो तत्त्व से सम्बन्धित हैं, वो समझा दूँ। मेरी आन्तरिक चाह है कि सारा मनुष्य समाज नहीं तो कम से कम हिन्दू मात्र को सनातन धर्म की गौरवमयी गाथा का ज्ञान होना ही चाहिए। यदि हिन्दू धर्म में जन्म लेकर भी शाश्वत सनातन धर्म के अमूल्य ज्ञान विज्ञान की राशि का बोध न हो तो उससे और बड़े दुर्भाग्य की बात कुछ हो नहीं सकती। तुलसीदास जी ने अपनी विनय पत्रिका में लिखा है–

यह भरतखण्ड, समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तेरी कुमति कायर! कलप-बल्ली चहति है विष फल फली।।

(वि॰ प॰ १३५/१)

'तुम बड़े भाग्यशाली थे कि शाश्वत सनातन धर्म का विज्ञान तुम्हें उत्तराधिकारी के रूप में मिला। जन्मजात तुम्हें उसका अधिकार मिला।' गोस्वामी जी कहते हैं–

दियो सुकुल जनम, सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारिको।
जो पाइ पण्डित परमपद, पावत पुरारि-मुरारिको।।

(वि॰ प॰ १३५/१)

'तुम्हें मनुष्य का सुन्दर शरीर मिला है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पदार्थों का मूल साधन तत्त्व है। मनुष्य बनने के पश्चात् भी तुम भाग्यशाली थे क्योंकि भारत से सम्बन्धित तुम्हारा जीवन रहा।' हमारे देश का नाम भारत है और वैदिक काल में यहाँ के लोगों को 'भारतं जन्म' ऐसा कहा जाता था और महाभारत काल

में सामूहिक नाम भारत था। सारे देश के निवासियों को भारत कहते थे। 'भायां रतं भारतं' जो 'भा' में रत हो। 'भा' माने प्रकाश, ज्ञान और ज्योति। इसी 'भा' धातु से प्रभा, विभा, आभा, शुभा आदि शब्द बनते हैं। 'भा' माने प्रकाश जैसे आत्मप्रकाश, ज्ञान प्रकाश, दिव्य प्रकाश आदि। जो प्रकाश में रत है अर्थात् लगा हुआ है, उसी में लीन है, उसको कहते हैं भारत। कितना पावन नाम है, कितना सुन्दर नाम है अपने देश का, धर्म का, जाति का! हम भारतीय हैं और हमारा देश भारत है। यदि हमारा जीवन भारत न बना तो हमारा जन्म व्यर्थ हो गया। आप लोग भी भारत के ही हैं, विश्व के किसी भी देश में रहो, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। संस्कार और रक्त तो भारत का है। गोस्वामी जी कहते हैं कि इतने उत्तम कुल में, उत्तम जाति में जन्म लेकर, जिसके उत्तराधिकार में वेद जैसा शास्त्र और १२ दर्शन मिले हों जिसमें दुनिया भर के सारे वाद समाये हुए हैं, जिस जाति के पास योग ऐसा वैज्ञानिक दर्शन, सांख्य ऐसी वैज्ञानिक फिलौस्फी, वेदान्त ऐसा अद्वितीय शास्त्र और महाभारत, रामायण ऐसे सद्ग्रन्थ हों, राम और कृष्ण ऐसे जिसके यहाँ अवतार हों, रामायण और महाभारत जैसे पुनीत चरित्र का वर्णन करने वाले इतिहास हों, उस में जन्म लेने वाला भी यदि केवल विषयों में लगकर अपने जीवन को बरबाद कर दे तो कहते हैं–

तेरी कुमति कायर! कलप-बल्ली चहति है विष फल फली।।

(वि॰ प॰ १३५/१)

'हे कायर! हे तुच्छ! यह बड़े दुःख की बात है कि तुम्हारी कुमति के कारण यह कलप बल्ली, जो स्वर्ण बल्ली है अर्थात् तुम्हारा जो मनुष्य शरीर है इसमें विष रूपी फल फलना चाहता है, इसका परिणाम तुम्हें नरक में ले जायेगा।' इसलिए मेरी यह चाह है कि मैं प्रत्येक हिन्दू के कान तक उस शाश्वत सनातन धर्म का अमर संदेश पहुँचा दूँ। मेरी बात सुनकर समझ चाहे आपको नहीं आये किन्तु गौरव तो होगा, आत्मबल तो बढ़ेगा, अपने पर विश्वास तो होगा। आत्म विश्वास से बढ़कर विश्व में कोई दूसरी वस्तु नहीं। दुनिया का समस्त वैभव, सम्पत्ति और ऐश्वर्य एक ओर हो तो भी आत्मविश्वास का पलड़ा भारी होता है। मनुष्य को आत्मविश्वास कब होता है? जब वह अपने आपको जानता है, अपने गौरव को पहचानता

है, अपने इतिहास एवं धर्म के विषय में आस्था रखता है तभी उसमें आत्मबल जाग्रत होता है। इसलिए मैं आप लोगों को अल्प समय में धर्म शास्त्र की अत्याधिक बातें समझा देना चाहता हूँ। यह तो बड़े सौभाग्य की बात है कि बारह दिन का लगातार कार्यक्रम आपको सुनने के लिए मिल गया और मैंने भी बहुत वर्षों बाद यह काम करने का सोचा। वैसे आजकल मैं यह काम करता नहीं क्योंकि आप लोग यहाँ के रहने वाले हैं इसलिए मुझे जानते नहीं लेकिन भारत के लोग जिस दृष्टि से मुझे देखते हैं, वह और दृष्टि है। यदि किसी को पता चले कि स्वामी जी शिवपुराण की कथा कर रहे हैं तो उन्हें आश्चर्य होगा क्योंकि यह मेरा काम नहीं। पण्डित लोगों से यह मैं करवाता हूँ। यहाँ मैं यह सोचकर कि बारह दिन तक मैं अपने बन्धुओं को इसी के नाते सनातन धर्म का विज्ञान दे सकूंगा और दूसरा हरिनारायण की श्रद्धा के कारण मैंने स्वीकार कर लिया कि ठीक है। भगवान् शिव की बड़ी कृपा है कि यह सकुशल सम्पन्न होगा और आप लोग बहुत कुछ समझ सकेंगे। आज की कथा में जो विशेष बात आई वह सारी तो बता नहीं सकता। लगभग १०००, १५०० श्लोक नित्यप्रति पढ़ता हूँ, उसकी व्याख्या कौन कर सकता है। संक्षेप में सिद्धान्त की बातें बता रहा हूँ, उसे समझिये।

मैंने कल आप लोगों को समझाया था कि विश्व में दो शक्तियाँ हैं और दोनों तत्त्वतः एक हैं किन्तु एक दो रूपों में प्रकट होकर सृष्टि का कार्य किया करती हैं। उन दोनों परम शक्तियों को शिव और शिवा, शिव और शक्ति कहते हैं, उन्हीं को राम और सीता, कृष्ण और राधा, नारायण और लक्ष्मी आदि नामों से पुकारा जाता है। तत्त्वतः उनमें कोई भेद नहीं, नाम, रूप, लीला में भेद है। लीला मात्र के लिए जब भगवान् अपने को साकार रूप में प्रकट करते हैं तो उनके अनेक नाम हो जाते हैं और अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं। राम जब स्वयं कृष्ण रूप में प्रकट होते हैं तो उनकी लीला और है, जब राम के स्वरूप में हैं तो उनकी लीला और होती है। उसी प्रकार वह परमात्मा जब शिव रूप में प्रकट होता है तो उसकी लीला भिन्न होती है और विष्णु रूप में प्रकट होता है तो उसकी लीला और होती है। परमात्मा वही है, सत्ता दो नहीं, अलग नहीं, एक ही है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' सत्य एक

है परम तत्त्व एक है, ब्रह्म एक है, परमात्मा एक है लेकिन बहुत से नामों से पुकारा जाता है। सनातन धर्मी बहुत परमात्मा नहीं मानते। सनातन धर्म में बहुत से देवता होने पर भी उपास्य देव तो एक ही है।

देवता किसे कहते हैं? देवता का अर्थ है उस देव की शक्ति के प्रकट होने का माध्यम। जैसे एक ही बिजली (इलैक्ट्रिसिटी) इस माईक के साथ हमारी आवाज़ को फैला रही है, लाईट के द्वारा हमें प्रकाश दे रही है, हीटर के द्वारा हमारा और कोई काम कर रही है, टेप रिकार्डर के साथ टेप कर रही है, टी.वी. के द्वारा हम घर पर बैठे दूर–२ के दृश्य देख रहे हैं। कहने का अभिप्राय एक ही इलैक्ट्रिसिटी हमारा इतना काम कर रही है। यदि एक इलैक्ट्रिसिटी से इतना काम हो सकता है तो एक परमात्मा कितना काम कर सकता है, ज़रा कल्पना तो करो। एक विद्युत शक्ति जब इतने रूपों में काम करती है, हवा भी देती है, गर्मी भी देती है, सर्दी भी देती है कहने का अभिप्राय कि एक ही बिजली से गर्मी भी, सर्दी भी, अन्धकार भी और प्रकाश भी होता है। यदि विद्युत शक्ति अपने आप को समेट ले तो अन्धकार हो जाये, यदि अपने को प्रकट कर दे तो प्रकाश हो जाये। यह तो आप देख रहे हो कि एक अग्नि तत्त्व के कितने भेद हो सकते हैं? जैसे एक व्यक्ति है, यदि पूछा जाये व्यक्ति क्या है? कोई व्याख्या कर सकता है? नहीं कर सकता। जब कहने लगोगे तो इतना कहोगे कि अमुक का बेटा है, अमुक का भाई है, पिता है, चाचा है, मामा है, पति है और किसी का पौत्र है,। कितने सम्बन्ध हो जाते हैं? जितने उसके सम्बन्धी हैं, उतने भाव वा उतने नाम से उसे पुकारेंगे। उतने नाम से पुकारने पर वह उतने व्यक्ति तो बन नहीं गया। यदि स्त्री कहती है मेरा पति है और बाप कहता है मेरा पुत्र है तो क्या दोनों झूठ बोल रहे हैं? अज्ञानी कहेगा एक ही व्यक्ति पुत्र और पति कैसे हो सकता है या तो पति होगा या पुत्र होगा। अरे भले आदमी! एक का पुत्र हो सकता है, एक का पति हो सकता है, न जाने क्या–२ हो सकता है। जब एक मनुष्य के इतने भेद हो सकते हैं तो मेरे दोस्तो! एक परमात्मा के कितने भेद हो सकते हैं? कितने नामों से परमात्मा पुकारा जा सकता है, कोई कल्पना कर सकता है? नहीं कर सकता। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि सनातन धर्म में परमात्मा एक है, नाम और रूप

अनेक हैं क्योंकि उसके कार्य और लीलाएँ अनेक हैं। यह तो आप जानते हो कि जिस रूप में इलैक्ट्रिसिटी प्रकाश दे रहीं है उसी रूप में आप चाहो कि हमारे शब्द को फैला दे तो नहीं फैला सकती। जिस प्रकार का काम लेना है उसी प्रकार का रूप जोड़ना पड़ेगा। जैसा रूप जोड़ देंगे वैसा काम करने लगेगा। जो भेद है वह रूप के नाते है और नाम रूप से सम्बन्धित होता है। इसी रूप से परमात्मा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, राम, कृष्ण अनेक रूपों में प्रकट होता है। परमात्मा के अनेक रूप और नाम हैं पर तत्त्वतः कोई भेद नहीं।

वह परमात्मा शिव रूप में प्रकट होकर अनेक प्रकार की विचित्र लीलाएँ कर रहा है। कभी–२ तो ऐसे लगता है कि वह परमात्मा कैसा? कभी ऐसा लगता है कि वह परमात्मा तो हो नहीं सकता, परमात्मा की ऐसी विलक्षण लीला! यदि परमात्मा लीला न करे तो परमात्मा है, इसका क्या पता लगेगा? यदि संसार न बनता, हम आप न होते, हमारे आप में बुद्धि न होती तो क्या परमात्मा के चरित्र को इस प्रकार बैठ कर सुनते? नहीं सुन सकते थे। किसी ने पूछा कि परमात्मा सृष्टि क्यों करता है? वेदान्त सूत्र कहता है–"लीलावत्तु कैवल्यम्" क्रीड़ामात्र के लिए। वेद का एक मन्त्र है–"एकाकी न रमते," अकेले रमण नहीं होता, खेल नहीं होता, क्रीड़ा नहीं होती इसलिए–"सः अकामयत् एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेत्।" उसने कामना की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। उसके संकल्पमात्र से एक से अनन्त ब्रह्माण्डों का आविर्भाव होने लगा। महानारायणोपनिषद् में बताया गया है कि महानारायण के आँख का खोलना सृष्टि है, आँख खोल कर देखना पालन है और आँख बन्द कर लेना प्रलय है। बस इतने में ही सृष्टि, पालन और प्रलय हो जाता है। जितना महानारायण का आँख खोलना, देखना और बन्द कर लेना है इतने में ही विष्णु का एक पूरा जीवन बीत जाता है। विष्णु के एक दिन में ब्रह्मा की पूरी आयु समाप्त हो जाती है। ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु है। वह वर्ष कितना बड़ा है, सुनो। हमारे दिन और रात के २४ घण्टे होते हैं। २४ घण्टे को मिलाकर एक दिन होता है, इस दिन से १५ दिन का कृष्ण पक्ष और १५ दिन का शुक्ल पक्ष होता है, इसको मिला कर एक मास होता है और १२ मास का एक वर्ष होता है। इस एक वर्ष के हिसाब से ४ लाख ३२ हज़ार वर्ष का कलियुग होता है। इससे दुगुना ८ लाख ६४ हज़ार वर्ष का द्वापर और इससे

तिगुना १२ लाख ६६ हज़ार वर्ष का त्रेता और इससे चौगुना १७ लाख २८ हज़ार वर्ष का सतयुग होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारों की संख्या मिलाकर एक महायुग होता है। इस महायुग के हिसाब से जब ७१ महायुग बीतते हैं तो एक मन्वन्तर होता है अर्थात् जब ७१ बार त्रेता, द्वापर, सतयुग और कलियुग बीतते हैं तब एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में एक मनु और इन्द्र की आयु पूरी हो जाती है। सप्त ऋषि बदल जाते हैं। मनु, मनु पुत्र, इन्द्र और सप्त ऋषि इनकी आयु एक मन्वन्तर की है। एक मन्वन्तर के बाद ये समाप्त हो जाते हैं और दूसरा मन्वन्तर चलता है। ऐसे ही जब १४ मन्वन्तर बीतते हैं तो ब्रह्मा का एक दिन होता है। जितना बड़ा ब्रह्मा का दिन है उतनी बड़ी ब्रह्मा की रात्रि होती है। उस दिन और रात्रि के हिसाब से ३६० दिन का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। उस वर्ष के हिसाब से ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु है। इस प्रकार ब्रह्मा का जब १०० वर्ष बीतता है तब विष्णु का एक दिन बीतता है और ब्रह्मा उस समय समाप्त हो जाते हैं। उतनी बड़ी विष्णु की रात्रि होती है। फिर बाद में जब विष्णु का दूसरा दिन प्रारम्भ होता है उस समय दूसरे ब्रह्मा की आयु प्रारम्भ होती है। विष्णु की आयु में ऐसे कितने ब्रह्मा बीत जाते हैं, जिसका कुछ पता नहीं। वे विष्णु जिसकी आयु में अनेकों ब्रह्मा बीत जाते हैं, उस विष्णु की सारी आयु कितनी होती है? महानारायण की आँख खोलना, देखना और बन्द कर लेना। अब आप कल्पना कीजिए यह कितनी अनन्त सृष्टि है, इसका कहीं ओर–छोर है? जिस समय महानारायण आँख खोलकर देखते हैं और बन्द कर लेते हैं, इसमें उनका एक पल होता है। महानारायण की कोई आयु नहीं और महानारायण जिससे प्रकट हुए हैं वह सदाशिव हैं, उनकी कोई आयु नहीं। वही सदाशिव अव्यक्त होने पर सदाशिव है, जब व्यक्त होता है तो महानारायण हो जाता है। दोनों अभेद हैं, दोंनों अभिन्न हैं, एक ही के दो नाम हैं, दो पहलू हैं एक निराकर और दूसरा साकार है। जिस विज्ञान को आप लोग सुन रहे हो, वह सदाशिव का विज्ञान है। जो अनेक रूपों में अवतार लेते हैं वह महानारायण होते हैं। राम और कृष्ण के अवतार रूप में महानारायण की ही महिमा है। महानारायण और महाशिव एक ही रूप हैं, अन्तर केवल इतना है कि एक निराकार और दूसरा साकार है। एक निर्गुण निराकार है

और दूसरा सगुण निराकार है, ऐसा आप समझ लें

एक दिन शिव और शिवा का विहार हो रहा था। शिवा पार्वती स्नान कर रहीं थी, उनके गण बाहर खड़े थे। भगवान् शिव के आने पर गणों ने सिर झुका दिया और शिव अन्दर चले गये। उस समय माता स्नान कर रही थी, शरीर अर्ध नग्न था। शंकर को आया देख कर लज्जा आ गई, चाहे पति ही हो, यह तो नारी का स्वभाव है। संकोच होने पर माँ को बहुत बुरा लगा। उसने कहा–प्रभो! यह उचित नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी पति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करती है फिर भी उसकी आन्तरिक मर्यादा होती है। यह उचित नहीं है कि आप उसकी मर्यादा पर ध्यान न रखें। भगवान् शंकर मुस्कराये, उन्होंने कहा–भगवती! तुम्हें यदि कोई लीला करनी हो तो अवश्य करो किन्तु मेरे पर कोई आक्षेप न लगाओ। इतना कहकर भगवान् लौट आते हैं। महामाया चिन्तन करती है, उसने अपने शरीर को मला, मलकर उसके एक अंश से एक सुन्दर पुरुष तैयार किया। सुन्दर पुरुष का निर्माण करके कहा–वत्स! तुम मेरे पुत्र हो। उसने प्रणाम करके कहा, माँ! क्या आज्ञा है? भगवती ने कहा, तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना होगा। उन्होंने कहा–अवश्य करूँगा। भगवती ने अपनी दिव्य शक्ति से एक दण्ड देकर कहा कि तुम मेरे इस द्वार पर खड़े रहो, बिना मेरी आज्ञा के कोई द्वार प्रवेश न करने पाये। वह वीर बालक बाहर द्वार पर खड़ा हो गया। लीलाधारी शिव पुनः उसी समय आ पहुँचे, देखा, बालक दरवाज़े पर खड़ा है, जब अन्दर प्रवेश करने लगे तो उसने कहा–ठहरो, आप अन्दर नहीं जा सकते।

आप लोगों को मूल में ही बता दूँ कि यह कथा कैसे बन गई। शिवगणों को यह अभिमान था कि दुनिया में हमारे जैसा कोई पराक्रमी नहीं है। यदि भगवान् शिव हमें आज्ञा दें तो हम सारी सृष्टि को समाप्त कर सकते हैं, दूसरी ओर देवताओं को भी अभिमान था। भगवती महामाया करुणामयी जननी किसी के अंहकार को रहने नहीं देती। अहंकार शत्रु है, यह विनाश का कारण होता है इसलिए भगवती अपने किसी भी पुत्र में अंहकार देखना पसन्द नहीं करती। अंहकार का नाश करना प्रभु का पहला व्रत है। नारद जी को अहंकार हुआ, भगवान् ने कैसी लीला की! किस ढ़ंग से उनका अंहकार नष्ट किया। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में एक

स्थान पर लिखा है–

संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना।।

(रा॰ ७/७४–६)

जन्म–मरण का मूल नाना प्रकार की पीड़ाओं को देने वाला यह अभिमान है–

ताते करहिं कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी।।

(रा॰ ७/७४–७)

इसलिए कृपानिधान भगवान् अपने सेवक पर अत्यन्त ममता के कारण उसके इस रोग को दूर कर देते हैं। कहा–उसे कष्ट तो होता होगा? होता है। तुलसीदास जी ने बड़ा सुन्दर लिखा है–

जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं।।

(रा॰ ७/७४–८)

नवजात शिशु पैदा हुआ। एक मास का होने पर उसके शरीर में फोड़ा हो गया। वह माँ के कलेजे का टुकड़ा है। शरीर में फोड़ा होने पर माँ बच्चे को डाक्टर के पास लेकर जाती है। डाक्टर कहता है–देवी! इसका तो आप्रेशन करना पड़ेगा। आप ज़रा देखिये, नवजात शिशु को यदि कोई तीखी आँख से देख ले तो वह भी माँ को बर्दाश्त नहीं होता किन्तु जब डाक्टर कहता है कि इसका आप्रेशन करना होगा, नहीं तो बच्चे के जीवन को खतरा है, वही माँ अपने हृदय को वज्रवत् बना बच्चे के ऊपर चाकू चलाता हुआ देखती है–

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर।।

(रा॰ ७/७४ क)

डाक्टर के चीर देने पर बालक रोता है, चीखता है, व्याकुल हो जाता है। माँ जिस बच्चे की ज़रा सी भी करुण पुकार सुन नहीं सकती, अपने हृदय को वज्रवत् बना कर उसके रोने की चीख को सुनती है। क्यों सुनती है? तुलसीदास जी लिखते हैं कि केवल इसलिए कि वह जानती है कि उसके बेटे का इलाज हो रहा है। यदि यह फोड़ा रहा तो इसके सारे जीवन के लिए खतरा है। सारे

जीवन को बचाने के लिए घण्टे का रोना बर्दाश्त कर लेती है। तुलसीदास जी कहते हैं–

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।

(रा॰ ७/७४ ख)

इसी प्रकार से प्रभु निजजनों में, अपने भक्तों में जब देखते हैं कि अंहकार रूपी फोड़ा हो गया है तो बड़ी निर्दयता के साथ उसका आप्रेशन करते हैं। भक्त चीखता है, चिल्लाता है, रोता है पर वह इसकी ओर ध्यान नहीं देते क्योंकि प्रभु जानते हैं कि यह इसके हित के लिए है। भगवान् का एक नाम गर्वहारी है। नारद जी ने अपने भक्ति शास्त्र में लिखा है–

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च।

(ना॰ भ॰ सू॰ २७)

"ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष है और दैन्य से प्रेम है।" प्रभु तो दीनबन्धु हैं, अभिमान बन्धु, गर्व बन्धु, धनी बन्धु नहीं बल्कि गरीब निवाज़ हैं, इसलिए भगवान् किसी के अंहकार को देखते नहीं।

भगवान् शिव ने देखा कि हमारे गणों में अभिमान आ गया है। इस समय वे अपने आपको त्रिलोक विजयी समझते हैं इसलिए इनके अभिमान को दूर करना चाहिए। अभिमान को दूर करने के लिए कोई रास्ता चाहिये। रास्ता भी इसी प्रकार से बन जाता है। यही क्रिया आपको रामावतार और कृष्णावतार में भी मिलेगी। जब यादव अंहकार में इतने मदमस्त हो गये कि उन्हें होश नहीं था कि दुनिया में हमारी कोई बराबरी कर सकता है, भगवान् ने ऋषि दुर्वासा से श्राप दिला कर सबका विनाश कर दिया। यादव आपस में ही लड़कर मर गये। भगवान् जानते थे कि अब मैं इस पृथ्वी को छोड़ कर जाने वाला हूँ, यदि मैं इनको छोड़ गया तो ये दुष्ट किसी के वश के नहीं होंगे। हम पृथ्वी का भार उतारने के लिए आये थे, ये स्वयं भार बन गये।" ऐसा सोच कर प्रभु ने बैठे–२ ही अपने सामने यादव वंश का नाश करवा दिया और आप बिल्कुल निश्चिन्त बैठे रहे। अंहकार का नाश करने के लिए प्रभु इस प्रकार की लीला किया करते हैं। रुद्र ने देखा कि हमारे गणों में अंहकार है, उस अंहकार को दूर करने के लिए उमा भगवती स्वयं उसका विधान करती है। वह अपने अंग को मल कर संकल्प से एक बालक तैयार करती है। आप विचार कीजिये, जिसके संकल्प से अनन्त ब्रह्माण्ड

प्रकट होते हैं,उसके अंग से यदि बालक प्रकट होता है तो उसकी अद्भुत गाथा क्यों कहते हैं? वह बालक खड़ा हुआ है और शिव को अन्दर जाने के लिए मना कर रहा है, शिव अन्दर नहीं जा सकते। भगवान् शिव उस बालक को समझाते हैं किन्तु वह समझता नहीं। उसके बाद बालक को समझाने के लिए गणों को भेजते हैं, वह नहीं सुनता। वह बालक शक्ति का साकार विग्रह है। गणों का सारा अस्त्र–शस्त्र बेकार हो जाता है। देवता लोग भी सुनकर सहायता के लिए आते हैं पर उनका भी सारा अस्त्र–शस्त्र बेकार हो जाता है। जब सभी का अंहकार दूर हो जाता है तब शिव के चरणों में आकर गिर जाते हैं और प्रार्थना करते हैं–प्रभो! हमारी रक्षा करो, वह बालक हम सबसे अजेय है।

आप जानते हो, हमारे यहाँ वेदान्त में एक बहुत अच्छी बात समझाई गई है कि यदि आपके पांव में काँटा गड़ जाये तो चन्दन लगाने से, फूल चढाने से, आरती करने से कि हे काँटा देवता! बाहर आ जाओ तो वह बाहर नहीं आयेगा। यह कोई साधन नहीं। फिर काँटे को तुम कैसे निकालोगे? एक ही रास्ता है कि जितना लम्बा काँटा गड़ा हो उससे अधिक लम्बा काँटा लो। यदि कमज़ोर काँटा लोगे तो वहीं टूट जायेगा तथा उससे और अधिक तकलीफ होगी। उससे मजबूत और लम्बा काँटा लेकर उस काँटे को निकाल दो। जिस काँटे से तुमने काँटा निकाला है, क्या उसे जेब में रखोगे? नहीं, असावधानी से वह पुनः तुम्हें चुभ जायेगा। जिस काँटे से तुमने काँटा निकाला है वह काँटा पूजा के लिए नहीं है, वह भी फेंक देने के लिए है। इसी प्रकार हमारे यहाँ शास्त्रों में भी यह बात समझाई गई कि पहले तुम अधर्म के काँटे को धर्म के काँटे से निकालो। पश्चात् धर्म के काँटे को भी त्याग दो, नहीं तो वह भी तुम्हारे लिए अहितकर होगा। अधर्म से तो मनुष्य का उद्धार हो जाता है किन्तु धर्माभिमानी का कभी उद्धार नहीं हो सकता। धर्म का अभिमान बहुत खतरनाक है। रागी का उद्धार हो जाता है किन्तु त्यागाभिमानी का कभी उद्धार नहीं होता, कभी नहीं होता, इसमें क्या तर्क है? अधर्मी एवं रागी अपनी दृष्टि में ही अपने को हेय मानता है, दोषी मानता है किन्तु धर्माभिमानी को अपनी दृष्टि में दोष दिखाई नहीं देता। वह सोचता है दुनिया में मेरे समान कोई दूसरा है ही नहीं, मैं तो सबसे बड़ा धर्मावतार वा त्यागी हूँ। मेरी बात याद

रखो कि त्याग के राग की अपेक्षा राग के त्याग का अभिमान अधिक खतरनाक है; इसलिए धर्म शास्त्रों में बताया गया है कि पहले अधर्म का त्याग करो फिर धर्म का भी त्याग कर दो, पहले असत् का त्याग करो फिर सत्य का भी त्याग कर दो। यदि ऐसा नहीं करते तो तुम फंस जाओगे। धर्म शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि अधर्म लोहे की बेड़ी है और धर्म सोने की बेड़ी किन्तु हैं दोनों बन्धन के कारण। अधर्मी मृत्युलोक में दुःखी होता है और धर्मात्मा स्वर्गलोक में जाकर दुःखी होता है, बात बड़े तत्त्वविज्ञान की है। भारतीय दर्शन तो सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व पर विचार करता है। पुरुष सूक्त का अन्तिम मंत्र है–

यज्ञेन यजमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा।।

(पु॰ सू॰–१६)

मेरी दृष्टि से यह ऋग्वेद का सार है। इसका अर्थ जानते हो क्या होता है? देवताओं ने यज्ञ का भी यज्ञ कर दिया। यज्ञ का यज्ञ क्या है? जो कुछ अपने पास था उसको धर्म के लिए समर्पण करना, यह तो यज्ञ हुआ और जो धर्म के लिए समर्पण किया, उस धर्म वृत्ति का भी समर्पण कर देना, वह हो गया यज्ञ का भी यज्ञ। "कृष्णार्पणमस्तु", राग–त्याग, भोग–योग और धर्म–अधर्म, सभी कुछ प्रभु को समर्पित कर देना है। बिल्कुल निरहंकार होने पर ही हम शुद्ध होते हैं। जब हम शुद्ध हो जाते हैं तो हमारा स्वरूप भी मंगलमय हो जाता है। इसी रहस्य को समझाने के लिए भूतेश्वर ने पहले तो अपने गणों के और दूसरे देवताओं के अभिमान को चूर करने के लिए उस बालक को माध्यम बनाया। जब सबका अंहकार चूर हो गया तो भगवान् शिव ने देखा कि अब इस बालक में अंहकार जागेगा। अब उस बालक में अंहकार जाग्रत हो गया कि मैंने तो रुद्रगणों और देवताओं को परास्त कर दिया। इतनों का अंहकार दूर करने के लिए प्रभु ने उसको माध्यम बनाया और जब उसका अंहकार परिपुष्ट हुआ तो उन्होंने अपना त्रिशूल उठा लिया। उस त्रिशूल ने उसके अंहकार रूपी मस्तक को काट डाला। आप जानते हो कि जो अंहकार है, यदि यह प्राकृत है तो गणेश नहीं बन सकता, कभी देव नहीं बन सकता। जब तक यह संस्कृत न हो अर्थात् संस्कार किया हुआ न हो, परिमार्जित एवं शुद्ध किया हुआ न

हो तब तक यह देव नहीं बनता।

उपनिषद् का एक मन्त्र है शिष्य गुरु के चरणों में प्रणाम करके पूछता है–प्रभो! 'को देवा,' देव कौन है? गुरु कहता है– 'यो मनः साक्षी' जो मन का साक्षी है, वही देव है। वह कहता है–"मम मनो दृश्यते मया", मेरे द्वारा मेरा मन देखा जाता है, मैं मन का साक्षी हूँ। गुरु कहता है, "तर्हि त्वमेवासि", इसलिए तुम ही देव हो क्योंकि "एको देवा इति श्रुतिः" देव एक है, ऐसा वेद का संदेश है और जो मन का साक्षी है वही देव है। यदि तुम अपने मन के साक्षी नहीं, मन के स्वामी न होकर बल्कि मन के गुलाम वा मन के अधीन हो तो तुम देव नहीं, दानव वा दैत्य हो। इस रहस्य को सिद्ध करने के लिए भगवान् शंकर उस बालक का मस्तक काट देते हैं। मस्तक काटने के पश्चात् शिवपुराण में बड़ी सुन्दर, विचित्र वा रहस्यमयी कथा है, जिसको बाद में बताऊँगा। जब बालक का मस्तक कट जाता है, भगवती उमा जानती है कि शिव और शक्ति दोनों एक हैं किन्तु शिव ने अपने गणों की वा देवताओं की रक्षा के लिए यदि ऐसा कार्य किया है तो उसका बदला मिलना ही चाहिए। भगवती अपने अनन्त रूप प्रकट करके सारे विश्व के विनाश का आदेश देती है। भगवती और शिव के संवाद के विषय में आप लोगों को छोटी सी कथा और सुना दूँ।

शिव पुराण में विवाह के पूर्व का प्रसंग आता है। भगवान् शंकर हिमालय में जाकर ध्यानस्थ होने के लिए एक सुन्दर स्थान पर विराजित हो जाते हैं। हिमाचल को पता चलता है कि रुद्र मेरे राज्य में तपस्या करना चाहते हैं तो वह आकर उनका स्वागत करते हैं। पार्वती जी कहती हैं कि हे पितृदेव! आप मुझे आदेश दें, मैं महादेव की सेवा करूँ। पिता कहता है–पुत्री! महादेव अघोरी, विरक्त, योगी हैं, इनको किसी की आवश्यकता नहीं। यदि तुम्हारी सेवा स्वीकार कर लें तो तू सहर्ष सेवा कर सकती है, मेरी ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं। इस समय शिव हमारे अतिथि हैं, यदि वे सेवा स्वीकार करलें तो बहुत अच्छी बात है। भगवती शिव के पास जाती है तो शिव पूछते हैं–तुम कौन हो? किस प्रयोजन से यहाँ आई हो? शिवा कहती है–सृष्टि में प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शक्तिमान के अतिरिक्त और कौन है? शिव कहते हैं, मैं प्रकृति को नहीं मानता क्योंकि मैं पुरुष हूँ? शिवा कहती है कि बिना प्रकृति के पुरुष हो

नहीं सकता, असंभव है। यदि कोई कहता है कि मैं पुरुष हूँ, प्रकृति को नहीं मानता तो वह मिथ्यावादी है। शंकर शिवा से तर्क करते हुए कहते हैं कि यह तुम कैसे कह सकती हो? पुरुष निर्लेप है, अद्वैत है, अविनाशी है और अखण्ड है, उसको किसी की आवश्यकता नहीं है। पुरुष का अर्थ है–पुर का ईश। शिवा पूछती है–जब आप पुर शब्द कहते हैं तो उसका क्या अर्थ होता है? आप उस पर ध्यान देते हो किन्तु समझते नहीं। जब पुर ही नहीं होगा तो ईश कौन होगा? पुर कौन है? किसका ईश होगा? प्रकृति का। बिना प्रकृति के कोई पुरुष हो ही नहीं सकता। यदि पुर नहीं है तो ईश नहीं हो सकता। जो कुछ आप बोल रहे हैं, वह कौन बोल रहा है? वाणी। यह वाणी प्रकृति है। आप जो तप करना चाहते हैं, वह प्रकृति है। किसका संयम करना चाहते हैं? प्रकृति का। क्या बिना प्रकृति के आपका अस्तित्त्व ठहर सकता है? कदापि नहीं। शिवा कहती है कि आपको शिव कहा जाता है, इसमें से यदि इकार निकाल दिया जाये तो आप क्या बचेंगे? जब हम शिव लिखते हैं तो उसमें इकार बीज शक्ति का है। यदि शिव में से इकार निकाल लिया जाये तो वहाँ पर क्या बचेगा? शव। शव का अर्थ है Dead body, Nothing भगवती कहती है कि आप जिसके नाते शिव हैं अर्थात् जिस इकार के नाते आप शिव हैं, उसको अस्वीकार कर रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। भगवान् शंकर का सर नीचे हो जाता है, वे हँस कर कहते हैं, अच्छा देवी, तुम क्या चाहती हो? वह बोली, हम कुछ नहीं चाहती हैं। प्रकृति सदा परार्थ हुआ करती है, उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। योगदर्शन भी यही कहता है–

भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(यो॰ सू॰ २/१८)

प्रकृति सदैव परार्थ है, अपने लिए नहीं दूसरे के लिए है। भगवती कहती है इसलिए मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। मैं तो सेवा करना जानती हूँ, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जनती। खैर, बाद में वह भगवान् की सेवा में रहती है। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि जो शिवा साक्षात् शिव की शक्ति है, जिस शक्ति के नाते ही शिव शिव हैं, जिस शक्ति के अभाव में शिव का शिवत्व समाप्त हो जाता है, वह शक्ति देवी है, देवता है।

हमारे यहाँ उस दैवी शक्ति के प्रकट होने के माध्यम को

देवता कहते हैं, इसलिए सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वायु देवता, वसवो देवता, ये सब देवता हैं। पृथ्वी भी देवता है। एक बार एक व्यक्ति कहने लगा, सुना है चन्द्रलोक तक आदमी गया। चन्द्रमा को तो आप देवता मानते हो फिर मनुष्य वहाँ कैसे पहुँच गया? मैंने कहा–हम तो पृथ्वी को भी देवता मानते हैं जिस पर आप खड़े हो। वेद में जहाँ चन्द्रमा को देवता बताया गया वहाँ पृथ्वी को भी देवता कहा गया है। हम तो उस वायु को भी देवता मानते हैं 'वातो देवता', जिसके बिना तुम जी नहीं सकते, जिससे श्वास ले रहे हो। 'आपो देवता', जल भी देवता है जिसको तुम रातों–दिन पीते हो। इतने देवताओं के साथ तुम खेल रहे हो, तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ। उसमें से यदि एक देवता के साथ कोई आदमी उड़ कर चला गया तो तुम्हें आश्चर्य क्यों हो रहा है? इसमें ईश्वरीय विधान कहाँ बिगड़ गया? देवता क्या होता है? जो तुम्हारे जीवन को सुरक्षित रखने में तुम्हें सब कुछ दे रहा है, वह 'देवता' है। वह तुमसे कुछ लेता नहीं देता ही है। देने के नाते 'देवता' है, इसका निरुक्त में वर्णन है। सभी देवता तुमको कुछ न कुछ दे रहे हैं। अपनी रश्मियाँ दे रहे हैं, अपनी किरणें दे रहे हैं, अपना तेज दे रहे हैं, अपनी शक्ति दे रहे हैं इसलिए इनको देवता कहते हैं।

आप लोगों को एक बात और समझाऊँ, शायद आप लोगों को मालूम न हो। देवता शब्द स्त्रीलिंग है पुलिंग नहीं। देवता ईश्वर नहीं वह शक्ति है, देवी है। 'या देवी सा देवता'–देवी और देवता पर्यायवाची शब्द हैं। आपको जीवनी शक्ति देने के नाते देवता कहा जाता है। भगवान् शंकर देव हैं शेष सब देवता हैं।

अब आगे की कथा सुनिये, देवताओं और गणों में यह अहंकार हो सकता है कि हमारी रक्षा के लिए, हमारी प्रार्थना से भगवान् ने उस दुष्ट का सिर धड़ से उतार दिया। अभी अवसर है वहाँ पुनः अंहकार का क्योंकि जब आपका कोई प्रबल रक्षक आपके पीछे हो जाये उस समय भी आप में अहंकार आ सकता है। यह बड़ा सूक्ष्म विषय है। अंहकार से मुक्ति पाना बड़ा कठिन है। भगवती उस अंहकार से मुक्त करने के लिए प्रचण्ड रूप धारण कर प्रलय का आदेश देती हैं। प्रलय का ताण्डव होने लगता है, उसकी योगनियों द्वारा अग्नि वृष्टि होने लगती है, सारा विश्व काँपने लगता है। देवता लोग भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं, "प्रभो! आप ही

इस समय भगवती को शान्त कर सकते हो, दूसरा कोई उपाय नहीं। भगवान् मौन रहे। देवता और ऋषिगण भगवती की स्तुति करते हैं, "करुणामयी माँ! तुम्हारी लीला को कोई नहीं जान सकता। माँ, तुम्हीं अपनी सन्तानों की रक्षा कर सकती हो।" यह तो आप जानते ही हो कि माँ की मार में भी प्यार होता है। यही कारण होता है कि माँ जब अपने बच्चे को थप्पड़ मारती है तो भी बच्चा दौड़कर माँ का आँचल पकड़ता है। वह कहाँ जायेगा? बाप मारे तो भी रोता हुआ माँ के पास जरूर जायेगा। वह करुणामयी जननी अपने पुत्रों पर कृपा करके द्रवित होती है और उसका एक ही प्रश्न होता है कि यदि मेरा पुत्र जीवित कर दिया जाये तो मैं इस प्रलय को बन्द करती हूँ। देवता लोग भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं कि आपके लिए यह बहुत छोटा सा काम है। भगवान् शंकर देवताओं से कहते हैं–उत्तर दिशा में जाओ, जो पहले मिल जाए उसका मस्तक ले आओ। देवताओं ने रास्ते में सबसे पहले गज को देखा। जिसे आप हाथी कहते हैं, उसे संस्कृत में 'गज' कहते हैं। वह हाथी का मस्तक लाकर उस कुमार के धड़ पर रखते हैं तो कुमार जीवित हो जाता है। शैव तेज के द्वारा जीवित होने पर भगवती उस को वरदान देती है। शिव उसे गणाध्यक्ष बनाते हैं। भगवती को प्रसन्न करने के लिए शिव सहित देवता लोग स्वीकार करते हैं कि किसी भी पुण्य कार्य में सर्वप्रथम आपके इस पुत्र गजानन की पूजा होगी। गणेश प्रथम पूज्य होते हैं। गणेश शक्ति की अभिव्यक्ति पार्वती के पुत्र हैं इसलिए उन्हें ज्ञान स्वरूप कहा जाता है। सरल शब्दों में आपने गणेश की उत्पत्ति की यह कथा सुनी।

अब अध्यात्म विज्ञान में आप गणेश का अर्थ सुनिये। जैसा की मैंने आपको बताया कि प्राकृतिक अंहकार ही दुःखद है, वह त्रिशूल का ही भाजन बनता है। तीन प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक शूल हैं। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।

(रा॰ ७/२१–१)

उन्होंने कहा, दैहिक–शरीरजन्य ताप, दैविक–देवजन्य ताप और भौतिक–संसारजन्य ताप, ये रामराज्य में किसी को नहीं होते। रामराज्य की जगह यदि कोई और राज्य हो अर्थात् रामराज्य न हो

तो उससे कोई बच नहीं सकता। रामराज्य का अभिप्राय है आत्मराज्य। आत्मा ही राम है, जब तक आत्म प्रकाश आपके जीवन में नहीं होता तब तक आप त्रिताप से बच नहीं सकते। मैं आपको बता रहा था कि प्राकृत अहं अर्थात् प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ अहं बड़ा प्रबल है किन्तु वह अशुद्ध है। वह त्रिशूल का भाजन बनता है, महादेव के कोप का पात्र बनता है। वह समस्त देवताओं को जीत सकता है, समस्त गणों का अधिपति हो सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु वह शिव का कृपा पात्र नहीं हो सकता। कब तक? जब तक उसका शुद्धिकरण न हो। उसका शुद्धिकरण कब होगा? जब उसके अंहकार का नाश होगा। अंहकार का नाश करने वाला शिव है दूसरा कोई नहीं इसलिए भगवान् शिव उस बालक का सिर काटते हैं।

अंहकार को सिर कहा गया है। जब किसी में अंहकार आता है तो वह सिर ही ऊपर करता है, यह अंहकार का लक्षण है। उसका सिर नीचे होता ही नहीं। हमारे यहाँ जो सिर झुकाने का विधान है, वह अंहकार का नाश करने के लिए है। प्रातःकाल उठते ही अपने बड़ों के सामने, गुरुजनों के सामने, विद्वानों के सामने सिर झुकाओ। अंहकार को दूर कर विनम्र बनो। अंहकार पुष्ट होता है तो सिर ऊपर उठ जाता है। उस अंहकार का नाश करने के लिए भगवान् शिव उसका सिर काटते हैं किन्तु देवताओं को आदेश देते हैं कि उत्तर दिशा की ओर जाओ। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण नहीं कहा, उत्तर क्यों? उत्तर के दो अर्थ होते हैं। आप लोग जानते हो जब आप किसी को प्रश्न करते हो तो उसके बदले में वह क्या देता है? उत्तर। उत्तर क्या है? ज्ञान। आपकी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए जो दिया जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं। भगवान् शंकर कहते हैं उत्तर दिशा में जाओ और जो प्रथम मिले, उसका सर ले आओ। प्रथम दुनिया में है कौन? गज। गज शब्द संस्कृत का है, इसका उलटा कर दो तो बनेगा जग। ज़ग का अर्थ है–संसार, दुनिया, यह सारा विश्व। इस जग को यदि उलटा करो तो बन जायेगा 'गज'। संसार की एक धारा चल रही है। यदि उस 'धारा' को उलट दो तो बन जायेगा 'राधा'। राधा परमात्मा की शक्ति बन जाती है। धारा जब तक है वह आपको ले जाकर समुद्र में ढकेलने वाली शक्ति बनेगी। यदि प्रकृति के साथ बहोगे तो डूब जाओगे। प्रकृति को यदि पार

करना चाहते हो तो उसके विरोध में चलना होगा। अतः जो जग का विपरीत है उसे गज कहते हैं। जग–आनन नहीं, जग–मुख नहीं, गज–आनन, गजमुख चाहिए। संसार की तरफ वाला मुख नहीं, संसार से विपरीत वाला मुख। संसार के कारण की ओर जब तुम्हारा मुख होगा तब तुम बनोगे 'गणेश'।

गणेश का अर्थ है–समस्त गणों का ईश। तब तुम देव बनोगे, मनुष्य नहीं रहोगे। तुम्हारा शोधन हो जायेगा, तुम पवित्र हो जाओगे और तुम जगानन नहीं गजानन होंगे। जग का आनन सीमित है किन्तु जो जग के विपरीत वाला आनन है, वह बड़ा विशाल है। उसका एक नाम लम्बोदर भी है। लम्बोदर का अर्थ लम्बी उदर वाला, इतना बड़ा उदर जिसमें सारा विश्व समा जाये। विश्व को स्पर्श करने वाली शक्ति, विश्व को आत्मसात करने वाली शक्ति, यह सारा का सारा जो कुछ शक्ति तत्त्व है, वह सब कुछ तुम्हारे में समाहित हो जायेगा किन्तु अंहकार का नाश करके ज्ञानरूपी उत्तर के द्वारा। जो तुम्हें गजमुख मिलेगा, वह शिव के द्वारा ही प्रतिष्ठित हो सकता है, दुनिया की और कोई शक्ति उसे प्रतिष्ठित नहीं कर सकती इसलिए भगवान् शिव उस गजमुख को उस कुमार के धड़ पर प्रतिष्ठित करते हैं। आकृति सारी मनुष्य की है किन्तु इसके ऊपर वहाँ जगत् नहीं है, वह प्राकृत नहीं दिव्य है। वह जग के बिल्कुल विपरीत 'गज' है। अब उस गज का सही अर्थ न समझने के नाते या उस गज के भाव को समझाने के लिए हाथी का सिर मनुष्य के शरीर के ऊपर रख करके आपको बताया कि यह गजानन है। पुराण आपको उस परम तत्त्व का बोध करा रहा है कि गजानन कौन है? गज क्या है? उसका आनन क्या है? मेरे विचार से अब आप समझ गये होंगे। जब आप जग आनन की निवृत्ति से मुक्त होकर गज–आनन बन जाते हैं, तब आप गणेश होते हैं, देव होते हैं और तब आप शिव को प्रिय होते हैं। दुनिया के सारे देवता, दुनिया के सारे पदार्थ आपके चरणों में प्रणाम करते हैं। भारत में एक बहुत बड़े महापुरुष स्वामीराम तीर्थ हुए हैं। उन्होंने एक शेर कहा है–

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
जब से हम ने तज दिया बेकरार आने को है।।

जब हम दुनिया की ख्वाहिश करते थे तो दुनिया आगे–२

भागती थी, पीछे–२ हम दौड़ते थे। जब से हमने इस का त्याग किया है, तब से दुनिया मेरे पास आने के लिए लालयित है। तुलसीदास जी ने अपने दोहावली में लिखा है कि जगत् का स्वरूप तुम्हारी परछाई के समान है। यदि तुम सूर्य की तरफ पीठ करके चलोगे तो परछाई तुम्हारे आगे चलेगी उसे तुम पकड़ नहीं पाओगे। प्रकाश की तरफ पीठ करके क्या अपनी तुम परछाई को पकड़ सकते हो नहीं, असंभव हैं ? दुनिया तुम्हारी परछाई हैं, परमात्मा प्रकाश है, परमात्मा की तरफ यदि तुम्हारी पीठ हो गई, दोस्त! तो तुम दुनिया को पकड़ नहीं सकते। यदि तुम्हारा प्रकाश की तरफ मुँह हो जाये तो देखना दुनिया तुम्हारे पीछे–२ चलेगी, वह तुम्हारा पीछा छोड़ नहीं सकती। एक शेर में स्वामीराम तीर्थ ने कहा है

अपने मजे की खातिर गुल तर्क कर दिये जब।
रूहे जमी के गुलशन मेरे ही बन गये सब।।

"अपने स्वाद के लिए जब हम फूलों की चाह करते थे तब तक हमें एक फूल भी नसीब नहीं था किन्तु जब से हमने स्वाद के लिए फूलों का त्याग कर दिया है, तब से दुनिया की समस्त फुलवाड़ियाँ हमारी अपनी हो गई हैं।" फूल की सुगन्ध लेने के लिए कोई मना नहीं करता। मनुष्य मरता कब है? जब फूल तोड़ना चाहता है। कबीर की बात इससे भी अच्छी है, वही आपको बताता हूँ। कबीर कहते हैं कि भाई! तुम किसी इत्र बेचने वाले की दुकान पर जाकर बैठ जाओ, इत्र न खरीदो। फिर क्या होगा? वह तुम्हें दे भी कुछ नहीं परन्तु इत्र की दुकान पर बैठने मात्र से वह तुम्हें उस सुगन्ध से वंचित तो नहीं कर सकता–

कबीरा संगत साधु की ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं तो भी बास सुबास।।

यदि इत्र वाला तुम्हें कुछ न दे तब भी इत्र की सुगन्ध तुम्हारे नाक से बन्द नहीं कर सकता। किसी पुष्प वाटिका में जाओ, उसकी सुगन्ध को तो वाटिका का मालिक रोक नहीं सकता इसलिए बताया गया है कि जब तुम अपने लिए दुनिया से कुछ नहीं चाहते तो सारी दुनिया की सम्पत्ति तुम्हारी हो जाती है। जब तुम गणेश बन जाओगे तो रिद्धि–सिद्धि, ये दोनों तुम्हारे चरणों में लोटेंगे, दुनिया का वैभव तुम्हारा दास होगा। यह गणेश की कथा का रहस्य है। यदि आप लोग मनन करें, चिन्तन करें तो आप देख सकते हैं

कि पुराणकार वेदव्यास ने कितने महान् तत्त्व को कितने छोटे शब्द में समझाया है। वेद में उसी तत्त्व का संकेत करने के लिए–

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं
हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

यह यजुर्वेद का मन्त्र है, इसमें सर्वप्रथम 'गणानांत्वा गणपतिं हवामहे'। वह गणपति कौन है? आत्मा! आत्मा से बड़ा गणपति न दुनिया में हुआ है, न होता है और न होगा ही। याद रखें, आपकी आत्मा ही गणपति है। गण कौन हैं? सारी इन्द्रियाँ। हमारे यहाँ जितने भी धर्म ग्रन्थ हैं, उनके तीन प्रकार के अर्थ किये जाते हैं– आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। तीनों एक साथ जब आपको समझ में आ जायेंगे तभी आप शास्त्र का सही अर्थ समझ पायेंगे अन्यथा नहीं। इसलिए हमारे यहाँ धर्मशास्त्रों के लेखकों ने लिखा है कि धर्मशास्त्र का वक्ता वही होना चाहिए जो श्रौत्रिय और आत्मनिष्ठ हो। श्रोत्रिय का अर्थ है शास्त्रों का ज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ जो अपना भी बोध रखता हो, जिसने तत्त्व का बोध किया हो, साक्षात्कार किया हो, वही तुम्हें तत्त्व का बोध करा सकता है। पंडितों से इन सारी बातों का बोध नहीं होता। शास्त्रकार कहता है अध्यात्म में वही आत्म तत्त्व है, अधिभूत में वही गजानन है और अधिदेव में वही देव हैं।

आपने सुना होगा कि हिन्दू ३३ कोटि देवता मानते हैं। कभी समझा कि ३३ कोटि देवता किसे कहते हैं? हमारे यहाँ वेद में प्रश्न है। देवता कितने हैं? प्रश्न लम्बा है लेकिन आखिर में ऋषि कहता है तैंतीस कोटि। कोटि शब्द का अर्थ है प्रकार। संस्कृत में कोटि शब्द के दो अर्थ होते हैं–एक कोटि का अर्थ करोड़ है और दूसरा प्रकार है। यहाँ कोटि करोड़ के अर्थ में नहीं है प्रकार के अर्थ में है। जैसे हम लोग कह देते हैं कि यह वस्तु किस कोटि की है, किस कोटि का ज्ञान है अर्थात् उसका किस प्रकार का ज्ञान है। कोटि का अर्थ प्रकार होता है। वेद में जहाँ ३३ कोटि देवता हैं, वे ३३ प्रकार के देवता हैं। वही अधिदेव, अध्यात्म और अधिभूत में ३३ प्रकार के देवता होते हैं। देवता ३३ प्रकार के कौन हैं? अधिदेव में ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु, इन्द्र और प्रजापति, ये ३३ कोटि देवता हैं। ये तो हुए एक ब्रह्माण्ड के देवता। अब आप पिण्ड में

आइए। ग्यारह रुद्र (मन सहित १० इन्द्रियाँ हैं)। इनको रुद्र क्यों कहते हैं क्योंकि रोने में यही कारण हैं। रुद्र का अर्थ क्या होता है? शास्त्र कहता है जो हमें रुलावे, वही रुद्र है। हमारे आपके रोने का कारण क्या है? इन्द्रियों सहित यह मन। यदि इन्द्रियाँ और यह मन न हो तो रोने का कोई कारण ही नहीं। मन सहित दस इन्द्रियाँ ही ११ रुद्र हैं। १२ ग्रहों में, १२ महीने में हमारे जीवन की जो गति चल रही है, ये १२ आदित्य हैं। हमारे शरीर में जो आठ प्रकार के प्रकृति के क़ार्य हैं, यही आठ वसु हैं। वसु का अर्थ होता है वसने का स्थान। हमारा जो प्राण अन्दर–बाहर आ जा रहा है, इससे शरीर में उष्णता पैदा होती है, उसको इन्द्र कहते हैं। आने जाने वाले प्राण पर ही सारा शरीर टिका हुआ है इसलिए इसको प्रजापति कहते हैं। प्राण प्रजापति है, शरीर की उष्णता इन्द्र है, मन सहित दस इन्द्रियाँ ११ रुद्र हैं, १२ महीने १२ आदित्य हैं। शरीरगत अष्टधा प्रकृति आठ वसु हैं। ये ३३ कोटि देवता हमारे शरीर में हैं, इनके बिना हम नहीं रह सकते हैं। शास्त्र में इनकी पूजा का विधान है। इसमें किस देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए, आप बता सकते हो? सब की करनी चाहिए। यदि एक देवता की पूजा छोड़ दें, तब भी हम अधूरे रह जायेंगे। भगवान् ने आँखें दो दी हैं, एक दी होती तब भी काम चल जाता। एक आँख से यदि आप एक मील देखते हो तो दो आँख से कितने मील देख सकते हो? एक मील। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि भगवान् एक आँख देते तब भी काम चल सकता था, दो क्यों दी? काम तो चलेगा परन्तु लोग काना कहेंगे। वह अशुभ माना जाता है, क्यों कारण क्या है? समझिये। यह धर्म शास्त्र का आध्यत्मिक स्वरूप है।

आपके इस जगत् में यदि एक ज्योति हो तो आप जीवित नहीं रह सकते। श्रीमद्भागवत् मे बताया है कि विराट् पुरुष के दो नेत्र हैं–चन्द्रमा और सूर्य–'शशि सूर्य नेत्रं।' एक में रस है दूसरे में तेज। हमारे नाक के दो छिद्र हैं। यदि एक ही होता तब भी श्वास आता जाता किन्तु योग मार्ग में जिसने प्रवेश किया होगा, वह जानता है कि हम जब उष्णता से व्याकुल होते हैं तो दाहिने नाक को बन्द करके बायीं नासिका से श्वास लेते हैं, छोड़ते हैं, उसे चन्द्रभेदी प्राणायाम कहते हैं। शरीर सारा ठण्डा और शीतल हो जाता है। जब शरीर को शीत लगती है तो बाईं नासिका को बन्द

करके दाहिनी नासिका से श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं, उसे सूर्यभेदी प्राणायाम कहते हैं। सारा शरीर उष्णता से भर जाता है, पसीने से तर हो जाता है। हमारे नाक के श्वास में भी भेद है एक शीतल है दूसरा उष्ण इसलिए एक को इड़ा नाड़ी और दूसरे को पिंगला कहते हैं। एक को सूर्य नाड़ी और दूसरे को चन्द्र नाड़ी कहते हैं, सुना होगा आपने। ये योग की क्रियायें हैं। जैसे नाक के दो छिद्र हैं, कान के दो छिद्र हैं, आँख के दो छिद्र हैं, ये तीनों का अलग–२ महत्व है, तीनों अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसलिए हमारे यहाँ ३३ प्रकार के देवताओं में सभी के प्रति आदर की दृष्टि है और सभी को पूज्य बताया गया है। जो कहते हैं कि हिन्दू ३३ कोटि देवता की पूजा करता है, यह बिल्कुल सत्य है। हम तो प्रतिदिन ३३ कोटि देवता की पूजा करते हैं। अध्यात्म रूप से वे हमारे साथ हैं। यदि उनमें से एक भी कम हो जायेगा तो हम अधूरे हो जायेंगे, हम पूर्ण नहीं हो सकते। जैसे एक आँख होगी तो हम अधूरे रह जायेंगे, किसी भी शुभ कार्य में आगे नहीं जायेंगे क्योंकि हम अपंग वा अंगहीन कहे जायेंगे। ये सारे देवता गण हैं, इन्हीं को ३३ गण कहते हैं। इन ३३ गणों का जो अधीश्वर है, उसको गणेश कहते हैं। ३३ कोटि देवता जो मैंने आपको बताये, ये किसके आधार पर हैं? ११ इन्द्रियाँ, ८ वसु, १२ महीने की गति, श्वास का आना जाना, प्राण और शरीर की उष्णता, ये ३३ कोटि देवता किसके नाते हैं? आत्मा के नाते। आत्मा यदि निकल जाये तो किसी का भी अस्तित्व नहीं रहेगा इसलिए ये सब गण हैं और आत्मा गणेश है इसलिए गणानाम् जो है वह गण समूह है। इनका जो पति है, उस आत्म तत्त्व का मैं चिन्तन करता हूँ। यह उस मंत्र का अर्थ होता है। सारी इन्द्रियों के जो विषय हैं, वही प्रिय हैं। इन समस्त प्रियजनों का पति कौन है? उपनिषद् कहती है–

आत्मनस्तु कामायं सर्वं प्रियं भवति।

(वृहदा॰ २/४–५)

आत्मा के नाते ही सारी दुनिया की प्रियता है। हम जिस पुत्र को, जिस पति को, जिस पत्नी को, जिस स्नेही को बहुत प्यार करते हैं, उसमें से यदि आत्मा निकल जाये, क्या उसके शरीर को प्यार करेंगे? थोड़ी देर मोह के नाते भले रो लें, अन्त में यही कहेंगे कि इसको जल्दी ले जाओ, उसकी गति करवाओ। क्यों, कारण

क्या है? अब वहाँ गण तो हैं लेकिन पति नहीं। प्रिय तो है किन्तु प्रिय का जो पति है, जिसके नाते सब प्रिय हैं, वो नहीं। ये निधियाँ वा जितने सुख के साधन हैं, सारे आपके पास मौजूद हों लेकिन सुख भोगने वाला ही न हो तो इन सबकी कोई कीमत है? इसलिए वैदिक ऋषि कह रहा है कि इन समस्त निधियों का जो भोक्ता है, पति है, उसका आवाहन करते हैं। हर प्रकार से हम आत्मा का आवाहन करते हैं। आत्मा के आवाहन का यह मन्त्र है–

ॐ गणानाम् त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा
प्रियपति ँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे
वसो मम। आहम जानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

(यजुर्वेद २३/१६)

यह जो हम प्रार्थना करके उसे पुकार कर अपने में प्रतिष्ठित करते हैं, यही आत्मा की पूजा है। आत्मा ही गणपति है, आत्मा ही गणेश है। जो आत्मा हमारे इस शरीर में गणेश है, वही इस विराट् पुरुष की आत्मा, अधिदैवमय गणेश है। अधिदैव में जो कारण रूप से तैतीस प्रकार के देवता हैं, उन्हीं की अभिव्यक्ति अधिभूत रूप में यह सृष्ट जगत् है। विशेष रूप से आदित्य, रुद्र, वसु, प्रजापति और इन्द्र के द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन हो रहा है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र पुरुष के अंग के रूप में भी इन तैंतीस देवताओं की प्रतिष्ठा की गई है और वैदिक विधानानुसार हमारा शासन तन्त्र इन्हीं देवताओं के द्वारा चलाया जाता है जिसमें राजा प्रजापति है, इन्द्र सेनापति है, १२ आदित्य मन्त्रीगण हैं, अष्ट वसु विशिष्ट व्यवस्था के अधिकारीगण हैं, ११ रुद्र राष्ट्र पुरुष के रक्षक और संचालक होते हैं। वैदिक साहित्य में इसी प्रकार की उद्भावना की गई है। जो अधिदैव का गणेश है वही अध्यात्म का गणेश है और वही अधिभूत के रूप में गणेश बनाकर सामने रखकर पूजा करते हैं, ध्यान करते हैं इसलिए वह प्रथम पूज्य है। गणेश क्या है? शिव और शक्ति की अभिव्यक्ति क्योंकि गणेश का शरीर तो शक्ति के द्वारा प्रकट किया गया था उसमें जो तेज प्रदान किया गया वह शिव ने किया। शिव और शक्ति के योग से ही गणेश का आविर्भाव हुआ है। कहने का अभिप्राय शक्ति और शक्तिमान मिलकर हमारी आत्मा के रूप में शरीर में आये इसलिए गणेश शक्ति और शिव का पुत्र कहा जाता है। वही ज्ञाननिधि है, देवाधिपति है और प्रथम पूज्य है। गणेश जी से पूर्व अन्य किसी की

पूजा हो नहीं सकती। यदि उससे पूर्व तुम और किसी की पूजा करने लगे तो वहीं मर जाओगे। यदि आत्मा को अलग करके किसी दूसरे देवता की पूजा शुरू की दी तो क्या होगा? जो गणेश को भूल कर इन्द्रियों के पीछे लगे हुये हुए हैं, वे गणेश की पूजा नहीं कर रहे, गणों की पूजा में लगे हुए हैं इसलिए तो दुर्गति हो रही है। सनातन धर्म कहता है कि जब तक तुम गणेश को नहीं जानोंगे, गणेश की उपासना नहीं करोगे तब तक तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। सनातन धर्म का यह बहुत बड़ा सिद्धान्त है।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१६/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

आज हमारे इस ज्ञानयज्ञ का छठा दिन है। कल आप लोगों को गणेश तत्त्व समझाया गया। गणेश क्या है, उसकी प्रथम पूजा क्यों की जाती है, इस विषय में आप लोगों को काफी बातें समझाई गई। मूल रूप से आप लोग इतना ध्यान में रखें कि गणेश शक्ति तत्त्व है क्योंकि वह शक्ति के अंश से प्रकट हुआ है और शिव के द्वारा उसे तेज की उपलब्धि हुई है। वह जगत् से ऊपर होने के नाते प्रथम पूज्य और गणों का अधिपति कहा जाता है। अध्यात्म भावना में हमारी आत्मा गणेश है, वह शिव और शक्ति दोनों की संयुक्त अभिव्यक्ति है। चित्त शक्ति का अंश है और चित्त को प्रकाशित करने वाला चेतन शिव का अंश है। चित्त और चेतन दोनों मिलकर हमारी आत्मा के रूप में प्रकट हुए हैं। शक्ति के बिना शिव का प्राकट्य नहीं हो सकता और शिव के बिना शक्ति निर्जीव है। दुनिया में कोई ऐसा साधन नहीं है कि ईंधन के अभाव में अग्नि को प्रकट किया जाये और माध्यम के अभाव में विद्युत शक्ति को प्रकट किया जाये। माध्यम के द्वारा ही तत्त्व का प्राकट्य होता है। ईंधन के अभाव में अग्नि प्रकट नहीं हो सकती। अग्नि है इसमें कोई संदेह नहीं है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति के लिए, प्रकट होने के लिये ईंधन आवश्यक है। ईंधन ही अग्नि है ऐसा नहीं कहा जा सकता। शिव और शक्ति के संयोग का यही रहस्य है। आत्मा जिसे चेतन कहते हैं, वह तब तक प्रकट नहीं हो सकता जब तक उसे प्रकृति का माध्यम न मिले, इसीलिए हमारा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और चित्त, ये पाँचों प्रकृति के परिणाम हैं जिनके माध्यम से वह पुरुष चेतन शिव प्रकट होता है। शिव और शक्ति के संयोग से यह सारा जगत् प्रकट हुआ है, यह बात ध्यान में रखें। उसी संयुक्त तत्त्व का नाम गणेश है। यदि अपने आदि कारण, अपने स्वरूप का बोध हो जाये तो आप भी अपनी आत्मा को गणेश के स्वरूप में अनुभव

करके उसे गणाध्यक्ष यानी इन्द्रियों का स्वामी बना सकते हैं। गण माने इन्द्रियाँ। आपकी आत्मा इन्द्रियों की स्वामी है। आत्मा के अभाव में न इन्द्रियों का कोई मूल्य है और न आपके प्राण का कोई अस्तित्व रह सकता है।

आज के प्रसंग में वृहद् रूप में काफी बातें आई हैं, समस्त बातें बता नहीं पाऊँगा। आज हम शिव सहस्र नाम का पाठ किये हैं। एक–एक नाम की व्याख्या ही घण्टों में हो सकेगी, हज़ार नाम की व्याख्या करने में हज़ार घण्टे चाहिए, फिर भी कुछ बातें आपको समझाऊँगा। भगवान् विष्णु स्वयं शिव की अर्चना वा उपासना करते हैं और सहस्र नाम भगवान् विष्णु के द्वारा गाया गया भगवान् शिव का सहस्र नाम है। उसी प्रसंग में आगे महाशिवरात्री के व्रत का विधान और उसकी महिमा का वर्णन है। महाशिवरात्री का व्रत अमृत संजीवनी के समान बताया गया है। एक अबोध अज्ञानी भील ने अनजान में ही महाशिवरात्री का व्रत कर लिया था, किया नहीं था, हो गया था। व्रत के परिणाम में वह भगवान् का कृपापात्र बना और दूसरे जन्म में शिव भक्ति के प्रभाव से ही वह एक महान् धर्मात्मा राजा के रूप में प्रकट हुआ जिसकी कथा शिवपुराण, महाभारत और हमारे अन्य ग्रन्थों में भी है। आप लोगों ने महाराजा नल का नाम सुना होगा। भारत के इतिहास में नल और दमयन्ती की कथा बहुत ही महत्वपूर्ण कथा है। महाशिवरात्री के व्रत के प्रभाव से एक भील का नल के रूप में अवतरण, ऐसा उस कथा से संकेत मिलता है। भगवान् की उपासना में जाति–पाति का कोई भेद नहीं है। अपने ग्रन्थ पढ़ने से हमें यह पता चलता है कि इसमें अज्ञानी और विद्वान् का प्रश्न नहीं है, श्रद्धा ही प्रभु को प्रिय है। आपको वेदमन्त्र और पुराण के श्लोक नहीं आते, उसकी चिन्ता मत करो किन्तु शिव शब्द तो कह सकते हो। इसमें कोई बन्धन नहीं और न ज्ञान की आवश्यकता ही है। शिव शब्द के द्वारा ही अपने हृदय को प्रभु के चरणों में समर्पित करो, प्रभु इतने को ही सेवा मान लेते हैं।

इसमें एक कथा आती है कि एक व्यक्ति चोर था, उसका काम ही चोरी करके जीवन का निर्वाह करना था। एक दिन शिव मन्दिर में उसने एक बहुत बड़ा घण्टा बँधा हुआ देखा और निश्चय किया कि मैं इसको चुरा लाऊँगा। रात्रि में पूजा होने के पश्चात् मन्दिर का फाटक बन्द करके पुजारी वा अन्य सभी लोग चले गये

तो वह चुपके से मन्दिर में घुस गया। जाकर घण्टा उतारने लगा, घण्टे तक उसका हाथ नहीं पहुँचा। उसके समक्ष कोई अन्य रास्ता नहीं था जिससे वह घण्टा उतार सके। सोचने लगा अब क्या करूँ? बड़ा व्यथित था, उसके हृदय में घन्टा उतारने की बड़ी चाह थी, घण्टे तक पहुँचने और उसे उतारने का एक ही उपाय था। मध्य में भगवान् का शिवलिंग काफी ऊँचा था। उसने देखा, शिवलिंग पर खड़ा होकर घण्टा पकड़ कर उतार सकता हूँ किन्तु साथ में सोच रहा था कि शिवलिंग तो भगवान् हैं, इन पर चढ़कर घण्टा कैसे उतार सकता हूँ। बहुत प्रयत्न किया, इधर–उधर घूमता रहा, चारों ओर परिक्रमा की, कोई उपाय नहीं सूझा। उधर प्रभात होने वाला है, थोड़ी देर के बाद पुजारी आ जायेगा, द्वार खोलने पर पकड़ा जाऊँगा तो दुर्गति होगी। यदि मैं यहाँ से खाली हाथ जाता हूँ तब भी मुसीबत है, हमारे परिवार का पालन कैसे होगा? विचार करता है कि भगवान् शंकर तो सबके हैं, यदि मैं ऊपर चढ़ जाऊँ तो उनका बच्चा हूँ। मैंने सुना है वे सबके पिता हैं, बच्चा तो पिता के कन्धे पर भी चढ़ जाता है, इतना सोचकर वह व्यक्ति शिवलिंग पर खड़ा होकर ज्यों ही घण्टा उतारने लगा कि भगवान् शंकर प्रकट हो गये। देखते ही वह एकदम काँप गया कि मैं इनकी चोरी कर रहा हूँ इसीलिये तो प्रकट नहीं हो गये। शंकर प्रसन्न होकर कह रहे हैं, वत्स! तू मेरे से वरदान माँग ले। वह पूछता है, वरदान किस बात का? मैं तो आपकी चोरी करने के लिए खड़ा हुआ था। भगवान् शंकर कहने लगे, लोग मुझे पत्र–पुष्प चढ़ाते हैं, तुमने तो अपने आपको चढ़ा दिया। जो अपने आपको समर्पित कर देता है, वह और क्या दे सकता है? वह कहता है, भगवन्! यह तो मेरी अज्ञानता है। भगवान् शंकर ने कहा कि यहाँ ज्ञान और अज्ञानता का प्रश्न नहीं है। किसी प्रकार से तुमने स्वयं को समर्पित किया है, मैं तो इतना ही जानता हूँ। आप ज़रा विचार कीजिए, ऐसे दयालु, कृपालु भोले नाथ हैं, जिनकी कथा शिवपुराण में आती है।

मैं आप लोगों को एक बहुत गरीब भील की बात बता रहा था। वह भ्रमण करता रहता किन्तु कोई भी शिकार उसके हाथ नहीं लगता था। अपने बच्चों को याद कर वह काँप जाता है कि वे घर में भूखे बैठे होंगे। लौटकर घर जाऊँगा तो बच्चे माँगेंगे कि पिता जी खाने को दो तो मैं क्या दूँगा? दुःखी होता है, बिना शिकार के

घर न लौटने का निश्चय करता है। एक बिल्व के पेड़ के ऊपर चढ़कर देखता रहता है कि तालाब में पानी पीने के लिए पशु आयेगा और मैं उसे मारूँगा। पेड़ पर बैठा हुआ जब डाल इधर–उधर करता है तो बिल्व के पत्ते भगवान् शंकर के ऊपर गिर पड़ते हैं साथ में उसने पीने के लिए पात्र में पानी रख रखा है, थोड़ी सी पानी की बूँदें भगवान् शंकर पर गिर जाती हैं। यह क्रम चलता रहता है। इतने में एक मृगी आ जाती है। वह उसे मारने के लिए धनुष उठाता है तो वह उससे प्रार्थना करती है कि भीलराज! यह क्या कर रहे हो? कहता है, मैं तुम्हारा वध करूँगा क्योंकि मेरे बच्चे भूखे हैं। मृगी कहती है कि मेरा जीवन धन्य हो जायेगा यदि मेरा यह हाड़–माँस का शरीर किसी के काम आ जाये। मेरे समान संसार में और कोई भी भाग्यशाली नहीं होगा यदि मेरे शरीर के अंग किसी भूखे की भूख को मिटा सकें। भील कहता है, फ़िर विलम्ब क्यों? उसने कहा, एक मेरी प्रार्थना है, मेरा एक छोटा सा बच्चा मैं अपने स्थान पर छोड़कर आई हूँ, यदि तुम मुझे थोड़ी देर के लिए समय दे दो तो मैं यहाँ से लोटकर जाऊँ, अपने बच्चे को अन्य मृगियों को संभाल दूँ। इसके बाद मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगी, तुम मुझे मार देना। भील कहता है, तुम अपने आप को पशु समझ कर इतना चतुर समझती हो और मुझे मनुष्य जानकर इतना भोला समझती हो कि हाथ में आया हुआ शिकार मैं छोड़ दूँगा। मृगी ने कहा–भीलराज! मैं धर्म को जानती हूँ इसलिए मुझे अपने प्राण की चिन्ता नहीं है, मुझे मृत्यु का भय नहीं है, यह शरीर तो एक न एक दिन नाश होने वाला है। जब नाश होगा उस समय किसी के काम आयेगा वा नहीं आयेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता; इसलिए यदि आज यह शरीर आपके बच्चों की भूख मिटा सकता है तो इससे उत्तम और कोई बात नहीं होगी किन्तु मेरे पर विश्वास कीजिए, धर्म को साक्षी करके कहती हूँ कि अपने बच्चों को संभाल कर आपके पास आऊँगी। जिस पेड़ पर भील बैठा हुआ था उस पेड़ के नीचे शिवलिंग था। मृगी की बात सुनते–सुनते उस पेड़ के पत्ते शिवलिंग पर गिर पड़े, शुद्ध वातावरण से उसकी बुद्धि में थोड़ा परिवर्तन आ गया। वह कहता है–अच्छा तुम जाओ, बच्चों को संभाल कर शीघ्र आना। मृगी लौट आती है।

इतने में दूसरी मृगी आती है, जब उसको मारने के लिए

धनुष उठाता है तो दूसरी मृगी भी यही कहती है कि भीलराज! आप क्या कर रहे हो? उसे भी यही कहता है कि मैं अपने बच्चों का पोषण करना चाहता हूँ। उसने कहा, मेरे लिए सौभाग्य की बात है, आज मेरा शरीर आपके बच्चों के काम आयेगा, मुझे थोड़ी देर का समय दीजिये, मैं अपने स्वामी से आज्ञा ले आऊँ, वह मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उसने कहा, एक मृगी पहले भी मुझे ऐसे बहका कर चली गई है, तुम्हें जाने नहीं दूँगा। वह बोली—आप विश्वास कीजिए, एक के धोखा देने से आप हमारे मृग समाज को ही धोखा देने वाले समझ लेंगे, यह आपकी भूल है। किसी समाज में प्रत्येक व्यक्ति समान विचार वा समान भाव का नहीं होता किन्तु फिर भी मुझे विश्वास है कि आपके साथ कोई विश्वासघात नहीं करेगा। यदि आप ऐसा समझते हैं तो मुझे अवसर देकर देखिये। उसको दया आ जाती है, वह कहता है, अच्छा तुम भी चली जाओ।

उस मृगी के जाने के पश्चात् इतने में ही मृग आ जाता है और ये सब आते हैं एक–एक पहर के अन्तर में। वह मृग को मारने के लिए धनुषबाण उठाता है। शिवलिंग पर पुनः बिल्व के पत्ते गिरते हैं। मृग पूछता है तुम क्या कर रहे हो? भील उससे भी वही कहता है। मृग ने कहा—देखो भीलराज! मुझे अपने शरीर से मोह नहीं, आप यदि मुझे मारना चाहते हो तो मारो, मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मारने से पूर्व मेरी एक बात सुन लो, मेरे मांस को खिलाकर तुम अपने बच्चों को कितने दिन तक पालोगे? वह कहता है—कितने दिन की बात तो मैं जानता नहीं किन्तु आज अपने बच्चों की भूख तो मिटा सकता हूँ। वह पूछता है, जिनको पालने के लिए तुम यह पाप कर रहे हो, क्या वे तुम्हारे पाप के भागी होंगे? भील सोचता है, बात तो सत्य है, मेरे पाप में भागी तो नहीं होंगे किन्तु उनके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य तो है। भील कहता है कि वे मेरे पाप में भागी होंगे वा नहीं, मैं तो अपने कर्तव्य को देख रहा हूँ। तुम मेरे को धर्म का भय दिखाकर मेरे बाण से बच नहीं सकते। वह कहता है—ठीक है। अपने स्त्री वा बच्चों के पालन के लिए मेरे प्राण की हत्या करना चाहते हो तो इससे पूर्व मेरी एक प्रार्थना सुन लो; कम से कम मैं अपनी स्त्री और बच्चों को बता आऊँ कि मैं अपना शरीर देने जा रहा हूँ। वह कहता है दो पहले ऐसा कह कर गये हैं अब तू भी अपनी जान बचाकर जाना चाहता है। उसने कहा, हो सकता है वे

दोनों चले गये हों वा आ रहे हों ऐसा भी तो हो सकता है, तुम कम से कम मेरे पर विश्वास तो करो। अब तीसरा पहर हो चुका है। वह सोचता है, चलो तीन पहर बीत गया, अब तो सवेरा होने वाला है। यदि यह हमसे झूठ बोलकर चला भी गया तो प्रातः होने पर कोई और शिकार मिल जाएगा। मृग चला जाता है।

वे मृग की ही दोनों पत्नियाँ हैं और दो बच्चे हैं। जब वह लौटकर घर जाता है तो तीनों विचार करते हैं कि हम भील से प्रतिज्ञा करके आये हैं, इसलिए हमें उसके बच्चों की भूख मिटाने के लिए जाना चाहिए। जो सबसे पहले मृगी आई थी, वह कहने लगी, मैं जाऊँगी क्योंकि मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने शरीर को देकर उसके बच्चों की भूख मिटाऊँ। दूसरी जो उससे छोटी है, वह कहती है–छोटे के होते हुए परिवार में बड़ा अपना बलिदान करे, यह शोभा नहीं देता, यह सौभाग्य मुझे मिलना चाहिए क्योंकि यह मेरा कर्तव्य है। मृग कहता है कि पिता के बिना बच्चा सुख से रह सकता है लेकिन माँ के बिना बच्चे का जीवन अधूरा है। मृग और मृगी के संवाद का बहुत सुन्दर उपदेश आता है। वह कहता है कि वह स्त्री अपने शरीर को नष्ट करने की अधिकारिणी हो सकती है जिसके आगे कोई सन्तान न हो किन्तु सन्तान वाली स्त्री का पहला कर्तव्य सन्तान को संभालना है। मैं पुरुष हूँ, तुम लोगों को सन्तान देकर मैं अपने कर्तव्य से मुक्त हो गया हूँ। तुम अपनी सन्तानों को संभालो, मैं चल कर उसका शिकार बनूँ। मृगियाँ कहती हैं–नहीं, पत्नी का पति सर्वस्व होता है, हमारे होते हुए प्राणेश बलिदान देने के लिए जायें, यह सम्भव नहीं। बच्चे सुनकर पूछते हैं, किस विषय में बात कर रहे हो? बच्चे कहते हैं कि हम दोनों के होते हुए आपको जाने की क्या आवश्यकता है? हम दोनों जाकर उसके परिवार की भूख मिटा देंगे; आप तीनों यहीं रहें। बच्चों के होते हुए किसी महान् काम के लिए बड़े जायें, यह तो उचित नहीं है। अन्त में निर्णय होता है कि हम सभी जायेंगे। प्रातः होने वाला है, मृग, उसकी दो पत्नियाँ और दो बच्चे, पाँचों जाकर खड़े हो जाते हैं। मृग आवाज़ देता है, भीलराज! तीन आपसे प्रतिज्ञा करके गये थे, पाँच आपकी सेवा में आये हैं। बड़े प्रेम से आप हमें मार कर परिवार का पालन–पोषण कीजिए। भील सोचता है कि पशु जाति में उत्पन्न हुए प्राणी धर्म और सत्य के प्रति इतनी आस्था रखते हैं, मैं मनुष्य होकर

भी इतना गिर गया हूँ, इतने निम्न स्तर तक पहुँच चुका हूँ कि मेरे हृदय में न धर्म का स्थान है और न दया का, मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है। वह कहता है—मृगो! मुझे तुम लोगों की कोई आवश्यकता नहीं है, न मैं अपने सुख के लिए और न सन्तान के लिए तुम्हें मार सकता हूँ। मैंने मृग की बात समझ कर निश्चय किया है कि जिन लोगों के लिए मैं तुमको मारूँगा, वे मेरे पाप में भागी नहीं होंगे इसलिए तुम आराम से चले जाओ। वे अभी लोटने की सोच रहे थे कि इतने में वह ऊपर से नीचे उतर कर आता है, निश्चय करता है कि अब मैं ऐसे ही घर लौट कर चला जाऊँगा। इतने में भगवान् शंकर प्रकट होते हैं। उनको देखकर वह आश्चर्य में डूब जाता है। भगवान् कहते हैं—भीलराज! तुमने मेरी रात भर आराधना की, रात्रि का जागरण किया और अनजान में ही तुमने बिल्व पत्र मेरे ऊपर चढ़ाये। भील पूछता है, इतने से आप प्रकट हो गये? वे कहते हैं—नहीं, इससे भी एक बड़ी बात और है। धर्म का सार है दया। शिवरात्रि का व्रत करने से तुम्हारे हृदय में धर्म का तत्त्व जो दया है, उसका उदय हुआ है। जहाँ प्राणिमात्र के प्रति दया वा करुणा है वहीं शिव और शिवा हैं। मैं तुम्हारी दया से प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देने के लिए आया हूँ।

जो लोग भगवान् की पूजा वा उपासना तो करते हैं किन्तु प्राणियों की हिंसा उनके जीवन का अंग बन चुका है, ऐसे लोगों को भगवान् की उपासना से क्या लाभ हो सकता है, क्या हित हो सकता है, ज़रा विचार कीजिये? ऐसे लोग शिव की कृपा के पात्र बनेंगे? मेरा विश्वास है नहीं, कभी भी सम्भव नहीं। जब तक हृदय में दया वा करुणा का उदय नहीं होता, तब तक धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जब लगि घट में प्रान।।

दया ही धर्म का मूल है, पाप की जड़ अभिमान है, अहंकार है। भगवान् को मानने से, उपासना, पूजा करने से, उन्हें सर्वस्व समर्पित कर देने से भी भगवान् की कृपा का पात्र प्राणी नहीं बन सकता, जब तक कि उसमें प्राणियों के प्रति दया भाव का उदय न हो।

आप, हम सब भगवान् शिव की उपासना क्या करेंगे! भगवान्

की उपासना करने वाले रावण, बाणासुर और अनेकों दैत्य हो चुके हैं, जिनके एक अंश के बराबर भी हम, आप उपासना नहीं कर सकते। भगवान् की उपासना करने वाले जो देव और दैत्य हैं, उनके स्वभाव को देखिये। राम और रावण दोनों शिव के उपासक हैं। अभी मैं शिव सहस्र नाम की बात बता रहा था। भगवान् विष्णु एक नाम जपकर एक पुष्प भगवान् शिव को अर्पित करते थे। एक सहस्र कमल उन्होंने भगवान् के चरणों में पूजा करके अर्पित करने थे। उन्होंने ६६६ कमल भगवान् को चढ़ाये, अन्त में उनकी परीक्षा लेने के लिए भगवान् शंकर ने अपनी माया से एक कमल–पुष्प छिपा लिया। भगवान् विष्णु उपासना में बैठे थे, उठ नहीं सकते थे, एक फूल नहीं है, अब उसकी पूर्ति कैसे करें। कोई साधन दिखाई नहीं दे रहा है। सोचने लगे कि मेरा व्रत नष्ट हो रहा है, इस समय क्या किया जाये। कमल का फूल कहाँ से आये। उनको स्मरण हो आया कि फूल तो नहीं है लेकिन दुनिया मुझे कमल नेत्र कहती है। भगवान् का एक नाम कमल–लोचन है। कमल–लोचन माने कमल के समान आँख वाला। भगवान् ने कहा कि संसार मुझे कमल–नेत्र वा कमल लोचन कहता है। एक पुष्प के स्थान पर मेरे पास तो कमल के समान दो नेत्र हैं। ऐसा निश्चय करके उसी समय प्रभु अपना नेत्र निकालकर अर्पित करने लगते हैं कि तुरन्त भगवान् शंकर प्रकट हो गये और बोले कि मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ। भगवान् शंकर की करुणा से वही भगवान् विष्णु राम रूप में प्रकट हुए। भगवान् का अनन्य भक्त रावण केवल नेत्र ही नहीं चढ़ाता, जानते हो क्या चढ़ाता है? अपना सर। अंगद जब पूछता है तो रावण कहता है–

सूर कवन रावण सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस।।

(रा॰ ६/२८)

रावण के समान दुनिया में कौन वीर है? अगंद तुम जानते नहीं, मैंने शंकर की उपासना फूलों से नहीं की, सर से की है–

सिर सरोज निज करन्हि उतारी।
पूजेऊँ अमित बार त्रिपुरारी।।

(रा॰ ६/२४/३)

रावण ने अपने मस्तक रूपी कमल को अपने हाथ से

अनेकों बार काटकर भगवान् शंकर की उपासना की है। भगवान् शिव का इतना अनन्य भक्त रावण किन्तु देखिये परिणाम क्या होता है। शिव को कमलवत् नेत्र अर्पित करने वाले राम परमात्मा हैं और अपना सिर काटकर समर्पित करने वाला रावण राक्षस बना। राम भगवान् बनें, रावण भगवान् नहीं बना। आप जानते हो क्यों? जानने के लिए मैं आप लोगों को समझा दूँ। तुलसीदास की दृष्टि में राम और रावण दोनों अवतार हैं। रावण का अवतार पहले और राम का अवतार बाद में होता है। तुलसीदास जी ने लिखा है–

पुनि नारद कर मोह अपारा।
कहेसि बहुरि रावण अवतारा।।
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई।
तब सिसु चरित कहेसि मन लाई।।

(रा॰ ७/६४–८,९)

पहले रावण का अवतार और बाद में राम का अवतार होता है। रावण जाति से राम से भी उँचे कुल का है। राम राजवंश में उत्पन्न हुए क्षत्रिय हैं और रावण ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ तपस्वी ऋषि विश्रवा का पुत्र और ऋषि पुलस्त्य का पोत्र है–

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती।
सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।।

(रा॰ ६/२०–२)

उत्तम कुल में पैदा हुआ रावण भगवान् शंकर का अनन्य चरणानुरागी भक्त था, रावण नास्तिक नहीं परम आस्तिक था। हमारे यहाँ वेद में कहा है–

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्पञ्चौ चरतः सः।
तल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाग्निनाँ।।

(यजुर्वेद २०/२५)

जहाँ ब्राह्म बल और क्षात्र बल दोनों साथ–साथ चलते हैं, वहीं के लोग देवता तुल्य होते हैं। रावण ब्राह्म बल से युक्त, ब्राह्मण कुमार और ऋषि पुत्र है। आपको एक बात और जानकर आश्यर्च होगा कि राम और रावण दोनों का जन्म स्थान उत्तर प्रदेश है और दोनों आर्यवर्त की संताने हैं। रावण लंका में पैदा नहीं हुआ था, लंका में उसने अपना राज्य स्थापित किया था। उसका जन्म तो बद्रीनारायण के पास हुआ था। हिमालय उसका जन्म स्थान रहा है।

तृण बिन्दु ऋषि के आश्रम में उसके पिता विश्रवा रहा करते थे। भारत जैसी पवित्र धरती, हिमालय जैसे पावन क्षेत्र में रावण का जन्म हुआ था, जन्म से ऋषि कुल, विश्रवा का पुत्र, पौलस्त्य का पौत्र और वेद–वेदान्त का विद्वान् महापण्डित रावण भगवान् शंकर का अनन्य भक्त था। राम शैव हैं और रावण भी शैव भक्त है। राम स्वयं भगवान् शिव की आराधना करते हैं। जैसे आप सब अपने घर में कोई अच्छी वस्तु बनाते हैं तो वहाँ अपने इष्ट की पूजा करते हैं वा स्थापना करते हैं, इसी रूप से भगवान् राम जब समुद्र के ऊपर सेतु बाँधते हैं तो निश्चय करते हैं–

देखि सेतु अति सुन्दर रचना।
बिंहसि कृपानिधि बोले बचना।।
करिहऊँ इहाँ संभु थापना।
मोरे ह्रदय परम कल्पना।।

(रा॰ का॰ २/२–,४)

भगवान् कहते हैं कि यहाँ तो हम अपने इष्ट देव भगवान् शंकर की प्रतिष्ठा करेंगे। भगवान् राम स्वयं वहाँ पर शिव की प्रतिष्ठा करते हैं जिसको रामेश्वरम् कहते हैं –

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।

(रा॰ ६/२–६)

भगवान् राम शंकर की विधिवत पूजा करके कहते हैं कि शिव के समान मेरा दूसरा कोई प्रिय नहीं है। वहाँ पर भविष्य के लिए लोगों को वरदान देते हुये प्रभु राम कहते हैं –

जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि।
सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि।।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही।
सो बिनुश्रम भवसागर तरिही।।

(रा॰ ६/३–२,४)

जो रामेश्वर का दर्शन करेगा वह बिना प्रयास ही भवसागर से पार हो जायेगा। जो गंगा जल लाकर चढा देगा, उसे सायुज्य मुक्ति मिल जायेगी। भगवान् राम शैव हैं, रावण भी शैव है, भगवान् राम क्षत्रिय हैं और रावण ब्राह्मण है, जन्म से दोनों अवतारी और दोनों आर्यवर्त के रहने वाले हैं, सारी बातों में दोनों बराबर हैं। वेद

के भी दोनों विद्वान् हैं किन्तु एक राक्षस है और दूसरा भगवान् है। इतनी भक्ति करने वाला व्यक्ति राक्षस कैसे हो गया? स्वार्थ के नाते। हमने जब पूरी रामायण पढ़कर बहुत मनन किया कि आखिर राम और रावण में इतना अन्तर क्यों आया? हमें केवल एक ही बात मिली है। हमें वाल्मीकि और तुलसी रामायण में यह कहीं नही मिला कि राम ने अपने लिए भी कुछ किया हो और यह भी नहीं मिला कि रावण ने भूलकर भी कभी किसी पर दया या परोपकार किया हो। रावण के जीवन में परोपकार की कोई छोटी सी घटना भी नहीं मिली कि किसी पर कभी दया की हो। आप कहेंगे, फिर वह भक्त कैसा था।

भक्ति और धर्म का रास्ता अलग–अलग है, ये दोनों एक नहीं। भक्ति को ही धर्म नहीं कहते। भक्ति ही धर्म नहीं है, भक्ति तो स्वार्थ से भी हो सकती है। मनुष्य एक निर्बल प्राणी है, वह अपनी कामनाओं को पूर्ण करने में अपने को असमर्थ देखता है। जब अपने को असमर्थ पाता है तो सोचता है कि मैं अपनी कामना अपने आप तो पूर्ण कर नहीं सकता इसलिए मुझे क्या करना चाहिए। कोई मेरे से अधिक बलवान हो तो प्रार्थना करूँ, वह मेरी सहायता कर दे। उसको पता चलता है कि सबसे अधिक बलवान तो भगवान् हैं, तब वह अपनी कामना की पूर्ति के लिए भगवान् से सहायता माँगता है। कर्म स्वयं में एक विज्ञान है और प्रत्येक क्रिया का फल होता है। जब कोई कर्म करेगा तो ईश्वरीय विधान से उस कर्म का फल उसे अवश्य मिलेगा। मिले हुए फल का चाहे सदुपयोग करे वा दुरुपयोग करे, यह उसके ऊपर निर्भर है। जब व्यक्ति अपनी असमर्थता देखकर और भगवान् की महत्ता को सुनकर भगवान् से प्रार्थना करता है, उसकी उपासना, भक्ति वा पूजा करता है तो उससे क्या होता है? उस कर्म के बदले में भगवान् उसे शक्ति देता है। अब मिली हुई शक्ति का वह सदुपयोग करे अथवा दुरुपयोग करे, यह उसके ऊपर निर्भर है। रावण ने भगवान् की उपासना करके शक्ति प्राप्त की लेकिन उस शक्ति का उसने दुरुपयोग किया। किसमें किया? भोग में। भोग, अहंकार और गर्व में व्यक्ति अन्धा हो जाता है, उसे अच्छाई और बुराई का पता नहीं चलता कि वह अपने जीवन में क्या कर रहा है। उसे ज्ञान नहीं रहता। रावण इसी प्रकार से अन्धा हो गया। भूत द्रोह उसका सहज धर्म बन गया था। रामायण

में विभीषण ने रावण को समझाते हुए एक बात कही है। विभीषण कहता है कि रावण –

चौदह भुवन एक पति होई।
भूत द्रोह तिष्टइ नहिं सोई।।

(सु॰ का॰ ५/३७/७)

चाहे कोई चौदह भुवनों का एक स्वामी हो जाये, यदि वह प्राणियों से द्रोह करने लगेगा तो बच नहीं सकता, वह जीवित नहीं रह सकता, उसका हित नहीं हो सकता। परिणाम क्या होता है? रावण की गति देखिये, उसकी स्वर्णमयी लंका उसके समक्ष राख हो गई। उसका समस्त परिवार मृत्यु के घाट उतार दिया गया और अन्त कैसा हुआ ? एक कवि ने लिखा है–

था पड़ा सोना भरा उस लंक की दीवार में।
किंचित न सोना मिल सका रावण को मरती बार में।।

आप लोगों को पता है रावण की सोने की लंका थी। हमारे हिन्दू धर्म का यह सिद्धान्त है कि जब आदमी मरने लगता है तो उसके मुँह में सोना, तुलसी और गंगाजल डालते हैं किन्तु मेरे दोस्त! जिसने सोने की लंका बनाई थी, उसे किंचित मात्र भी सोना नसीब नहीं हुआ तो जो किलो दो किलो सोना इक्ठा कर लेते हैं और अपने आपको समझते हैं कि वे ही सब कुछ हो गये रावण का बाप, उनकी क्या गणना है? इसलिए रहस्य को समझो कि भगवान् राम भगवान् क्यों बने? भगवान् राम भगवान् इसलिए नहीं बने कि वे अवतार लेकर आये थे। वेदान्त की दृष्टि में हम आप सभी अवतार हैं, सभी परमात्मा से ही प्रकट हुए हैं, परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं तो प्रकट किससे होंगे। एक तिनका और चींटी भी परमात्मा के अंश हैं, और की तो बात छोड़िये। कहने का अभिप्राय कि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। आप जानते हो कि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वत्र और सर्वव्यापी है। जब सर्वत्र परमात्मा है तो दूसरे का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। जितनी मात्रा में आप दूसरे का अस्तित्व स्वीकार करोगे, उतनी मात्रा में वहाँ परमात्मा नहीं होगा।

पृथ्वी के तल भाग को पाताल कहते हैं, वह पाताल प्रभु का चरण है। द्युलोक वा ब्रह्मलोक प्रभु का शीष है और पृथ्वी के मध्य में जो दिखाई दे रहा है, वह सब ब्रह्म का स्वरूप है। अनन्त

ब्रह्माण्ड से युक्त जो कुछ भी है, यह सारा परमात्मा का ही स्वरूप है, परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं, हमारा कोई अस्तित्व नहीं। हम, आप सभी परमात्मा के ही अवतार हैं, इसमें कोई संदेह नहीं लेकिन उस अवतरित तत्त्व की महत्ता का प्रकाश कहाँ अधिक है, यह देखना है। आप पूछोगे कि हम यदि परमात्मा के अवतार हैं तो दुःखी क्यों हैं ? जिनको आप परमात्मा का अवतार मानते हो दुःख तो उनके जीवन में भी आया किन्तु उन्होंने दुःख माना नहीं। आपके पिता कल सायंकाल आपको यदि यह समाचार देते हैं कि तुम्हारे नाम पर बैंक में इतना रुपया जमा करवा दूँगा और प्रातः होते ही यदि वह उत्तर दे दें कि तेरे को तो आज एक पैसा भी नहीं देना तो आप सर फोड़ने के लिए तैयार हो जाओगे। कल क्यों कहा था, झूठ क्यों बोलते हो। लेकिन राम? सायंकाल को पिता आज्ञा देते हैं कि राम तैयारी करो, कल राज्याभिषेक होगा। प्रातः जब राम राज्य सिहांसन के लिए तैयार हुए तो समाचार मिलता है कि राम तुम्हें चौदह वर्ष का वनवास दिया गया है। सामान्य नहीं तपस्वी वेश में, वस्त्र नहीं वल्कल पहनने होंगे, जूते नहीं नंगे पांव चलना होगा, अन्न नहीं कन्दमूल–फल खाने होंगे। कोई सेवक साथ नहीं होगा, तुम्हें अकेले जाना होगा। कठोर वनवास इसे कहते हैं। इसलिए कैकेयी ने वर माँगते हुए कहा था –

तापस बेष बिसेषि उदासी।
चौदह बरिस राम बनवासी।।

(रा॰ २/२६–३)

'विशेष उदासी' यहाँ विशेषण लगा है। इतना सुनकर भी राम के चेहरे पर मलिनता नहीं आई, प्रसन्नता है। कैकेयी की बात सुनकर राम कहते हैं, सुनो माँ!

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

(रा॰२/४१–७,८)

"हे माँ! पुत्र वही बड़भागी है जो माता–पिता की आज्ञा का पालन करता है और माता–पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र इस

संसार में दुर्लभ है इसलिए माँ! मैं तो बड़ी प्रसन्नता के साथ वन को जाऊँगा"।

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर।।

(रा॰ २/४१)

माँ! हमारे लिए वन को प्रस्थान करना तो स्वर्ग से भी बढ़कर है। वन में मुनियों का मिलन होगा। मुनि मिलेंगे तो क्या लाभ है? कहा एक मुनि विश्वामित्र जी के मिलने से हमारा इतना लाभ हुआ–

बिस्व बिजय जस जानकी पाई।
आई भवन ब्याहि सब भाई।।

(रा॰ १/३५७–५)

एक मुनि के मिलने से विश्व में कीर्ति मिली, धनुष तोड़कर सीता जी को विवाह कर लाये। एक का नहीं चारों भाइयों का विवाह हो गया, राम की प्रभुता छा गई। एक मुनि के मिलने से इतना लाभ हुआ, माँ! जंगल में तो हज़ारों मुनि मिलेंगे फिर कितना लाभ होगा, कल्पना तो करो। राम कहते हैं–

जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।

(रा॰ २/४२–२)

माँ! यदि मैं इतने महान् लाभ के बदले में भी वन को न जाऊँ तो दुनिया में मेरी मूर्खों में प्रथम गिनती होगी। श्री राम प्रसन्नता से वन को चले जाते हैं, उनके चेहरे पर ज़रा भी मलिनता नहीं आती, क्योंकि राम अपने लिए कुछ नहीं चाहते, सर्वस्व अर्पित करके लोकहित का सम्पादन करना चाहते हैं, यह महिमा राम की है। उस महिमा का परिणाम देखिये, आज भी उनकी अमर गाथा गाई जाती है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि इतना बड़ा त्याग, इतना बड़ा समर्पण, इतनी बड़ी धर्म–निष्ठा राम में है क्योंकि राम को अपने लिए कुछ नहीं चाहिये। यही मूल मन्त्र है। इधर राम और उधर रावण को देखिये। उसको जो चाहिए सब अपने लिए चाहिए, दूसरों के लिए उसके पास कुछ नहीं। यही कारण है कि राम भगवान् बने और रावण इन्सान भी नहीं बन सका, शैतान माना

जाने लगा। कहने का अभिप्राय कि जिनको आप अवतार मानते हैं, उनके समक्ष भी दुःख आये, कठिन परिस्थितियाँ आईं, उनसे वे घबराये नहीं, उनका सामना करते हुए आगे बढ़े। हमें उनसे शिक्षा लेनी चाहिये, उनका अनुकरण करना चाहिए। आप कहेंगे, राम तो बहुत महान् थे, हम उतने महान् नहीं हैं। मैं आपको एक बात समझाऊँ। आप लोग विद्युत का प्रकाश देख रहे हैं, इससे भी बड़ा बल्ब हो सकता है जिससे मीलों तक प्रकाश चला जाये। उसी विद्युत शक्ति से सम्बन्धित एक प्रकाश होता है, बहुत छोटा सा बल्ब जो केवल टिम–टिम करता रहता है। आप ज़रा कल्पना कीजिये, एक हज़ार पावर का बल्ब जिससे मीलों तक प्रकाश हो जाता है और एक उस बहुत छोटे से बल्ब की कल्पना कीजिये जो लाल, पीला, हरा और नीला अनेक प्रकार का होता है। यदि मैं आप से पूछूँ कि जो मीलों तक प्रकाश देने वाला तत्त्व है और जो जुगनू की भांति चमकने वाला तत्त्व है, दोनों एक हैं या कि दो हैं, आप क्या कहेंगे? स्रोत तो दोनों का एक है। क्या बिजली को अधिक वा कम किया जा सकता है? नहीं, बिजली अधिक-कम नहीं होती, बिजली का माध्यम ही अधिक वा कम होता है। बल्ब की Capacity अधिक वा कम हो सकती है लेकिन विद्युत की शक्ति अधिक वा कम नहीं होती, वह तो विद्युत है। इसी रूप से आत्मा जो राम में है वही आप में है, जो प्रकाश हज़ार पावर का बल्ब दे रहा है वही विद्युत उस छोटे से बल्ब में भी है। बिजली में कोई अन्तर नहीं, विद्युत एक है। अन्तर किसमें है? बल्ब की शक्ति में। आप क्या बल्ब हो? नहीं। आपका वास्तविक स्वरूप क्या है? बिजली, प्रकाश। आत्मा किसे कहते हैं? बल्ब को नहीं, विद्युत को आत्मा कहते हैं इसलिए आपका जो चेतन है वही चेतन राम का है, अन्तर केवल माध्यम में है। राम का चित्त महान् हो गया राम महान् हो गये। आप भी अपने चित्त को महान् कर लो आप भी महान् हो जाओगे।

चित्त को महान् किया जा सकता है, इसी के लिए सारी साधना है। साधना किसे कहते हैं? जितना चित्त मिला हुआ है यदि उतना ही रह जाये तो साधना का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। चित्त महान् किया जा सकता है। चित्त भी तत्त्वतः वही है किन्तु कहीं पर चित्त शुद्ध और कहीं पर अशुद्ध है। अनेक प्रकार की वासनाओं से चित्त मलिन है इसलिए वह इंसान से नीचे हैवान और

हैवान से भी नीचे शैतान बन जाता है। हैवान केवल अपने लिए हानिकारक है परन्तु शैतान उस हैवान से भी बदतर होता है। हैवान माने पशु और शैतान माने राक्षस। इन्सान कभी भगवान् न बने तो कम से कम इन्सान तो रहे। रावण चला तो था भगवान् बनने परन्तु वह इन्सान भी नहीं रहा। क्यों नहीं रहा, जानते हो? स्वार्थ के नाते। उसकी पूजा, उसकी भक्ति और उसका ज्ञान सब मिट्टी में मिल गया इसलिए दोस्तो! मैं आप लोगों को बता रहा था कि राम और रावण दोनों को अपने समक्ष देखो। राम अपने लिए कुछ नहीं चाहते इसलिए भगवान् हैं। रावण सभी कुछ अपने लिए चाहता है इसलिए वह शैतान है। यह नहीं कि रावण भक्त नहीं था, ज्ञानी नहीं था, भगवान् का उपासक नहीं था, किसी को मानता नहीं था, किन्तु सब कुछ करते हुये भी वह स्वार्थी था, निर्दयी था, संसार में लिप्त वा भोगरत था। यही थर्मामीटर ज़रा अपने अन्दर लगाकर देखो कि आप किस रास्ते पर चल रहे हो, राम वाले या रावण वाले? आप किधर जा रहे हो? आपकी उपासना, भक्ति किस रास्ते पर जा रही है? यदि रावण के रास्ते पर जा रही है तो यह उपासना आपको इन्सान भी नहीं रहने देगी, इसके लिए भगवान् सहायता नहीं करेगा। आपने भगवान् की पूजा की तो उसने आपको शक्ति वा सम्पत्ति दे दी, उस शक्ति वा सम्पत्ति का सदुपयोग या दुरुपयोग करना आपके ऊपर निर्भर है। बाप के पास धन था, उसने अपने बच्चों में बाँट दिया। वही बच्चे अपना–अपना भाग संभाल रहे हैं। एक बच्चे ने जाकर वही धन किसी धर्म वा शुभ काम में लगा दिया तो वह भी पवित्र हुआ, उसके नाते कुल पवित्र हो गया और बाप को भी संतुष्टि हुई। दूसरों ने बोतल में लगा दिया तो उस दुरुपयोग का परिणाम कौन भोगेगा? इसलिए मेरे दोस्तो! यदि तुम भक्ति करते हो तो इसके साथ धर्म का अनुसन्धान करो। भक्ति वा उपासना स्वयं में धर्म नहीं, धर्म का स्वरूप तो दया है। मनु ने धर्म के दस लक्षण बतायें हैं और उसमें कहीं भक्ति का जिक्र नहीं है।

धृतिः क्षमा दमो अस्तेयं शौच इन्द्रिय निग्रहः।
धी विद्या सत्याक्रोधः दशकं धर्म लक्षणम्।।

(मनु॰ स्मृति)

धृति (धारणाशक्ति), क्षमा (किसी के अपराध को क्षमा करना) दम (इन्द्रियों का दमन), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाहर–भीतर

पवित्र रखना), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और क्रोध का न करना, ये दस धर्म के लक्षण हैं। इनमें कहीं भगवान् का नाम आया? बिल्कुल नहीं आया। इसमें न भक्ति है न भगवान्, यह है जीवन का विधान। यदि धर्म के दस लक्षण आप में आ जायें तो आप भगवान् क्या भगवान् के बाप भी बन सकते हो? भगवान् तुम्हारा पुत्र होने के लिए लालायित होगा। महाराज दशरथ के लिए कहा गया है –

सरल सुसील धरम रत राऊ।
सो किमि जानै तीय सुभाऊ।।

(रा॰ २/१६२–५)

राजा दशरथ धर्म के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते थे। एक सत्य के लिए उन्होंने राम को वनवास दे दिया, प्राण दे दिया किन्तु सत्य नहीं छोड़ा इसलिए राम उनका पुत्र है। धर्म महान् है। तुलसीदास जी ने लिखा है–

जिमि सरिता सागर महुँ जाई।
जद्यपि ताहिं कामना नाहीं।।

(रा॰ १/२६४–२)

जैसे समस्त नदियाँ समुद्र की ओर बहती हैं किन्तु समुद्र को अन्य नदियों की आवश्यकता नहीं–

तिमि सुख सम्पत्ति बिनहिं बुलाएँ।
धरम सील पहिं जाहिं सुभाएँ।।

(रा॰ १/२६४–३)

इसी रूप से जो धर्म का पालन करता है, संसार की सम्पत्ति अपने आप उसके पास दौड़ कर जाती है, उसको चिन्ता नहीं होती। राम को भक्त नहीं कहते। राम को क्या कहते हैं? 'रामो विग्रहवान् धर्मः' राम धर्म की साकार मूर्ति हैं, इसलिए सनातन धर्म में धर्म की प्रतिष्ठा है, धर्म की महत्ता है। वहाँ पर कोई उपासना करता है वा नहीं करता, भगवान् को मानता है वा नहीं मानता, इसकी कोई महिमा नहीं। फिर महिमा किसकी है? धर्म की। धर्म की रक्षा में जो अनुकरणीय है, उसको क़रना है। राम माता–पिता की आज्ञा मानकर वन में जाते हैं। भरत ननिहाल से आते हैं तो उसी माता को गालियाँ देते हैं। क्यों? अधर्म के रास्ते पर चलने वाले

माता–पिता, गुरु, भाई; बन्धु, संसार का कोई भी हो, वे हमारे लिए त्याज्य हैं। धर्म का रास्ता क्या है? तुलसीदास जी लिखते हैं –

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर।
कहेऊँ तात जानहिं कोबिद नर।।

(रा॰ ७/४१–१,२)

भगवान् राम स्वयं कहते हैं कि परहित के समान कोई धर्म नहीं और पर–पीड़ा के समान कोई पाप नहीं है। आप लोग क्या समझते हो कि आप जब घर में जाकर भोजन के समय माँस के टुकड़े थाली में देखते हो तो वह कहीं पेड़ से कटकर आये होते हैं? वह किसी की हत्या का परिणाम है। खाने में स्वाद तो आता है, उस स्वाद का परिणाम क्या होगा? अभी अधर्म में, अज्ञान में, अहंकार में न जाने किस नशे में अन्धे होकर यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम क्या भुगतना होगा; किन्तु बड़े–बड़े अभिमानी उस गति को प्राप्त हो चुके हैं इसलिए भगवान् की प्रार्थना और वन्दना तुम्हें बचा नहीं सकती।

भूत दया द्विज गुर सेवकाई।
बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी।
सब कर फल हरि भगति भवानी।।

(रा॰ ७/१२६–६,७)

भक्ति ऐसे नहीं मिलती, सच्ची भक्ति के लिए तुम्हें वह रास्ता अपनाना होगा। उसमें भूतदया प्रथम शर्त है। 'आत्मवतसर्वभूतेषु' जैसी मेरी आत्मा है वैसे ही तुम्हारी आत्मा है और वैसे ही समस्त भूत प्राणियों की आत्मा है। एक बार एक सज्जन पूछने लगे कि किटाणु मारना चाहिये वा नहीं? मैंने पूछा–कौन से किटाणु? कहा, रोग के। मैंने कहा, अवश्य मारने चाहिए। फिर आपकी भूत दया कहाँ गई? मैंने पूछा, क्या उसे अपने खाने के लिए मारते हो, स्वाद के लिए मारते हो वा भोग के लिए मारते हो ? नहीं। किसके लिए मारते हो? अपने शरीर की रक्षा के लिए। रामायण की एक बड़ी सुन्दर छोटी सी कथा सुनाकर बन्द करता हूँ।

भगवान् राम ने हनुमान जी को भक्ति का सन्देश दिया और

उनको बताया कि हनुमान तुम्हारे लिए एक सिद्धान्त बता दूँ, याद रखो तुम। हनुमान जी ने पूछा–प्रभो! अनन्य भक्ति का लक्षण क्या है? प्रभु कहते हैं–

सो अनन्य जाके असि मति न टरई हनुमंत।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

(रा॰ ४/३)

हनुमान! यह मेरा मूल मन्त्र है। यह निश्चय रखो कि मैं सेवक़ हूँ और यह चराचर मेरे प्रभु का स्वरूप है। चराचर को प्रभु का स्वरूप मानकर उसकी सेवा करो, यही मेरी भक्ति है। हनुमान जी ने प्रभु के दिये हुए उस मूलमन्त्र को शिरोधार्य किया। हनुमान जी लंका में जब राक्षसों का संहार कर रहे थे, उस समय भगवान् राम का सन्देश क्या उन्हें स्मरण नहीं था? बोले, याद था। हनुमान भूलने वाले नहीं थे। यदि भूलनें वाले नहीं थे तो उन्होंने राक्षसों का नाश कैसे किया? कहा–बड़ा सुन्दर रहस्य है उसके विषय में। हनुमान जी से ही पूछिये रामायण में बड़ी उत्तम बात बताई है। आप ज़रा इसका रहस्य समझिये, कितना आनन्ददायी, मंगलकारी और ज्ञानवर्धक है। हनुमान राक्षसों का वध करते हैं, रावण का नाश करते हैं, उसके पश्चात् हनुमान सीता माँ को सन्देश देने जाते हैं कि राम विजयीं हो गये, अब मैं आपको ले जाने आया हूँ। सीता कहती है कि हनुमान–

का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा।

(रा॰ ६/१०७ छन्द)

हे वत्स! तुम्हारे इस मंगलमय सन्देश के समान इस त्रिलोकी में तुम्हें देने के लिए कुछ नहीं है। हनुमान कहते हैं–

सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।

(रा॰ ६/१०७ छन्द)

हे माँ! आज मुझे सारे ब्रह्माण्ड का आधिपत्य मिल गया, इससे बड़ा मेरे लिए और क्या हो सकता है। आधिपत्य कैसे मिला? सीता की जिज्ञासा को पूर्ण करते हुए हनुमान कहते हैं कि आज मैंने अपने प्रभु को निरामय देखा–

रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि रामनिरामयं।

(रा॰ ६/१०७ छन्द)

माँ! आज मैंने अपने प्रभु को निरामय देखा, मुझे त्रिलोकी

का राज्य मिल गया।' निरामय? 'हाँ माँ! मेरे प्रभु ने मुझे बताया था कि यह समस्त विश्व मेरा स्वरूप है, तुम इस विश्व रूप के सेवक हो। मेरे प्रभु के विश्वरूपी विश्वनाथ शरीर में एक बहुत विषैला फोड़ा हो गया था। यदि स्वामी के शरीर में विषैला फोड़ा हो जाये तो उसकी पूजा के लिए क्या करना चाहिए सेवक को? क्या उस पर चन्दन, अच्छत, पुष्प चढ़ाकर माथा टेकना चाहिए? इसी में स्वामी की सेवा होगी? न न। स्वामी की सच्ची सेवा क्या है? उतने अंग को काटकर दूर कर देना और स्वामी को निरोग्य बनाना। जिस चरण को धोकर सेवक पीता है, उसी चरण में यदि फोड़ा हो जाये तो इसका आप्रेशन करने के लिए उसे काटना पड़ता है, इसमें उसकी सेवा होती है, अपमान नहीं। हनुमान कहते हैं, जो राक्षसी वृत्ति वाले लोग हैं, जो विनाशकारी जीव हैं, वे उस विराट् पुरुष के शरीर में फोड़े हैं, रोग हैं। उस रोग का निदान करना, उस रोग का नाश करना, उस विराट् पुरुष की पूजा है। यह पाप नहीं, अन्याय नहीं है, उसके विनाश में स्वामी का हित निहित है न कि अपना स्वार्थ। इसी रूप से जो प्राणिमात्र के लिए दुःखदायी है, जो उसके लिए विनाशक है, यदि तुम उसका विनाश करते हो तो तुम विश्वरूप परमात्मा की सेवा, उपासना वा पूजा कर रहे हो किन्तु यदि तुम मच्छर मारने की जगह बकरे मारकर अपने पेट में डालो और कहो कि मच्छर और बकरे मारने दोंनो बराबर हैं तो तुम्हारी बुद्धि को धन्यवाद है और क्या कहा जाये।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि भगवान् की उपासना वा भक्ति करना है तो ज्ञान के साथ करो। भक्ति परम धर्म हो सकती है बल्कि धर्म से भी आगे है। तुम इस भक्ति का प्रयोग स्वार्थ के लिए नहीं परहित के लिए करो। हनुमान की भक्ति परम धर्म बन गई, लक्ष्मण की भक्ति परम धर्म बन गई क्योंकि वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं, विश्व एवं लोकोपकार के लिए अपने प्रभु की सेवा किये और उसके लिए समर्पित हुए। इसी प्रकार से तुम्हारी पूजा से तुम्हें शक्ति मिलेगी, उस शक्ति को लोकहित में समर्पित करोगे तो तुम्हारी वह पूजा धर्म का सार बन जायेगी। शिव पुराण में भी इसी प्रकार की भावना से भूतदया को प्रथम स्थान दिया है। जो मैंने आप लोगों को शिवरात्रि की कथा सुनाई थी, शिवरात्रि के व्रत में भील ने मृगों के ऊपर दया की, उस दया से द्रवित होकर भगवान् भूतेश्वर प्रकट

हुए और उसे वरदान दिया। केवल बिल्व पत्र, जल गिराने से नहीं, रात भर व्रत करने से नहीं, वहाँ पर मूल तत्त्व दया है, शिवपुराण में इसका वर्णन है। हम दया का भाव छोड़कर यह सोच लेते हैं कि उसने बिल्व पत्र, जल चढ़ा दिया, वह रात भर भूखा रहा जिससे भगवान् शंकर प्रकट हो गये। शंकर ने स्वयं कहा कि उससे पूजा तो मेरी हो गई किन्तु मेरे प्रकट होने का कारण तो भूत दया है। मैं आपको यही समझा रहा हूँ कि आप भगवान् शंकर के इस महत्वपूर्ण सन्देश को अपने हृदय में धारण करें। भक्ति के साथ भूत दया को अपने हृदय में प्रतिष्ठित करेंगे तभी आप कल्याण के पात्र बन सकते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई अन्य रास्ता नहीं है।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१७/२/८२, हालैण्ड

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

कल आप लोगों को धर्म के विषय में कुछ बातें बताई गई, उसके ऊपर मनन करते हुए उसका एक अंश भी यदि अनुकरण करोगे तो आपको लाभ होगा। कल मैंने एक विशेष बात यह बताई थी कि धर्म उपासना से श्रेष्ठ है, उपासना धर्म का एक अंग है किन्तु वही धर्म नहीं है। धर्म आस्तिकता से भी श्रेष्ठ है, आस्तिकता धर्म का ही अंग हो सकती है किन्तु वही धर्म नहीं हैं। देव पूजन एवं अर्चन आदि ये सब धर्म के अंग हैं किन्तु यही धर्म नहीं है। इसके उदाहरण में मैंने आप लोगों को बताया था कि बड़े–बड़े दैत्य आस्तिक थे, देव पूजक थे, उपासक थे, तपस्वी थे, विद्वान् थे एवं ऊँचे कुल में पैदा होने पर भी वे महात्मा और धर्मात्मा नहीं बने, उनको आज भी हम असुर वा राक्षस कहते हैं। इसलिए धर्म का लक्षण दया, परोपकार और प्राणिमात्र के प्रति आत्मीयता है, उसमें आस्था रखने वाला व्यक्ति भगवान् को प्रिय है। जो लोग अपने सुख, स्वार्थ एवं कामना की पूर्ति के लिए सुने हुए वा जाने हुए भगवान् में आस्था रखते हैं, भगवान् की उपासना करते हैं, नाना प्रकार के व्रत, तप वा पूजा करते हैं, ऐसे स्वार्थी लोग भगवान् से अपने प्रयत्न के बदले में फल तो पा लेते हैं किन्तु वे भगवान् के प्रेम वा कृपा के पात्र नहीं होते। फल देना भगवान् का दिव्य विधान है। जो व्यक्ति कर्म करेगा फल उसे मिलेगा, फल कर्म के साथ जुड़ा हुआ है। भगवान् में भी इतनी क्षमता नहीं कि कर्म करने वाले को फल न दें क्योंकि वह कर्म का नियम है। भगवान् का ऐसा दिव्य विधान है जिसे भगवान् स्वयं भी मिटा नहीं सकते इसलिए दुष्ट लोग भी पूजा और तपस्या करते हैं और उसके बदले में फल पाते हैं। फल में, वरदान में प्रभु की शक्ति प्राप्त करने के पश्चात् आप उसका दुरुपयोग करते हैं तो प्रभु के कोप के भोजन बनते हैं, कृपा के नहीं। अब आपने यह निर्णय करना है कि आप किस रास्ते पर

जाना चाहते हो? अपनी भक्ति, पूजा, ज्ञान और उपासना के साथ यदि आप भूत दया, परोपकार, परहित को अपने हृदय में धारण करते हैं तो आप दैवी मार्ग से जा रहे हैं। यदि आप उसके बदले में प्राप्त शक्ति से भोग और स्वार्थ सिद्धि कर रहे हैं तो आप असुर के रास्ते पर जा रहे हैं। शास्त्र का यह कथन है–

रामादिवत् समाचरेत न रावणादिवत्।

इतिहास का यह प्रयोजन है कि मनुष्य को समझाये कि उसे कैसा जीवन जीना चाहिए रामवत् वा रावणवत्। राम के समान आचरण करना चाहिए क्योंकि एक के समान आचरण करने से आप राक्षस बनेंगे और दूसरे के समान आचरण करने से आप इन्सान से भगवान् बन सकते हैं, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। कल के प्रवचन का यह सार था।

आज हमारे पाठ में अनेक प्रकार के पापों का तथा उनके करने वालों को क्या दण्ड मिलता है, इसका वर्णन आया है। मेरे जैसा व्यक्ति उसकी व्याख्या नहीं कर सकता। जितनी देर तक मैं उन पापों का वर्णन करूँगा उतनी देर तक उन बुराईयों का मेरे दिमाग में चिन्तन चलेगा और वे मेरी जुबान से निकलेंगी, इसलिए मैं नहीं चाहता कि उन पापों का वर्णन कर अपनी जिह्वा को दूषित करूँ। मेरी वाणी भगवान् के गुण गाने के लिए है, पापों का वर्णन करने के लिए नहीं और इसके बदले में फल क्या मिलता है, यह भी आप जानते हो। पाप का फल बुरा होता है इसलिए इस ओर हम अधिक ध्यान नहीं देते। किस पाप से क्या फल मिलता है, जिसने यह जानना हो वह शिव पुराण पढ़ ले, मैं उसकी व्याख्या नहीं करूँगा। इससे अच्छा है कि मैं भगवान् की महिमा का गान करूँ जिससे आप लोग बुराईयों से बचूँ, यह मैं जानता हूँ। आप मेरे से पूछ सकते हैं कि यदि इतनी बुरी बात है तो वेदव्यास जी ने इसे ग्रन्थ में क्यों लिखा? इसलिए लिखा है कि मनुष्य जब बुराईयों के परिणाम को जानता हो तो उससे बचने का प्रयास करता है। किन्तु इतनी बात तो आप सभी जानते हो न कि इस दुनिया में झूठ बोलना, हिंसा करना, दूसरे के अधिकार को छीनना, दूसरे की चोरी करना, आवश्यकता से अधिक संग्रह करना पाप है। यह सभी जानते हैं, इसको सिखाने की कोई ज़रूरत नहीं, पर अपनी रजोगुणी वृत्ति, अपनी वासना इतनी प्रबल होती है कि जानते हुए भी हम पापों से

बचने की कोशिश नहीं करते। हम यह सोचते हैं कि कौन देख रहा है, यदि आज का काम निकल गया तो कल जो होगा, देखा जायेगा; इसी भरोसे पर हम अनर्थ कर बैठते हैं। ऐसा करने से जब परिणाम भोगना पड़ता है तो रोने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता।

आप लोगों को महाभारत की एक कथा सुनाऊँ। दुर्योधन की माँ का नाम गांधारी था, उसके पिता का नाम धृतराष्ट्र था। दुर्योधन १०० भाई थे और एक बहन जिसका नाम दुशला था। बहन का विवाह जयद्रथ के साथ हुआ। जयद्रथ दुर्योधन का बहनोई था। जयद्रथ के सहित १०० भाई महाभारत के युद्ध में मारे गए। कहने का अभिप्राय न तो लड़की का सुख रहा और न बहुओं का ही। सारा परिवार नष्ट हो गया। गान्धारी अपने पुत्रों के वियोग में व्यथित होकर विलाप कर रही थी। माँ को दुःखी देखकर भगवान् कृष्ण को दया आयी, वे माँ के पास पहुँचे। गान्धारी बड़ी सती स्त्री थी लेकिन मैं यही आप लोगों को समझा रहा हूँ कि बड़े से बड़े सती धर्म का पालन करने वाली देवियाँ मोह और ममता में पड़कर अपनी संतानों को धर्म के मार्ग पर नहीं ले जा पाती। यदि गान्धारी चाहती तो दुर्योधन राक्षस वा दुष्ट न बनता। महाभारत में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि धृतराष्ट्र वा गान्धारी ने अपने पुत्र को कभी सन्मार्ग पर चलने की सीख दी हो या कभी उसे यह समझाया हो कि बेटा तू जो कर रहा है वह पाप है, ऐसा नहीं करना चाहिए। जब गान्धारी का विवाह हुआ तो उसका पति अन्धा था। उसने निश्चय किया कि यदि मेरा पति अन्धा है तो मैं आँखें खोलकर क्या करूँगी। गान्धारी ने उसी दिन से अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली और जीवन पर्यन्त अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रही। मेरा पति अन्धा है तो मैं आँख वाली होकर नहीं रह सकती। इतनी उसकी आस्था थी, वह पतिव्रता थी। अन्त में दुर्योधन की रक्षा के लिए उसने एक क्षण के लिए आँखें खोली थी। जब दुर्योधन के सारे भाई मारे गये, अकेला दुर्योधन रह गया तो उसे पता चला कि मेरा एक पुत्र रह गया है। उसने दुर्योधन को बुलाया और कहा, बेटा! अब तुम अकेले बचे हो, मेरे लिए तुम अकेले ही बहुत हो, तुम नंगे होकर एक बार मेरे सामने आ जाओ, कोई शक्ति तुम्हें नहीं मार सकती। दुर्योधन ने निश्चय किया कि माँ की आज्ञा का पालन करूँगा। नंगा होकर जब

माँ के सामने जाने लगा तो भगवान् कृष्ण आ गये। प्रभु पूछने लगे–दुर्योधन! इस समय तू कहाँ जा रहा है? उन्हें देखते ही उसे लज्जा आ गयी। उसने कहा–मेरी माँ ने मुझे बुलाया है। भगवान् कहने लगे–तुम इतने बड़े हो गये, माँ के सामने नंगे होकर जा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आएगी? पुत्र माँ के उदर से पैदा होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन वही पुत्र जब बड़ा हो जाता है तो उस अवस्था में लज्जा आनी ही चाहिए, वही पुत्र माँ की गोद में नंगा हो कर नहीं बैठ सकता। माँ की आज्ञा है तो तुम ऐसा करो कि माँ की आज्ञा भी रह जाये और तुम्हारी बात भी रह जाये, तुम पुष्प से अपने उस अंग को ढक लो जो लज्जा से सम्बन्धित है। दुर्योधन को यह बात समझ में आ गयी, उसने वही किया जो भगवान् कृष्ण ने बताया था। उसने फूलों का जाल सा बुनकर शरीर के आगे–पीछे कर लिया। जब दुर्योधन माँ के सामने गया तो माँ ने अपनी आँखों की पट्टी खोल दी। उसके नेत्रों से तपस्या का तेज निकला, उस तेज ने दुर्योधन के समस्त अंगों को वज्र बना दिया। माँ ने जब ध्यान से देखा तो कहा–अरे दुर्योधन! तुमने यह क्या किया? कमर पर क्या बाँध रखा है? दुर्योधन ने कहा–माँ मैं बड़ा हो गया हूँ, तुम्हारे पास संकोचवश पूर्ण रूप से नग्न नहीं आ सका। माँ ने कहा, अरे मूर्ख, माँ के लिए बच्चा तो बच्चा ही होता है चाहे वह सौ वर्ष का हो जाये। तुम्हें यह किसने कहा? दुर्योधन बोला–माँ! कृष्ण ने मुझे यह समझाया है। माँ कहती है–बेटा! वासुदेव के नियम से कोई बच नहीं सका। आज तुम्हारे शरीर को वज्र बनाने के लिए इतने वर्षों की तपस्या का परिणाम नेत्र खोलकर तुम्हें दे रही हूँ किन्तु दुर्भाग्य तुम्हारे साथ है, मैं क्या कर सकती हूँ? जितना शरीर मैंने देखा, वह वज्र का हो गया और जितना शरीर तुमने ढ़का था उतना अंग बाकी रह गया। परिणाम क्या हुआ? उसी अंग के ऊपर भीम ने गदा मारकर दुर्योधन की जाँघ तोड़ दी, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मैं आप लोगों को बता रहा था कि कभी–कभी ममता में पड़कर बड़े–बड़े तपस्वी माता–पिता भी पुत्र को कुमार्ग से हटा नहीं सकते जैसे गान्धारी और धृतराष्ट्र।

मैं आप लोगों को कर्म की व्याख्या और उसका परिणाम क्या होता है, इसके विषय में बता रहा था। जब गान्धारी के १०१ पुत्रों की मृत्यु हो जाती है, वह व्यथित होकर रोने लगती है और

विलाप करती है। भगवान् कृष्ण को दया आ जाती है और वह गान्धारी को समझाते हैं कि माँ! यह तो नाशवान जगत् है, यहाँ यही होता है, तुम्हारे पुत्र तो भाग्यशाली थे। वीरगति को प्राप्त हुए हैं, उनके लिए व्यथित होना और रोना उचित नहीं है। गान्धारी जब कृष्ण की ओर देखती है तो उसके धैर्य का बाँध टूट जाता है और कहती है—वासुदेव! तुम अब भी मेरे जख्म पर नमक छिड़कने आये हो। जिसके १०१ पुत्र मरे हों, उस माँ से पूछ उसके ऊपर क्या बीतती है। भगवान् कहते हैं, अरे देवी! तुम्हें इतना पता था कि तुम्हारे बच्चे कुमार्ग पर चल रहे हैं, यह अधर्म का मार्ग है। तुम्हें यह पता नहीं है कि पाप का परिणाम दुःख और नाश होता है। गान्धारी कहती है—कृष्ण! मैं सब कुछ जानती हूँ। भगवान् कहते हैं कि अगर तू इतना जानती थी तो अपने पुत्रों को पहले क्यों नहीं समझाया। उसने कहा—यह मेरी ममता है, ममता ने मेरी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया था। भगवान् कहते हैं तो आज ही उस ममता से मुक्त हो जाओ, अब भी भला है। वह कहती है—नहीं, मैं अपने पुत्रों की ममता से मुक्त नहीं हो सकती। भगवान् समझाते हुए अन्त में हारकर चले जाते हैं।

मायवी की माया देखिये—थोड़ी देर बाद गान्धारी को भूख लगती है, भूख इतनी तीव्र लगती है कि उससे रहा नहीं जाता। बच्चों की लाश पकड़कर अभी विलाप करती हुई रो रही थी, अब रणक्षेत्र के मैदान में जहाँ लाशें पड़ी हैं वहाँ चारों ओर खाने के लिए देख रही है, भूख के कारण जान जा रही है, खाने को कुछ दिखाई नहीं दे रहा। सामने एक बेर का पेड़ देखा, उसमें एक बेर का फल लग़ा हुआ था। उस पेड़ के नीचे चली गई, जब फल तोड़ने को हाथ बढ़ाया तो पेड़ ऊँचा था। उसने प्रयत्न किया परन्तु कोई आश्रय दिखाई नहीं दिया तो एक पुत्र की लाश खींचकर ले आई, नीचे रखकर उस पर खड़ी हो गई, बेर नहीं तोड़ा गया, फल अभी ऊँचा था। पुनः दूसरे पुत्र की लाश खींचकर पहली लाश के ऊपर रख दी, उस पर खड़ी होकर बेर तोड़ने लगी, तब भी हाथ नहीं पहुँचा। ऐसे ही एक–एक करके कई पुत्रों की लाशें खींचकर एक के ऊपर एक रखती रही, जहाँ तक उसकी शक्ति थी। बाद में हताश होकर गिर गई। पुनः उसे थोड़ी सी चाह हुई कि शायद अब मिल जाये क्योंकि अब तो फल थोड़ी दूर ही रह गया है। पुत्र की

और लाश लाकर उन लाशों पर रखा। उसके पश्चात् फल की ओर ज्यों ही हाथ बढ़ाया कि भगवान् कृष्ण प्रकट हो गये। प्रभु बोले–अरे गान्धारी! यह क्या कर रही हो? गान्धारी ने कृष्ण की ओर देखा, लज्जित हो गई। कहने लगी–कृष्ण भूख लगी है। भगवान् ने कहा अरे पगली! तुझे भूख लगी है, तुम देख रही हो कहाँ से बेर तोड़ रही हो। यह तुम्हारें उन्हीं पुत्रों की लाशें हैं जिनके ऊपर खड़ी होकर बेर तोड़ रही हो। गान्धारी कहती है, कृष्ण! अब मैं समझी, तुम मुझे यही शिक्षा देने आए हो। गान्धारी कहती है–

वासुदेव! जरा कष्टं, कष्टं निर्धन जीवनम्।

हे वासुदेव! वृद्धावस्था धनी–निर्धन, अमीर–गरीब सभी के लिए बड़ी कष्टदायक होती है। जब तक यौवनावस्था होती है तब तक व्यक्ति सोचता भी नहीं कि मैं कभी बूढ़ा भी हूँगा, उसे मृत्यु कभी स्वप्न में भी याद नहीं आती। वृद्धावस्था का जब थोड़ा सा लक्षण आता है तो मृत्यु प्रतिपल दिखाई देने लगती है, न जाने कब श्वास चला जाये? वृद्धावस्था इतनी दुःखद है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है परन्तु वृद्धावस्था से भी अधिक दुःखद दरिद्रता का जीवन है। निर्धन होना वा दरिद्रता वृद्धावस्था से भी अधिक पीड़ाप्रद है। आगे गान्धारी कहती है कि निर्धनता से भी बड़ा एक और दुःख है–**"पुत्रशोक महाकष्टं"** वह पुत्र का शोक है, पुत्रशोक से बढ़कर दुनिया में और कोई कष्ट नहीं हो सकता। गान्धारी कह रही है, 'हे केशव! मैंने अनुभव किया है कि पुत्र शोक से भी यदि कोई बड़ा दुःख है तो–**"कष्टात् कष्टतरं क्षुधा"** पुत्र शोक को भी शान्त कर देने वाली और उससे भी अधिक पीड़ा देने वाली क्षुधा है। हम रोते हैं, चीखते हैं, प्रिय से प्रिय मर जाता है तो दो–चार दिन शोक भी मना लेते हैं, उसके बाद में फिर वही खाना–पीना, जीवन का वही क्रम शुरू हो जाता है।

इस कहानी से आप. लोग समझ गये होंगे कि हमारे जीवन की स्थिति किस पर अवलम्बित है। जब तक हमारा प्रारब्ध बचा है तब तक घोर विपत्ति में भी हमारे प्राण नहीं जाते। हम चाहते हुए भी नहीं मर पाते, जीना पड़ता है, दुःखी होना पड़ता है, इसलिए व्यक्ति यदि इन समस्त दुःखों के कारण को याद रखे तो उससे बच सकता है। शास्त्रकारों ने इसीलिए दुःख का वर्णन किया है और उसके परिणाम को सामने दिखाया है, बताया है। इतिहास इसके

लिए साक्षी है।

अब आप लोग प्रभु की महिमा का गान सुनिये। दूसरा प्रकरण है–भगवान् के विविध अवतारों का वर्णन; जैसे भगवान् विष्णु के २४ अवतार हैं ऐसे ही भगवान् शिव के भी अनेकों अवतार हैं। हमारे सनातन धर्म में पँच देव उपासना की प्रतिष्ठा है, उसमें भी तीन प्रधान हैं। गणेश और सूर्य को यदि हम नाम और रूप स्वीकार कर लें तो तत्त्वात्मक तीन देवता रह जाते हैं–विष्णु, शिव और शक्ति। नाम और रूप जिसके आश्रित हैं, वह तत्व हमारे शरीर में प्रेम, ज्ञान और शक्ति, इन तीन रूपों में है। इन तीन तत्त्वों के आश्रित ही नाम और रूप हैं। सनातन धर्म में हम लोग जो पँचदेव उपासना करते हैं, वह–गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति, यही पाँच देवता हैं,इसलिए हमारे मन्दिर में पंचायतन अर्थात् पाँच देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है। इन पाँच देवताओं में गणेश नाम है, सूर्य रूप है, विष्णु प्रेम है, शिव ज्ञान है और शक्ति दुर्गा है। नाम और रूप को यदि आप काल्पनिक या स्वीकार किया हुआ मान लें तो तत्त्व केवल तीन रूप में रह जाता है। वह तत्त्व हमारे व्यक्तित्व के रूप में प्रकट है, उसे प्रेम, ज्ञान और शक्ति कहेंगे। ये तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। शक्ति प्रेम और ज्ञान दोनों के साथ है। प्रेम माने भाव। ज्ञान और भाव होने से हम कर्म में प्रवृत्त होते हैं। हमारी क्रिया हमारे भाव की, हमारे ज्ञान की अभिव्यक्ति है अर्थात् जैसी हमारी भावना होती है वैसे ही हम कर्म करते हैं। कर्म हमारे भाव और ज्ञान का अंश मात्र है। जितना आप जानते हो उतना आप क्रिया में नहीं ला सकते। दुनिया का कोई भी व्यक्ति पूरे ज्ञान को पूर्ण रूप से क्रिया में परिणित नहीं कर सकता। हृदय के भाव को आप पूर्ण रूप से क्रिया में परिणित नहीं कर सकते। आपकी तो भावना है क़ि दुनिया में कोई व्यक्ति भी दुःखी न हो परन्तु आप ऐसा नहीं कर सकते।

प्रह्लाद के समक्ष नरसिंह भगवान् प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु को मारकर जब प्रह्लाद को गोद में लेकर प्रभु प्यार करने लगे तो उन्होंने कहा तू मेरे से कुछ माँग ले। प्रह्लाद ने कहा–प्रभो! आपको पाकर मैं सब कुछ पा गया, अब क्या माँगू? भगवान् कहते हैं कि यदि तू नही मांगेगा तो मुझे संतोष नहीं होगा, मेरे संतोष के लिए मेरे से कुछ माँग ले। प्रह्लाद ने कहा–यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं

तो मुझे वरदान दीजिये कि दुनिया में जितने भी जीव हैं उन सबका दुःख मेरे को मिल जाये, दुनिया में कोई भी दुःखी न रहे। भगवान् ने हँसकर कहा—अरे अबोध बालक! दुनिया में कभी ऐसा नहीं हो सकता, असंभव है क्योंकि जीव जो कर्म करता है, उसका फल उसे ही भोगना पड़ता है। कर्म—फल भोग में जो दुःख है, वह उसकी चित्त की शुद्धि का साधन है। जैसे अग्नि में डालकर सोना तपाया जाता है जिससे उसका मल दूर हो जाता है, उसी प्रकार संताप की अग्नि में पड़कर मनुष्य का चित्त शुद्ध वा निर्मल हो जाता है; इसलिए इसके अतिरिक्त तू और वरदान माँग ले। प्रह्लाद कहता है—प्रभो! फिर मैं यही कहूँगा कि मुझे कुछ नहीं चाहिये। प्रभु ने कहा—नहीं, मुझे संतोष नहीं हो रहा है, मेरे संतोष के लिए तू माँग ले। प्रह्लाद कहता है—प्रभो! यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हो तो मुझे यही वरदान दो कि मैं आपसे कभी कुछ न माँगू। यह भक्त का जीवन है। सही में भक्त भगवान् से कभी कुछ नहीं माँगता, यही भक्ति है।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि जितना ज्ञान, शक्ति और भाव आपके पास है, उसको पूर्ण रूप से क्रिया में परिणत नहीं कर सकते। प्रह्लाद का भाव था कि दुनिया का दुःख वह भोग ले और सभी सुखी हो जायें लेकिन भगवान् ने कहा, यह असंभव है। जितने अंश में आपका ज्ञान क्रिया में परिणत हो जाये उतना ही अच्छा है। आपके व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं अस्तित्व में तीन तत्त्व कारण हैं—ज्ञान, प्रेम और शक्ति। इन तीन तत्त्वों को शिव, विष्णु और दुर्गा कहते हैं। ज्ञान का नाम शिव, भाव वा प्रेम का नाम विष्णु और शक्ति का नाम दुर्गा है। इसलिए यद्यपि हमारे यहाँ पंचदेव उपासना की पद्धति है लेकिन उसमें भी शिव, विष्णु और शक्ति तीन प्रधान हैं, इन्हीं के अनेकों अवतार होते हैं। जैसे विष्णु के २४ अवतार माने जाते हैं। उन चौबीस अवतारों में १० अवतार प्रधान माने जाते हैं। उनमें मैं किसी को छोटा—बड़ा नहीं मानता, मेरी दृष्टि से सभी प्रधान हैं। चौबीस अवतारों में राम और कृष्ण दो पूर्णावतार हैं और शेष अंशावतार हैं। अंशावतार और पूर्णावतार क्या हैं? परमात्मा की त्रिविध शक्तियों—(ज्ञान प्रेम और शक्ति) में जहाँ अंश मात्र अर्थात एक या दो तत्त्व प्रकट हों, उसे अंशावतार कहते हैं और जहाँ तीनों पूर्ण रूप से प्रकट हो जायें, उसे पूर्णावतार कहते हैं। अग्नि में

लाईट, हीट और फोर्स तीन गुण हैं इसलिए वेद में परमात्मा की उपमा अग्नि से दी गई है। हमारे यहाँ सनातन धर्म वा हिन्दू धर्म का मूल आधार वेद है और वेदों में मूल ऋग्वेद है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम मन्त्र का प्रथम शब्द है 'अग्नि'। इसलिए हिन्दू धर्म का मूल स्रोत 'अग्नि' है।

ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।

(ऋग्वेद १/१–१)

यह ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र है। अग्नि शब्द ही आदि शब्द माना जाता है। वेद के प्रारम्भ में पहले ॐ का उच्चारण करते हैं, ॐ के पश्चात् अग्नि का। अग्नि परमात्मा का प्रतीक है। 'अग्नि अग्रणि भवति'। जो अग्रिम एवं सबसे प्रथम है, जिससे पहले और कुछ नहीं था, उसे अग्नि कहते हैं। अग्नि में तीन तत्त्व–प्रकाश, उष्णता और शक्ति है। जैसे यह हीटर जल रहा है। इसमें उष्णता हैं और शक्ति भी है। हीट के द्वारा उष्णता मिल रही है जिससे हम सब सक्रिय हैं। उष्णता के अभाव में शीत में हाथ–पांव हिलाना कठिन हो जाये लेकिन प्रकाश यहाँ नहीं है। अग्नि जब ईधन के माध्यम से प्रज्जवलित होता है तो वहाँ प्रकाश, शक्ति और उष्णता भी दिखाई देती है। जहाँ तीन तत्त्व प्रकट हैं वह पूर्णवतार और जहाँ एक तत्त्व प्रकट है वह अंशावतार है। जहाँ एक या दो तत्त्व प्रकट होते हैं वहाँ शेष तत्त्व गायब नहीं होते; वे पीछे होते हैं यानी कम मात्रा में होते हैं। जैसे परशुराम अंशावतार हैं; परशुराम में केवल क्रिया शक्ति है, वहाँ प्रेम के लिए स्थान नहीं है, उनका स्वरूप देखते ही लोग काँप जाते हैं। भगवान् कपिल ने महाराज सगर के ६० हज़ार पुत्रों को केवल एक ही दृष्टि में नष्ट कर दिया लेकिन वहाँ पूर्ण रूप से प्रेम का आविर्भाव नहीं है। इसी प्रकार से विष्णु के सभी अवतारों में किसी अवतार में प्रेम है या ज्ञान है अथवा किसी में शक्ति है किन्तु राम और कृष्ण, इन दोनों रूपो में आप पूर्ण प्रेम, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शक्ति देखेंगे। पुराणों में राम को पूर्णवतार और कृष्ण को परिपूर्णावतार कहा गया है। राम को पूर्णावतार क्यों कहा गया? क्योंकि राम के यहाँ प्रेम मर्यादित है और कृष्ण के यहाँ मर्यादा नाम की कोई वस्तु नहीं। दिव्यता में मर्यादा कहाँ? इस कारण कृष्ण का जीवन परिपूर्ण जीवन और राम का जीवन पूर्ण जीवन माना जाता है। दोनों को

हमारे यहाँ उपास्य कहा गया है, दोनों ही विष्णु के अवतार हैं। भारत में जितने सम्प्रदाय हैं, ये सभी किसी न किसी अवतार से सम्बन्धित हैं। जैन सम्प्रदाय ऋषभदेव अवतार से सम्बन्धित है। भगवान् ऋषभदेव ज्ञानावतार हैं। बौद्ध सम्प्रदाय भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित है, यह भगवान् विष्णु का बौद्धावतार है। प्राणी मात्र में उनकी आत्मीयता की भावना थी इसलिए वे प्रेमावतार हैं। इसी रूप से रामायत सम्प्रदाय और कृष्णायत सम्प्रदाय अवतारों से सम्बन्धित हैं; सभी विष्णु के अवतार हैं। ऐसे ही भगवान् शिव तथा भगवती दुर्गा के भी अनेकों अवतार हैं। अवतरण तो तत्त्व में ही होगा नाम में अवतरण क्या होगा? नाम का अवतरण तो अक्षर रूप में होगा; इसलिए गणेश जी को ज्ञान का देवता और ओंकार को ज्ञान का रूप मानते हैं। समस्त अक्षरों की उत्त्पत्ति इसी से हुई है। इसी रूप से रूप में भी अवतरण की कोई प्रक्रिया नहीं हो सकती, सूर्य और गणेश में कोई भी अवतरण की प्रक्रिया नहीं है। जितने अवतार हैं, विष्णु, शिव और दुर्गा, तीनों शक्तियों के अवतार हैं जिनकी सनातन धर्मी उपासना करते हैं। जब कोई कष्ट–दुःख आता है तो हम इन्हीं की शरण लेते हैं। इस कलियुग में आज भी समय–समय पर लोगों ने दिव्य शक्तियों का आविर्भाव प्रत्यक्ष रूप में अनुभव किया और आगे भी करते रहेंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

भगवान् शिव के अनेकों अवतार हैं। जिसकी कथा आज पढ़ी है उसमें से मैं आप लोगों को एक अवतार की कथा सुना रहा हूँ। वह भगवान् शिव का हनुमदावतार है जैसे भगवान् विष्णु के अंशावतार और पूर्णावतार हुए हैं ऐसे ही भगवान् शिव के भी अनेकों अंशावतार और पूर्णवतार हैं। यद्यपि हनुमान भक्त रूप में ही अवतरित हुए हैं किन्तु हैं तो ईश्वर के पूर्णावतार। साक्षात् शंकर स्वयं हनुमान रूप में प्रकट हुए हैं, हनुमान चालीसा आप लोग पढ़ते हैं 'शंकर स्वयं केसरी नन्दन।' शंकर सुवन शब्द वहाँ पर नहीं है, वह अशुद्ध पाठ है। शंकर स्वयं केसरी के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं। इससे सम्बन्धित कथा है कि जब रावणादि दैत्यों से पीड़ित धरती भगवान् की शरण में जाती है तो उस समय भगवान् देवताओं को वरदान देते हैं कि तुम लोग दुःखी मत होओ, मैं दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतरित हूँगा। सभी देवता वानर, रीछ के रूप में प्रकट हों और मैं स्वयं मानव रूप में अवतरित होकर रावण का नाश करूँगा। जब

समस्त देवता अपने–अपने स्थान पर चले जाते हैं, तो वहाँ पर ब्रह्मा स्वयं अपने अंश से जाम्बवन्त के रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् शंकर इस समय विचार में हैं कि क्या किया जाये। भगवती पार्वती पूछती हैं कि प्रभो! आप चिंतित हैं। प्रभु बोले, हाँ देवी! चिन्ता के दो कारण हैं–एक ओर मेरा अनन्य भक्त रावण तथा दूसरी ओर देवताओं की रक्षा का भार जिसके लिए भगवान् विष्णु अवतार लेने जा रहे हैं। मैं मध्य में हूँ, क्या कर सकता हूँ? पार्वती ने कहा–प्रभो! रावण आपका इतना अनन्य भक्त है तो उसे आप सद्‌बुद्धि दे दें। भगवान् कहते हैं नहीं, वह सीमा पार हो चुकी है। सद्‌बुद्धि से उसका उद्धार नहीं होगा। फिर क्या करना है? कहा, मैं यह भी जानता हूँ कि बिना मेरे सहयोग के रावण का नाश भी नहीं हो सकता। वह मेरा अनन्य भक्त भी है। उसी समय भगवती उन्हें याद दिलाती है कि प्रभो! आपके ११ रूपों में से १० रूपों की रावण ने अपने दस मस्तक काटकर आराधना की है किन्तु आपके एक रूप का उसने तिरस्कार वा अपमान किया है और वह है आपका नन्दीश्वर का रूप। ११ रुद्रों में नन्दीश्वर भी एक रुद्र है इसलिए यदि अपने इस अंश से अवतरित होकर आप राम की सहायता करें तो यह अनुचित नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि भक्त के उद्धार के लिए यदि आप कोई काम करते हैं तो उसमें आपकी करुणा ही कारण है। भगवान् कहते हैं–बहुत अच्छा। भगवान् शंकर स्वयं अवतार लेने की इच्छा से विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि भगवन्! जो भस्मासुर का नाश करने के लिए आपने मोहिनी रूप धारण किया था, वह बड़ा अद्‌भुत रूप था, वह मुझे दिखा दीजिये। भगवान् विष्णु मुस्कराते हैं। शिवपुराण में भस्मासुर की कथा आई है, आप लोग जानते हैं।

भस्मासुर एक राक्षस था, उसने भगवान् शंकर की घोर तपस्या की। तपस्या करने के पश्चात् भगवान् शिव से प्रार्थना करता है कि प्रभो! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मुझे अस्त्र–शस्त्र न उठाना पड़े, मैं जिसके सिर पर हाथ रखूँ वह अपने आप भस्म हो जाये। भगवान् शंकर कहते हैं एवमस्तु। उसने कहा–प्रभो! आपने मुझे वरदान तो दे दिया परन्तु आपका वरदान सही है, इसका क्या प्रमाण? उन्होंने कहा–परीक्षा कर लो। भस्मासुर ने पूछा–परीक्षा करने कहाँ जाऊँ? यहाँ आपके अतिरिक्त कोई है नहीं। भगवान् शंकर सोचते हैं अब आफत आई। भगवान् वहाँ से चल देते हैं। लीला बिहारी की लीला

देखिये। आगे–आगे शिव पीछे–पीछे भस्मासुर आपना हाथ बढ़ाये हुए। भगवान् विष्णु ने देखा तो वह नारी का मोहिनी रूप धारणकर सामने आ गये। भस्मासुर ने यह क्यों किया था, जानते हो? इसलिए कि भगवान् शंकर जब भस्मासुर के सामने प्रकट हुए तो उनके बगल में भगवती पार्वती भी थीं। पार्वती को देखते ही वह मोहित हो गया। महामाया ने सोचा इसके ऐसा वरदान मांगने पर शंकर ने तो दे दिया किन्तु यह तो समस्त संसार का नाश करेगा, इसलिए इसको मोह में डाल देना चाहिये। भगवती की छवि देखकर जब वह मोहित हो गया त्रो सोचने लगा कि यदि इस वरदान से मैं इसे मार दूँ तो यह देवी हमें प्राप्त हो जायेगी। इस धारणा से भस्मासुर भगवान् शंकर के पीछे लगा किन्तु भगवान् विष्णु मोहिनी का रूप धारण करके पार्वती के वेष में सामने आ गये। उन्हें देखकर वह वहीं खड़ा हो गया। पार्वती रूप में भगवान् विष्णु ने पूछा–तुम उधर क्यों दौड़ रहे हो? वह बोला–हे देवी! तुम्हें ही प्राप्त करने के लिए। मोहनी रूपधारी भगवती कहती हैं–भस्मासुर तुम्हें पता है, यह नंगा रहने वाला, मसान का निवासी, मुंडों की माला पहनने वाला, सर्पों को गले में धारण करने वाला है, इतने पर भी मैं कुवेषधारी के साथ रहती हूँ। क्यों रहती हूँ, तुम जानते हो? उसमें सबसे बड़ा एक गुण है, यदि वह गुण तुम्हारे पास हो तो मैं तुम्हारे पास रह जाऊँगी। भस्मासुर कहता है, कौन सा ऐसा गुण है जो मैं अपने में पैदा नहीं कर सकता? भगवती बोली, यह तांडव नृत्य करता है, मुझे इस नृत्य से बहुत प्यार है। तुम यदि तांडव नृत्य करके बताओ तो मैं तुम्हारे पास रह जाऊँगी। वह कहता है–मुझे पता नहीं, तांडव नृत्य कैसे करते हैं? देवी कहती है–मैं जानती हूँ, तुम्हें करके बताती हूँ। भगवती तांडव नृत्य में उसे लगा देती हैं। नृत्य करते–करते वह ता–थै–थै के बाद ज्योंही अपना हाथ अपने सिर पर लाता है, वहीं भस्म हो जाता है।

भगवान् शिव मोहिनी रूप को दूर खड़े देख रहे हैं। उसी रूप को देखने के लिए प्रभु से प्रार्थना की थी कि आप वह रूप मुझे दिखा दो। उसका परिणाम क्या हुआ? भगवान् ने उनकी लीला समझकर और भविष्य के कार्य को समझकर वहाँ मोहिनी रूप धारण किया। भगवान् शिव ने स्वयं सप्त ऋषियों से कह रखा था कि जिस समय मेरा तेज पृथ्वी पर गिरे तो तुम लोग उसे पृथ्वी पर

गिरने नहीं देना, संभाल लेना। तेज का स्खलन ऐसे हो नहीं सकता, केवल विष्णु के अतिरिक्त प्रभु को विमोहित करने वाली कोई शक्ति नहीं है। विष्णु यदि मोहिनी रूप धारण करके मेरे सामने आ गये तो उस समय मेरा तेज स्खलित हो सकता है और मेरे उस तेज से ही मेरा अंश प्रकट होगा, अन्य दूसरा रास्ता नहीं है। भगवान् के इस आदेशानुसार सप्त ऋषि पहले ही वहाँ मौजूद थे। जिस समय मोहिनी रूप को देखकर भगवान् के शरीर का मंथन होता है तो उनका तेज गिरते ही सप्त ऋषि उसे ग्रहण कर लेते हैं। पत्ते में उस तेज को ले लेते हैं। गौतम ऋषि का नाम आपने सुना होगा, अहल्या जिनकी पत्नी थी। जिस समय गौतम ऋषि ने मिथ्या भाषण के नाते अहल्या को श्राप दिया था कि तुम जाकर शिला हो जाओ, उस समय उनकी अंजना नाम की छोटी लड़की थी। अंजना ने भी कोई उत्तर नहीं दिया था, उस समय वह बालिका थी, वह भी ऋषि के कोप का भाजन बनी। अंजना घर से चली गई और वह तपस्या में लग गई। भगवान् शंकर ने ऋषियों को प्रेरित किया कि मेरा यह तेज अंजना को प्रदान कीजिये। गौतम की लड़की अंजना के कर्ण मार्ग से भगवान् शंकर का तेज स्थापित किया गया और तेज से भगवान् मारुति का जन्म हुआ। हनुमान की माँ अंजना गौतम ऋषि की कन्या है, इस प्रकार से भगवान् शंकर हनुमान रूप में अवतरित हुए। अंजना जिस वन में जाकर तपस्या करने लगी थी, वहाँ के अधिपति केसरी थे और वे देवगुरु बृहस्पति के पुत्र थे जिसकी वानर सेना थी। अंजना को उन्होंने पत्नी रूप में वरण किया था। इससे आप लोग समझ गये होंगे, जिसे हम वानर कहते हैं, वानर एक मनुष्यों की जाति थी, वानर जो पूँछ वाले दिखाई देते हैं, वे नहीं। गौतम ऋषि की कन्या अंजना, उसका जो पुत्र होगा, वह कौन होगा? वह वानर नहीं मानव होगा। फिर हनुमान जी को वानर रूप में क्यों मानते हैं? रावण ने एक वरदान माँगा था–

हम काहू के मरहिं न मारे।
बानर मनुज जाति दुइ बारें।।

(रा॰ १/१७७–४)

'मैं किसी के मारने से न मरूँ, मनुष्य और वानर को छोड़कर और कोई मुझे न मारे।' रावण के उस वरदान के अनुसार

जैसे परमात्मा स्वयं राम रूप में प्रकट हुआ, ऐसे ही देवताओं ने, दिव्य शक्तियों ने जिस समय लंका पर चढ़ाई की उस समय अपनी आकृति वानर की बनाई, क्योंकि राक्षस अनेक रूप धारण करते थे किन्तु वे वानर रूप धारण नहीं करते थे; वानर को वे हेय समझते थे। वाल्मीकि रामायण में आता है कि जब लंका में युद्ध हो रहा था तो भगवान् ने अपनी सेना को बुलाकर कहा कि तुम सभी वानर रूप में रहना, मनुष्य रूप में यहाँ पर कोई न लड़े। मनुष्य रूप में केवल हम सात रहेंगे, आठवां कोई नहीं होगा, यदि कोई आठवां होगा तो आप यह समझना कि वह मनुष्य रूप में राक्षस है। वे सात कौन थे? दोनों भाई राम–लक्ष्मण, तीसरा विभीषण और चार विभीषण के मन्त्री थे। ये सात मनुष्य रूप में और शेष वानर और रीछ रूप में थे। जब लंका की लड़ाई समाप्त हो गई, उसके बाद वे वानर रूप में नहीं रहे। वानर जाति के थे, वानर जाति भी है और एक रूप भी है, वानर जाति की ध्वजा का चिन्ह वानर होता था और वानर जाति वन में बसती थी इसलिए उन्हें वानर कहते थे। "वनः वसति इति वानरः।" आप रामायण में पढेंगे, तुलसीदास जी ने लिखा है कि जब लंका का नाश करके राम अयोध्या में आते हैं तो सभी वानर–

हनुमदादि सब बानर बीरा।
धरे मनोहर मनुज सरीरा।।

(रा० ७/८–२)

कैसा मनुष्य रूप? मन को हरने वाला सुन्दर मनुष्य रूप था। रामायण में तुलसीदास जी ने लिखा है कि जो रूप हम पूजते हैं लंका में यही रूप था। इसी रूप में भगवान् मारुति ने लंका को भस्म किया और दुष्टों का संहार किया। हम जब उनके संकट मोचन, दुष्ट दलन रूप की पूजा करते हैं तो उसी आकृति को हम ध्यान में लाते हैं, जिस रूप को धारण कर उन्होंने यह कार्य किया था। आप हनुमान चालीसा पढ़ते हैं–

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा।
बिकट रूप धरि लंक जरावा।।
भीम रूप धरि असुर संहारे।
रामचन्द्र के काज संवारे।।

भगवान् राम का कार्य करने के लिए उस समय भगवान्

मारुति ने विकट रूप धारण किया। मर्कट रूप को विकट रूप कहते हैं, यह उनका सही रूप नहीं है, उनका सही रूप तो–'धरे मनोहर मनुज सरीरा' है। भगवान् राम को जब हनुमान प्रथम बार मिले हैं तो उस समय उनका कौन सा रूप था?

धरि बटु रूप देखु तैं जाई।
कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।।
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी।
कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी।।

(रा॰ ४/१–४,६,७,८)

हनुमान जी विप्र रूप में थे। वाल्मीकि रामायण में आता है जिस समय हनुमान जी जाकर प्रश्न करते हैं तो पहले राम लक्ष्मण की ओर देखते हैं। राम कहते हैं–लक्ष्मण! यह ब्रह्मचारी ब्राह्मण कोई सामान्य नहीं लग रहा। जिसने चारों वेदों का अध्ययन किया हो, जो नीति शास्त्र का पंडित हो, जिसको समस्त व्याकरण और निरुक्त का बोध हो, वही विद्वान् ऐसी भाषा बोल सकता है, जैसा यह ब्रह्मचारी बोल रहा है। भगवान् मारुति के शिक्षा गुरु भगवान् सूर्य हैं। सूर्य से उन्होंने सूर्य पुत्र सुग्रीव की सहायता का वचन दिया था, इसलिए वह सुग्रीव की रक्षा के लिए उनके साथ रहते थे।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि हनुमान वानर नहीं थे। वे तो मनुष्य रूप में अवतरित दिव्य विभूति हैं। वन में रहने के कारण उनकी संज्ञा वानर थी। प्राचीन काल में गीध, वानर, नाग, ये सब भारत की जातियाँ थी। नाग एक जाति थी जो आज भी भारत में है, इसी प्रकार आज भी भारत में गीध, गरुड़ और वानर जातियाँ हैं। भारत में जो वनवासी लोग रहते हैं उनका वानर गोत्र है और जिनको आप भील और सन्थाल कहते हैं ये पहले कभी विद्वान् वा तत्त्वज्ञ थे। भगवान् मारुति तो ब्राह्मण गौतम ऋषि की कन्या अंजना के पुत्र हैं। वहाँ तो पशु रूप में उत्पन्न होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता किन्तु जो रहस्य को नहीं जानते, नहीं समझ सकते, उनका

कहना है कि वे तो वानर ही थे। 'भीम रूप धरि असुर संहारे', उन्होंने विशाल रूप धारण कर दुष्टों का नाश किया इसलिए हम उस रूप की पूजा करते हैं जिससे वह हमारा भी दुःख दूर करें, हमारे शत्रुओं का नाश करें। आपको मालूम है आपके घर में काफी फोटों होंगी, बच्चेपन से चित्र खिंचवाते रहते हैं। यदि किसी विशेष अवसर का कोई चित्र हो तो उसे आप कितने ध्यान से रखते हो! जैसे आपके विवाह का हो तो उस मुकुटधारी दुल्हा के चित्र को बड़े प्यार से सजाकर स्मृति रूप में रखते हो जो कि वर्षों तक पड़ा रहता है, क्यों? क्योंकि उसे देखते ही उस अवसर की स्मृति आ जाती है। इसी रूप से जब हम विकट रूप में भगवान् मारुति की पूजा करते हैं, तब याद आता है कि प्रभो! जैसे आपने रावण जैसे दुष्टों का नाश किया है वैसे ही मेरे दुःखों का, शत्रुओं का नाश करो। भगवान् शंकर स्वयं मारुति के रूप में प्रकट हुए। मारुति के रूप में प्रकट होकर उन्होंने रावण का नाश किया।

एक और बात बताऊँ जब हनुमान जी लंका जला रहे थे तो उस समय मन्दोदरी रोने लगी। उसने रावण से कहा—तुम्हारे होते हुए तुम्हारे समक्ष लंका खाक में मिल रही है, लज्जा की बात है। रावण सोचने लगा—मेरी लंका को आग लगाने वाला कौन हो सकता है? एकान्त में अपने उपास्य देव के स्थान पर गया जहाँ भगवान् शंकर की पूजा किया करता था। शिव मन्दिर में जाकर प्रार्थना करने लगा, जब ध्यान में भगवान् शिव को देखा तो उसने कहा, प्रभो ! जब आप ही मेरा संहार करने के लिए यहाँ आ गये तो मेरी रक्षा कौन करेगा? भगवान् शंकर कहते हैं—रावण यह तुम्हारे कर्मों का फल है, इसी का परिणाम है। तुमने अपने अहंकार में मेरे नन्दी रूप का अपमान किया था, वही नन्दीश्वर हनुमान के रूप में अपना बदला लेने यहाँ आया है, मैं कुछ नहीं कर सकता। दूसरी बात मेरे दिये हुए वर का परिणाम परमात्मा का द्वेष नहीं होता देवों पर कृपा होती है। तुमने मेरी भक्ति की, उसके परिणाम स्वरूप मैंने तुम्हें शक्ति दी, इसका यदि तू सदुपयोग करता तो मेरी कृपा का पात्र होता किन्तु तुमने मेरी दी हुई शक्ति का दुरुपयोग किया और शक्ति स्वरूपा सीता को ले जाकर बन्दीखाने में रखा, इसलिए अब तुम्हारे विनाश में अधिक देर नहीं होगी। निराश होने पर रावण सोचता है, चलो इसी बहाने जहाँ मेरे प्रभु के भी प्रभु हों उनके हाथ से यदि

मेरी मृत्यु होती है, इससे बढ़कर मेरे लिए कोई सुख की बात नहीं। आप लोग जानते हैं कि रावण ने कभी भी सीता के पास अकेले जाने की भावना नहीं की। जब भी कभी रावण सीता के पास जाता था, मन्दोदरी एवं अन्य रानियों को साथ लेकर जाता था। रावण के अन्तर्तम में सीता के प्रति बुरी भावना नहीं थी। बड़ी लम्बी कहानी है, इसकी व्याख्या करने लगेंगे तो शिव पुराण रह जायेगा। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा कि जिस समय रावण को पता चलता है कि खरदूषण का वध हो गया तो उस समय रावण अपने भवन में जाकर विचार करता है–

खर दूषन मोहि सम बलवंता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।

(रा॰ ३/२३–२,३,४)

"खरदूषण को भगवान् के अतिरिक्त कोई दूसरा मार नहीं सकता। यदि भगवान् का अवतार हो गया है तो मैं जाकर भगवान् से बैर करूँगा, उनके बाण द्वारा शरीर छोड़कर मैं इस संसार सागर से पार हो जाऊँगा।" रावण के अन्तर से एक आवाज़ आई कि अरे दुर्बुद्धि! तू बैर क्यों करता है? भजन क्यों नहीं करता? भक्ति कर ले। मैं आप लोगों से एक निवेदन करूँ कि यदि किसी सन्त की नहीं रावण की एक बात ध्यान में आ जाये तब भी कल्याण हो। रावण ने यहाँ एक बात कही है–

होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

(रा॰ ३/२३–५)

"मेरा तामसी स्वभाव है, इस कारण मेरे से भजन नहीं होता।" रावण की यह सीख है कि तमोगुण के रहते हुए भगवान् की भक्ति नहीं हो सकती। 'होइहि भजनु न तामस देहा', तामस बुद्धि से मैं भगवान् का भजन नहीं कर सकता इसलिए 'मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा', मन, वचन, कर्म से यही लगता है कि मैं राम से शत्रुता करके अपना उद्धार करूँ।

शुकदेव जी महाराज परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा सुना रहे हैं। कथा में गोपियों का चरित्र आ गया, वहाँ गोपियों की भावना का वर्णन करने लगे। इतना पावन चरित्र है जो सामान्य जन की बुद्धि में आना वाला नहीं। परीक्षित जी बीच में बोल पड़े–भगवन्! आप मुझे यह क्या चरित्र सुना रहे हो? वक्ता परमहंस शुकदेव जी का ध्यान भंग हुआ। पूछा, क्या बात? परीक्षित ने कहा–प्रभो! आप आनन्दकन्द ब्रजेन्द्र नन्दन कृष्णचन्द्र की कथा सुना रहे हो, वह पुरुषोत्तम परमात्मा स्वयं कृष्ण रूप में अवतरित हैं फिर उनके साथ ये ब्रज की बालायें काम वासना से पीड़ित होकर उनके पीछे क्यों दौड़ती हैं? इतना सुनना था कि महाराज शकुदेव जी ने कहा–भूल हो गई, एक अपात्र को मैंने बहुत बड़ी बात बतानी चाही। वहीं से विचार बदल देते हैं; किन्तु वहाँ पर इतनी बात कहते हैं–राजन्! यह बात याद रखो कि परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ कर ही जीव का उद्धार होता है। सम्बन्ध किस प्रकार का हो, इससे कोई मतलब नहीं है। वह परमात्मा सर्वभूत में रमा हुआ है, सबका पिता है, पति है, स्वामी है, पुत्र है, मित्र है, सबका भाई है और सबका शत्रु भी है। कहने का अभिप्राय कि संसार के समस्त सम्बन्ध परमात्मा से हैं, किसी भी भाव से तुम उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लो। वह वहाँ पर परीक्षित को बताते हैं कि गोपियों ने पति–भाव की भावना की और कंस ने उन्हें शत्रु माना। कंस जहाँ खड़ा होता है, उठते–बैठते, जागते–सोते, चलते–फिरते उसे कृष्ण के अतिरिक्त कोई दिखाई ही नहीं देता। इसी प्रकार गोपियों को भी कृष्ण के अतिरिक्त कोई दिखाई नहीं देता। जिससे हम बहुत प्रेम करते हैं या तो उसका ध्यान बना रहता है अथवा जिससे हम बहुत द्वेष करते हैं उसका ध्यान बना रहता है और उसके विषय में सोचते रहते हैं कि इसका नाश कैसे करें? दोनों ध्यान की विधियाँ हैं। शुकदेव जी ने वहाँ पर कहा है कि यदि शत्रु भाव से भी प्रभु का ध्यान करें तो प्रभु उसका भी उद्धार करते हैं। रावण ने शत्रु भाव से भगवान् से सम्बन्ध जोड़ा, इसीलिए उसने जीवन भर भगवान् का नाम नहीं लिया। जब भी कोई बात होती तो राम को राम न कहकर तपस्वी कहता था। रावण विभीषण से कहता है–

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।

(रा॰ ५/४१–५)

अपने से पूछते समय भी यही कहता है–

कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी।
जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी।।

(रा॰ ५/५३–८)

भगवान् राम के सामने आने पर कहता है–

जीतेहु जे भट संजुग माहीं।
सुनु तापस मै तिन्ह सम नाहीं।।
रावन नाम जगत जस जाना।
लोकप जाकें बंदीखाना।।

(रा॰ ६/९०–३,४)

वह सदैव भगवान् को तपस्वी कहता है। केवल अन्तिम बार मरते समय राम कहा। 'गर्जेउ मरत घोर रव भारी' अन्त में बड़े जोर से गर्जना करते हुए–'कहाँ रामु रन हतौं पचारी,' राम कहाँ है, मैं तुम्हें आज मार दूँ, मरते–मरते यह कहा। तुलसीदास जी लिखते हैं–जो योगियों के लिए भी दुर्लभ गति थी, भगवान् ने रावण को वह गति दी। क्यों दी भाई? क्योंकि उसने भगवान् राम का शत्रु भाव से चिन्तन किया। यहाँ पर पार्वती जी को आशंका हो गई कि रावण जैसे राक्षसों को भी भगवान् ने परम धाम दे दिया, वह गति क्यों दी? भगवान् शंकर कहते हैं पार्वती–

उमा राम मृदुचित करुनाकर।
बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर।।
देहि परम गति सो जियँ जानी।
अस कृपाल को कहहु भवानी।।

(रा॰ ६/४५–४,५)

वैर भाव से सही, भाव तो है, सुमिरन तो करता है। अपने हृदय का भाव तुम प्रभु से जोड़ दो, किसी भी नाते से जोड़ो, यदि तुम प्यार से नहीं तो शत्रुता के नाते जोड़ दो। उनका चिंतन करते रहोगे तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। फल चिंतन का है, भाव जो चाहो लगा लो। रावण ने निश्चय किया–

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

(रा॰ ३/२३–४,५)

भगवान् से बैर करने का एक ही रास्ता है, भगवती सीता का हरण। यदि मैं अकेला गया तो केवल मेरा ही वध होगा, यदि भगवान् यहाँ आयेंगे तो पूरे परिवार का उद्धार हो जायेगा। रावण जब मरने लगा तो उस समय भगवान् राम उसके पास जाकर खड़े हो गये। उससे पहले लक्ष्मण को भेजा कि जाकर रावण से कुछ नीति सीख लो। लक्ष्मण जाकर उसके सिरहाने खड़े हो गये तो रावण बोला नहीं। राम स्वयं आये और उसके पाँव की ओर खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया, कहा–पण्डितराज रावण! तुम अन्तिम बार मेरे से कुछ कहते। तब रावण ने कहा–लक्ष्मण, एक बात मैं पहले तुम्हें समझा दूँ कि ज्ञान प्राप्त करने का यह ढंग नहीं जो तुमने अपनाया है। ज्ञान प्राप्त ऐसे किया जाता है जैसे रघुवंशमणि खड़े हैं। किसी से ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसके चरणों में बैठकर शिष्य बनकर प्राप्त किया जाता है, गुरु बनकर नहीं। भगवान् के पूछने पर उसने बहुत सी बातें बताई हैं। अन्त में एक आशंका हुई कि रावण जब तुम्हें इतना ज्ञान था तो तुमने इतना बड़ा अत्याचार क्यों किया? इतनी बार समझाने पर भी तुमने सीता को नहीं लौटाया। वह कहता है–राम! सीता को लौटाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता था, तब भी मेरी विजय थी और अब भी मेरी विजय है। रावण राम से कहता है–

अगर संच पूछो जो रघुवर समर इतिहास कल्पों तक।
तुम्हारी हार मेरी जीत का डंका बजायेगा।।

तुम्हारी जीत कैसे? कहा–"हमारे देखते लंका में तुम आने नहीं पाये" अर्थात् जब तक मैं जीता रहा तुम्हें अपनी नगरी में पांव नहीं रखने दिया और–

हमारे देखते लंका में तुम आने नहीं पाये।
तुम्हारे देखते रावण तुम्हारे धाम जायेगा।।

"तुम दोनों भाई खड़े हो, अब मैं तुम्हारे लोक को जा रहा

हूँ।" विजय किसकी है? रावण की। क्यों, कारण क्या? भगवान् शंकर स्वयं हनुमान रूप में प्रकट होकर और प्रभु श्री राम जो साक्षात् महाविष्णु के अवतार हैं उनको साथ लेकर लंका पर चढ़ाई करते हैं और रावण का कुल सहित उद्धार करते हैं। कहने का अभिप्राय कि प्रभु की प्रत्येक लीला में करुणा छिपी होती है। प्रभु के अनेकों अवतार की अनेकों लीलायें करुणा से ही पूरित होती हैं। बाहर से देखने पर भले ही हमें कुछ अट्पटी सी लगें, जब तक हम उस रहस्य को न जानें, इसलिए रहस्य को जानने पर ही उनकी महिमा का बोध होता है।

हरि ऊँ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ऊँ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१८/२/८२, हालैण्ड

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

आप लोग कई दिनों से वेदान्त सार–सर्वस्व भगवान् शिव तथा उनके उत्तम चरित्र का श्रवण कर रहे हैं। पिछले सात दिनों में धर्म तत्त्व से सम्बन्धित बहुत सी बातें आप लोगों को बताई गई हैं। ऐसा अवसर बहुत कम मिलता है जबकि तत्त्व दृष्टि से धर्म के सार को समझने का सौभाग्य प्राप्त हो। मैं समझता हूँ जैसे एक धर्मात्मा व्यक्ति अपने प्रियजनों सहित अनेक सत्कर्मों का अनुष्ठान करता है तथा अपने साथ अनेक लोगों को सद्धर्म का मार्ग प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करता है, वही कार्य आपके शहर में हरि नारायण जी ने किया। मैंने उनकी श्रद्धा, प्रेम एवं निष्ठा को देखकर यहाँ पर १२ दिनों तक वेदान्त के तत्त्व को समझाने के लिए शिवपुराण महायज्ञ का अनुष्ठान करना स्वीकार किया और उसी दिन से आप लोग यह तत्त्वविज्ञान सुन रहे हैं। कल मैंने आप लोगों को भगवान् के दिव्य अवतारों की कथा सुनाई थी। उसमें एक बात मैंने बताई थी, उसे आज पुनः सार रूप से समझा दूँ।

विश्व में केवल एक हिन्दू धर्म ही ऐसा है जो परमात्मा के अवतार की उद्भावना करता है, जो यह स्वीकार करता है कि वह परब्रह्म परमात्मा, निर्गुण, निराकार, निरीह, निरंजन, चिन्मय ब्रह्म सगुण साकार विग्रह धारण करके हमारे स्तर पर अवतरित होता है। संसार में और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं है जिसमें इस प्रकार से परमात्मा के अवतरण की बात स्वीकार की गई हो। मेरी दृष्टि से अवतारवाद भारतीय दर्शन का श्रेष्ठतम सिद्धान्त और उसकी उत्तमोतम उपलब्धि है। जहाँ तक ईश्वरवाद का प्रश्न है, सभी धर्मों में वह स्वीकार्य है। समस्त धर्मावलम्बी निर्गुण निराकार ईश्वर को स्वीकार करते हैं, उसकी पूजा वा उपासना का मार्ग समझाते हैं किन्तु हिन्दू धर्म शास्त्र आपको केवल ईश्वर को स्वीकार करने को ही नहीं

कहता बल्कि वह समझाता भी है कि वह परब्रह्म परमात्मा जो–

निष्कलं निष्क्रियँ शान्तं निरवद्यं निरन्जनम्।
अमृतस्य परँ सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।

(श्वेता॰ ६/१६)

"जो कलाओं से रहित, क्रिया रहित, सर्वथा शान्त, निर्दोष, निर्मल, अमृत के परम सेतु रूप, जले हुए ईंधन से युक्त अग्नि की भान्ति निर्मल ज्योति स्वरूप है", वह आपकी पुकार सुनकर आपके हृदय की भावनाओं का स्वागत करते हुए आपके समक्ष आप जैसी ही आकृति–प्रकृति में प्रकट होकर आपको तृप्त भी करता है, उसमें ज़रा भी संदेह नहीं। जैसा कि आप लोग जानते हैं, मैं एक दार्शनिक होने के नाते अंधविश्वास का मार्ग किसी को नहीं समझाता और न ही बताता हूँ। प्रत्येक बात को तर्क वा युक्ति द्वारा और बुद्धि संगत, जिसको आज की भाषा में वैज्ञानिक कहते हैं, उस प्रक्रिया से समझाना मेरा काम है। अवतारवाद के विषय में भी मेरी यही राय है। व्यास भगवान् ने महाभारत में एक स्थान पर लिखा है–

न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

सृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई तत्त्व नहीं है, सृष्टि के विकास तत्त्व में मनुष्य से श्रेष्ठ, मनुष्य से उत्तम और मनुष्य से बढ़कर और कोई नहीं है। यह केवल इसी उद्देश्य से कहा है कि मनुष्य जीवन एक ऐसा जीवन है जिसमें पूर्णत्व की अभिव्यक्ति होती है, जिसमें पूर्णत्व का प्रकाश होता है और पूर्णत्व का अवतरण हो सकता है। यदि आप अन्य धर्मों में पड़ेंगे तो वहाँ भी आपको इतनी बात तो जरूर मिलेगी। ओल्ड टैस्टामैंट जिसे आप बाईबिल कहते हैं, बाईबिल का कथन है कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना शुरु की और क्रमशः उसने पाँच दिन में सृष्टि के पाँच अन्य अवयव बनाये–पृथ्वी, सूर्य, जल, वनस्पतियाँ, पशु और पक्षी आदि; फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई तो छठे दिन उसने मनुष्य का निर्माण किया। मनुष्य का निर्माण करने के पश्चात् उसे देखकर वह तृप्त हो गया और उसने यह अनुभव किया कि यह उसी की ही प्रतिमूर्ति है। अंग्रेजी में इसे 'इमेज' कहा जाता है। इस प्रकार मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है, ऐसा अनुभव करके परमात्मा सन्तुष्ट हो गया और उसने सातवें दिन विश्राम किया; क्योंकि अब उसने अपना काम पूर्ण कर लिया था। आगे का काम मनुष्य का था कि उसे मनुष्यता से

उठाकर पूर्णत्व तक कैसे ले जायें। प्राचीन बाईबिल में जो बातें लिखी हैं, उसके अनुयायियों ने समझा वा नहीं, इस विषय में विवेचन करना आज मेरा विषय नहीं है। आप लोगों को मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह जो सिद्धान्त बाईबिल में बताया गया है उसका भी मूल स्रोत वैदिक सिद्धान्त वा वैदिक विचारधारा है।

विश्व के पुस्तकालयों में या संसार के अन्दर संस्कृत से अधिक कोई प्राचीन भाषा नहीं है। लैटिन, ग्रीक, हिब्रू आदि भाषाओं की भी जननी प्राचीन संस्कृत वा वैदिक संस्कृत मानी जाती है और उस संस्कृत का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है। वेद से प्राचीन ग्रन्थ विश्व की किसी भी लाइब्रेरी में आपको नहीं मिलेगा। मैं अपनी बात इसलिए नहीं कहता कि मैं वेद का अनुयायी हूँ इसलिए उसकी महिमा गा रहा हूँ। विश्व का प्रत्येक विद्वान् इसे स्वीकार करता है कि संस्कृत समस्त भाषाओं की जननी है, माता है और वेद संस्कृत के प्राचीनतम गन्थ हैं। उन वेदों में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, उन सिद्धान्तों को क्रमशः अन्य देशों में, अन्य धर्मों में, अन्य सम्प्रदायों में भी आप पायेंगे। भूल कहाँ हो जाती है? जब उसका बुद्धिसंगत विचार न किया जाये।

मैं आप लोगों को एक बात समझा दूँ। जो परमात्मा की सृष्टि का क्रम है, बाईबिल में वह केवल एक विकास की व्यवस्था का परिचायक है। हम भी ऐसे ही मानते हैं कि जो मनुष्य है वह छठी अवस्था की अभिव्यक्ति है। मनुष्य से पूर्व पाँच योनियाँ और हैं, उन पाँच योनियों को आप क्रमशः समझ लें। एक जड़ योनि है। जड़ का अभिप्राय होता है जो चलते नहीं, बोलते नहीं जैसे वृक्ष, वनस्पति आदि। इनको जड़ योनि कहा जाता है। जड़ योनि के पश्चात् दूसरी कृमि योनि है, इस योनि में रेंगने वाले जीव हैं, जैसे कीड़े–मकौड़े आदि। कृमि योनि के पश्चात सरीसृप योनि है जैसे सरकने वाले सर्प, छिपकली आदि। इसके पश्चात् पक्षी योनि है, जिसमें उड़ने वाले पक्षी जैसे कौआ, चिड़िया, कबूतर आदि। पाँचवीं अवस्था में स्तनपायी पशु हैं। ये पाँच योनियाँ क्रमशः विकसित होती हुई जब आगे बढ़ती हैं तो छठी अवस्था में मनुष्य का आविर्भाव होता है। इसी बात को पुरानी बाईबिल में समझाने के लिए पाँच दिन में परमात्मा ने अन्य–अन्य तत्त्वों में सृष्टि की रचना की फिर मनुष्य को बनाया, ऐसी बात कही गई है। वहाँ पर दार्शनिक

विश्लेषण नहीं है, तर्क वा विश्लेषण के अभाव में लोग इस बात को समझ नहीं पाते। वे ऐसा समझते हैं कि भगवान् कहीं बैठा हुआ कोई वस्तु बना रहा था, बनाते–२ पाँच दिन बीत गये तो छठे दिन उसने मनुष्य को बनाया। बनाने की बात नहीं, वह विकास की व्यवस्था का अवबोधक है।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि मनुष्य सृष्टि विकास में छठे स्तर पर है। मनुष्य में प्रकृति के २४ तत्त्व प्रकट हो जाते हैं। उसके पश्चात् आपको देने के लिए प्रकृति के पास कुछ नहीं है। प्रकृति के २४ तत्त्व हैं २४ अवयव हैं। वे २४ अवयव मनुष्य शरीर में प्रकट हो जाते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और पाँच विषय मिलाकर बीस होते हैं, अहंकार, मन, बुद्धि और चित्त मिलाकर २४ होते हैं। इन २४ तत्त्वों को मनुष्य प्राप्त कर लेता है। इससे इत्तर योनियों में केवल २३ तत्त्व होते हैं। उससे भी नीचे वाली योनि में २२ तत्त्व और इससे नीचे केवल २१ तत्त्व तथा इससे भी नीचे वाली योनि में बीस तत्त्व होते हैं। ये जैसे–जैसे बढ़ते हैं वैसे–वैसे इनका विकास होता जाता है। उनमें एक–एक गुण की वृद्धि होती रहती है और अन्त में जाकर २४ तत्त्व पूरे हो जाते हैं। मनुष्य को अन्य योनियों की अपेक्षा जो विशेष तत्त्व मिला है, उसे बुद्धि कहते हैं। बुद्धि के नाते ही आप मनुष्य हैं। निरुक्त शास्त्र में मनुष्य शब्द की व्याख्या की गई है। मनुष्य किसे कहा जाता है? यास्काचार्य कहते हैं–'मननात् मनुष्य'। मनन करने के नाते, चिन्तन करने के नाते और बुद्धि के अधिपति होने के नाते वह प्राणी मनुष्य कहा जाता है। जिसमें मनन की, विचार की क्षमता न हो तो मनुष्य की आकृति मिलने पर भी आप उसे पशु ही कहेंगे। जो व्यक्ति विचारहीन होता है, उसे आप क्या कहते हैं? निरा पशु है। निरा पशु क्यों कहते हैं? इसलिए कहते हैं कि वह सोच नहीं पाता; समझ नहीं पाता और बुद्धि का प्रयोग नहीं कर पाता। मेरे मित्रो! आप केवल बुद्धि के नाते ही मनुष्य हो, यही आपका वैशिष्ट्य है।

आप लोगों को एक बात और बताऊँ। हमारे यहाँ धर्मशास्त्र में धर्म की मीमांसा करते हुए यह बताया गया है कि संसार में प्रत्येक पदार्थ अपने में एक विशेष धर्म रखता है, उसको आप यहाँ गुण कह लीजिये जो प्रत्येक पदार्थ के अस्तित्त्व का आधार है। जैसे

अनेक फूलों में कोई गुलाब का फूल, कोई कमल का फूल और कोई गैंदे का फूल है। यह भेद आप किसके नाते समझ रहे हो? कमल, गुलाब और गैंदे के फूलों और वृक्षों में एक विशेष गुण है, जिसका आप अलग महत्त्व समझते हो; इसी प्रकार से अन्य प्राणियों में, फलों में और जीव–जन्तुओं में भी भेद है। एक वैशिष्ट्य होता है जिसको प्रापर्टी वा विशेष गुण कहते हैं। अग्रंजी में उसे Characteristic quality कहते हैं। इसके नाते उसका अलग व्यक्तित्व वा अस्तित्व है। व्यक्तित्व और अस्तित्व का आधार जो Characteristic Quality है, वही उसका धर्म कहा जाता है। मनुष्य जो प्राणी है, इसका जो अलग अस्तित्व वा व्यक्तित्व आपका दीख रहा है यह इसलिए नहीं कि मनुष्य दो पाँव से चलता है। उसकी क्रियायें इस ढंग की हैं जो देखने में मोहित करती हैं। वह दो पाँव का पशु भी कहा जा सकता है। तुलसीदास जी ने कहा है–

ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ बिषान।

(रा॰ ७/७८)

मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी बिना सींग और पूंछ के पशु के समान है। क्यों पशु है? क्योंकि उसके पास जो मनुष्यता का धर्म होना चाहिए, वह नहीं है। इसलिए यदि मैं यह कहूँ कि मनुष्य की महत्ता बुद्धि में है और बुद्धि ही मनुष्य का धर्म है तो अत्युक्ति न होगी। बुद्धि के नाते ही मनुष्य का व्यक्तित्व एवं वैशिष्ट्य है, इसी के कारण मनुष्य का अलग अस्तित्व है। यदि आप बुद्धि को खो देंगे तो आप अपने धर्म को खो देंगे। जो लोग बुद्धिहीन धर्म का प्रचार करते हैं, बुद्धिहीन धर्म की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, बुद्धि के अभाव में भी धर्म की घोषणा करते हैं, मैं समझता हूँ कि वह मनुष्य धर्म के बिल्कुल विपरीत है। महात्मा मनु ने घोषणा की है कि जो तर्क के द्वारा, बुद्धि के द्वारा अनुसंधान करेगा, वही धर्म को जान पायेगा। अर्जुन भगवान् के चरणों में स्वयं को समर्पित करता है और कहता है–

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

(गीता २/७)

"मैं आपका शिष्य आपकी शरण में हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिये।" भगवान् कहते हैं, प्यारे अर्जुन! 'बुद्धौ शरणमन्विच्छ', तुम

बुद्धि की शरण में चलो। प्रभु ने बुद्धि की शरण में जाने के लिए क्यों कहा? भगवान् ने उसको स्पष्ट किया–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

(गीता २/५०)

"बुद्धि से युक्त होकर ही तू पाप और पुण्य का त्याग कर पायेगा। पाप और पुण्य से मुक्त होकर ही तू अपने जीवन के लक्ष्य को पूर्ण कर पायेगा।" जो लोग पाप और पुण्य के प्रवाह में बहते रहते हैं, वे मनुष्यता को सार्थक नहीं बना पाते, उनके जीवन का टकराव होता रहता है। सुख और दुःख रूपी दो किनारे होते हैं, जो कभी दुःख से और कभी सुख से टकराते हैं। यह जो सुख–दुःख से टकराना है,यह भी कभी स्थाई नहीं होता। सुख का संयोग हुआ तो हँसते रहे, नाचते रहे और गाते रहे। जीवन में कभी दुःख भी हो सकता है। इसकी कभी कल्पना भी नहीं की। कभी दुःख से टक्कर लगी तो सोचते हैं कि संसार में कभी सुख तो आयेगा ही नहीं, समस्त जगत् दुःखमय है। आपको यह भी जानकर आश्चर्य होगा कि जब व्यक्ति सुखी होता है तो उसको कहीं दुःख दिखाई ही नहीं देता। उसी प्रकार जब दुःखी होता है तो उसको कहीं सुख दिखाई नहीं देता। मनुष्य की अपनी अवस्था ही संसार का स्वरूप होती है। पुनः एक बार समझ लीजिए–मनुष्य की अपनी अवस्था ही संसार का स्वरूप होती है; यदि वह सुखी है तो संसार सुखी है, यदि वह दुःखी है तो संसार दुःखी है। इस सुख–दुःख के चक्कर से जो मनुष्य टकराता रहता है, उसका मूल कारण क्या है? उसे शास्त्रकारों ने धर्म और अधर्म बताया।

हमारे कर्म की दो स्थितियाँ हैं–एक धर्म की दूसरी अधर्म की। जब हम धर्म की स्थिति में पहुँच कर धर्म के फल को प्राप्त करने लगते हैं तब हम सुखी होते हैं। जब अधर्म के परिणाम को भोगने लगते हैं तब हम दुःखी होते हैं। कभी ऐसा दिखाई देता है कि हम अभी तो धर्ममय जीवन बिता रहे हैं, धर्म की भावना से चल रहे हैं फिर अचानक दुःख कहाँ से आ गया? शास्त्र कहता है कि वह तुम्हारे कल का कर्म है। कल माने बीता हुआ कल। आज से दस वर्ष पूर्व का कल भी कल है और आज से एक क्षण पूर्व का कल भी कल है। वह जो बीते हुए पूर्व जन्म के संस्कार का परिणाम आपके सामने आता है, उसको देखकर आप पीड़ित होते हैं

किन्तु आपको पता नहीं होता। इसलिए परमात्मा को विशेष रूप से उलाहना देते हुए, दोषी ठहराते हुए आप यह कहते हैं कि भगवान् मेरे साथ अन्याय कर रहा है किन्तु स्मरण रखो भगवान् अन्याय नहीं करता। आप कहेंगे कि अगर भगवान् हमें प्यार करता है तो हमें दुःख क्यों देता है? यह बात याद रखना कि दुःख की अग्नि में तप करके ही आप निर्मल होते हैं, आपकी शुद्धि वा निर्मलता के लिए, आपको अपनाने के लिए प्रभु दुःख की अग्नि में थोड़ा सा तपाते हैं। इसलिए यदि उससे बचना है तो भगवान् का वही आदेश याद रखो।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

जब तुम बुद्धि से युक्त होगे तो तुम अपने आप बुद्धि के प्रकाश में पाप और पुण्य दोनों से अलग हो जाओगे। पाप–पुण्य रहित जीवन ही अवधूत जीवन है। धूत कहते हैं दोष को और अवधूत कहते हैं निर्दोष को। मलरहित, दोषरहित जीवन तभी प्राप्त होगा जब तुम बुद्धि का प्रयोग करोगे। बुद्धि का तनिक सा भी, प्रमाद से, अहंकार से या किसी भी नाते प्रयोग नहीं किया तो तुम दुःखी हुये। उस समय दुनिया की कोई भी शक्ति तुम्हें संभाल नहीं सकती।

आप लोगों को इसी से सम्बन्धित शिव पुराण में आई हुई एक कथा सुना रहा हूँ। शिव पुराण में भगवती उमा के कई अवतारों का वर्णन है, उसमें विशेष रूप से दो अवतारों की महिमा हैं। पहला अवतार सती रूप में है। शिवपुराण कहता है कि पहले जगत् में नारी सृष्टि नहीं थी। ब्रह्मा ने अपने संकल्प से पुरुष सृष्टि का निर्माण किया, उससे सृष्टि में वृद्धि नहीं हो रही थी। संकल्प से कितनी सृष्टि हो सकती थी? ब्रह्मा व्यथित होकर प्रभु की अराधना करने लगे। तप के द्वारा भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने कहा, ब्राह्मण! यदि सृष्टि का विस्तार करना चाहते हो तो महेश्वरी की अराधना करो। वह विश्वेश्वरी, करुणामयी परमेश्वरी शक्ति जो है, वही इस सृष्टि के विस्तार का माध्यम बना सकती है वा बता सकती है। ब्रह्मा की स्तुति से, उनकी तपस्या से वह परब्रह्म परमात्मा अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट होता है। ब्रह्मा दोनों स्वरूपों की स्तुति करते हैं। उनकी विशेष प्रार्थना से भगवान् शंकर के अर्ध भाग से भगवती प्रकट होती है और ब्रह्मा को वरदान देती है। ब्रह्मा प्रार्थना करते

हैं,' देवि! आपकी अनुकम्पा के बिना नारी सृष्टि का निर्माण नहीं हो सकता। नारी सृष्टि की क्षमता मेरे में नहीं है। वह मेरे तत्त्व से परे की बात है, वह तो करुणामयी जगत् जननी ही नारी सृष्टि कर सकती है और बिना नारी सृष्टि के सृष्टि का विस्तार नहीं हो सकता, जीवों का उद्धार नहीं हो सकता। अनन्तकाल से वासनामय जीव जो महत्तत्त्व में निहित हैं, घोर अविद्या में निहित हैं, उनके उद्धार के लिए सृष्टि आवश्यक है। उस में नारी के अभाव में कभी सृष्टि का विस्तार हो नहीं सकता इसलिए ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर वह सर्वेश्वरी भगवती नारी तत्त्व को प्रकट करती है। उसके द्वारा पुनः मैथुनी सृष्टि का विस्तार होता है। ब्रह्मा वहीं पर प्रार्थना करते हैं कि भगवती! तुम कृपा करके मेरे पुत्र के यहाँ पुत्री रूप में अवतरित होंवें। महादेवी आशीर्वाद देती है और दक्ष के यहाँ सती रूप से अवतरित होती हैं। भगवती दुर्गा का पहला अवतार सती रूप में है। आप लोगों ने सती की कथा सुनी होगी कि अपने पिता दक्ष के यज्ञ में जाकर उन्होने भगवान् शिव के अपमान के बदले में स्वयं को योगाग्नि में भस्म कर दिया था। रामायण में इसी कथा को गोस्वामी जी ने एक और रूप से व्यक्त किया है। शिवपुराण में यद्यपि हमें उस प्रकार की कथा का वर्णन नहीं मिलता किन्तु रामायण की कथा को जब हम पढ़ते हैं और अन्य ग्रन्थों में भी पढ़ते हैं तो हमें उसका बोध होता है। रामायण में शिव के द्वारा सती के त्याग की बड़ी दुःखद कथा है, आज मैं आप लोगों को यह कथा सुनाऊँगा।

एक बार भगवान् शंकर सती को साथ लेकर अगस्त्य आश्रम जाते हैं। शंकर को आया देखकर अगस्त्य जी उनका स्वागत करते हैं और भगवती सहित उनकी पूजा करते हैं। इसके पश्चात् सत्संग प्रारम्भ होता है। सत्संग में अगस्त्य जी भगवान् की कथा का वर्णन करते हैं कि वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा पुरुषोतम राम रूप में अवतरित हुए हैं और अनेक प्रकार की लीलाएँ कर रहे हैं। उनकी लीलाओं का वर्णन ऋषि अगस्त्य जी करते हैं कि आप तो राम भक्त हैं, आपको राम की अनन्त महिमा का बोध है, आप मुझे राम की भक्ति का बोध करवायें। भगवान् शंकर राम की भक्ति का तत्त्व समझाते हैं, कहते–सुनते जब थोड़ा समय बीतता है तो अगस्त्य जी से विदा माँगकर भगवान् शंकर कैलाश की ओर चल देते हैं। यहाँ पर मैं

आप लोगों को एक विशेष बात समझाऊँ कि जब मनुष्य बुद्धि का आदर नहीं करता तो दुःख पाता है। देवताओं की दिव्य शक्तियों की जितनी लीलाएँ हैं, वे मनुष्य को शिक्षा प्रदान करने के लिए हैं किन्तु महामाया तो स्वयं बुद्धि स्वरूपा हैं, उसकी बुद्धि में भ्रम की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

ऋषि कहते हैं,"जो देवी बुद्धि रूप में स्वयं प्रकट है, उनको मैं बार–२ नमस्कार कर रहा हूँ।" उसकी बुद्धि में भ्रम हो, ऐसा सम्भव नहीं किन्तु लीलामात्र, मनुष्य को शिक्षा देने के लिए कभी–२ हमारी दिव्य शक्तियाँ विचित्र लीलाएँ करती हैं। उसी लीला का एक अंश समझा रहा हूँ। भगवती सती का जब ऋषि अगस्त्य पूजन करते हैं तो तुलसीदास जी लिखते हैं–

संग सती जगजननि भवानी।
पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी।।

(रा॰ १/४८–२)

अगस्त्य जी अखिलेश्वरी जानकर भगवती भवानी का पूजन करते हैं। उससे आगे जब चरित्र का वर्णन करते हैं तो सती का न तो रामचरित्र सुनने में प्रेम है और न उनकी महिमा सुनने में। ऋषि भगवान् राम की महिमा का वर्णन कर रहे हैं, भगवान् शंकर बड़े प्रेम से सुन रहे हैं–

रामकथा मुनिबर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुखु मानी।।

(रा॰ १/४८–३)

कहा–केवल महेश ने सुना, सती ने नहीं सुना? सती ने राम की महिमा को क्यों नहीं सुनी? उनको यह था कि हम तो परमेश्वरी वा अखिलेश्वरी हैं, ऋषि लोग हमारी पूजा वा उपासना करते हैं। इस अहं बुद्धि के कारण सती ने उस परम तत्त्व की व्याख्या नहीं सुनी। तुलसीदास जी लिखते हैं–

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई।
कही संभु अधिकारी पाई।।

(रा॰ १/४८–४)

ऋषि ने प्रार्थना की कि भगवन्! आप मुझे भगवान् की भक्ति

का उपदेश दीजिए। भगवान् शिव ने भक्ति का उपदेश दिया–

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा।
कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा।।

(रा॰ १/४८–५)

थोड़े दिन तक वहाँ रहे, बाद में–

मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी।
चले भवन सँग दच्छकुमारी।।

(रा॰ १/४८–६)

मुनि से विदा माँग कर त्रिपुरारी चले। तुलसीदास जी ने यहाँ पर अब यह नहीं कहा कि उनके साथ जगजननी भवानी जा रही हैं। अब कहा "चले भवन संग दच्छ कुमारी।" दक्षकुमारी भगवान् शिव के साथ जा रही हैं। यहाँ पर दक्षकुमारी क्यों कहा? पहले तो "संग सती जगजननी भवानी" पहले जगजननी, भवानी, अखिलेश्वरी शब्दों का प्रयोग किया, अब दक्षकुमारी कह रहे हैं? बोले हाँ! जब सती शिव के अनुकूल थी, शिव के मन के साथ उनका मन मिला हुआ था, शिव की बुद्धि के साथ उनकी बुद्धि मिली हुई थी और जब वह शिवमय थी तब वह भवानी थी। अब वह अहंयुक्त हो गई हैं इसलिए अब वह भवानी नहीं हैं, अब केवल दक्षकुमारी हैं, इसके पश्चात् आप सती के विनाश तक देखेंगे कि गोस्वामी जी बार–२ इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने बड़ी ही सतर्कता के साथ शब्दों का प्रयोग किया है। किसी के स्वरूप और स्वभाव का वर्णन करते हुए उसके गुण का ध्यान रखना, किसी के व्यक्तित्व को जानते हुए उसके माता–पिता के संस्कार को, उसकी वंश परम्परा को, उसके साथ को अर्थात् किन–२ के साथ वह रहता है और उसकी क्रिया क्या है, इन सब पर बहुत ही विचार करते हुए गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य में इनका चित्रण किया है। यहाँ पर भी उन्होंने सती को दक्षकुमारी कह कर सम्बोधित किया। जैसे दक्ष अहंकारी है, अहंकार में आकर उसने भगवान् शंकर का अपमान कर दिया, अहंकार में आकर पुत्री का भी वह अपमान कर बैठेगा, उसी अहंकार के नाते दक्ष का अपमान होगा। उस अहंकारी पिता की यह पुत्री है इसलिए पिता के संस्कार इस समय इसमें जाग्रत हो गये हैं।

एक बात और स्मरण रखना, अभी मैने "मानस महाकाव्य में

नारी", एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखी है। उसमें मैने इसका विश्लेषण किया है और यह प्रश्न उठाया है कि आखिर जो अवतार हैं, शक्तियाँ है, उनमें ये दोष कैसे आ जाते हैं। मैने उसका समाधान किया है। उसका समाधान इस रूप में किया है कि जब वे महान् शक्तियाँ अवतरित होती हैं, वे जो माध्यम चयन करती हैं, माध्यमगत जो संस्कार हैं अवतार होने पर भी उन संस्कारों से वे युक्त होती हैं। यदि वे तप के द्वारा उन माध्यमगत संस्कारों को नष्ट कर दें, समाप्त कर दें, अपने विशुद्ध तत्त्वमय रूप में प्रतिष्ठित हो जायें तो वे दिव्य होंगी, महान् होंगी। उन्होंने यदि संस्कारों को नष्ट नहीं किया और वे संस्कार साथ लिये रहें तो उनकी दिव्यता में भी संस्कारगत संसर्ग का प्रभाव आयेगा ही। मैने इसका विश्लेषण उस समय पार्वती और सती दोनों को सामने रख कर किया है। महारानी सती वही जगदम्बा का अवतार हैं। वही जगदम्बा पार्वती रूप में अवतरित होती हैं। जब पार्वती रूप में अवतरित होती हैं तो अपने माता–पिता-जन्य संस्कारों को अपने तप की अग्नि में भस्म करके तपस्या द्वारा परम पावन हो जाती हैं; तब भगवान् शिव उनका वरण करते हैं। पार्वती के जीवन में फिर कभी अहं के लिए वा दोष और दूषण के लिए कोई स्थान नहीं होता। वह जगदम्बा, जगद्जननी विश्व में आदर्श नारी के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। सती के जीवन में हमें कहीं तपस्या का दर्शन नहीं होता इसलिए जो उनके माता–पिता–जन्य संस्कार हैं, वे उनके साथ हैं।

एक बात स्मरण रखना, अवतार के लिए जिस माता–पिता का सम्बन्ध स्वीकार करना होता है, जिसे माध्यम चुनना होता है, वह उसके शुक्र के द्वारा ही होता है। जिस शुक्र से शरीर का निर्माण होता है, शुक्रजन्य अपवित्रता तो शरीर में रहती ही है। यह शरीर तो माता–पिता के रज–वीर्य के परिणाम का स्वरूप है। माता–पिता के रज–वीर्य को स्वीकार करके जो भी दिव्यात्मा अवतरित होती है, उसके संस्कार उसमें रहते ही हैं। उनके संस्कारों को तपस्या के द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। जब व्यक्ति तपस्या से उस माध्यम के संस्कारों को नष्ट कर देता है तब उसकी दिव्यता प्रकट हो जाती है। हम–आप जितने हैं सब की यही गति है। हम सबकी आत्मा दिव्य है, नित्य है, शाश्वत है, परम प्रकाशमय और ज्ञानस्वरूप है किन्तु जिस माध्यम से हम आप उत्पन्न हुए हैं, वह माध्यम

माता–पिता-जन्य शुक्र और शोणित है। उस शुक्र और शोणितजन्य माध्यम के संस्कारों को जिसने तप के द्वारा नष्ट किया है और अपने और आपको शुद्ध किया है, उसे हम देवता मानते हैं, मानते आये हैं और आगे भी मानेंगे। क्यों मानते हैं? तपस्या के नाते। तपस्या में कितना बड़ा बल है।

रामायण में एक जगह नहीं अनेक जगह यह बात आई है कि तप से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है जिससे मनुष्य दोषों से मुक्त हो सके। यह तपस्या की महिमा है किन्तु सती के जीवन में हम कहीं तपस्या का स्थान नहीं देखते। सती भगवान् शंकर के साथ चली जा रही है, भगवान् शंकर की चाह है कि प्रभु अवतार लिए हैं, मैं उनका दर्शन करता हुआ चलूँ। संयोग देखिये– अगस्त्य आश्रम से प्रभु आ रहे हैं, सती साथ है। अगस्त्य आश्रम मद्रास से थोड़ी दूर पहाड़ के मध्य में है, वहाँ से भगवान् शंकर कैलाश के लिए चलते हैं। रास्ते में नासिक (पंचवटी) आता है जहाँ भगवान् राम सीता के विरह में विलाप कर रहे हैं, जहाँ से रावण ने सीता का हरण किया था। जब भगवान् शंकर वहाँ पहुँचे तो कुछ और ही लीला हो रही थी। लीला क्या हो रही थी? सीता का हरण हो गया था। भगवान् राम अब लताओं, पत्तों, वृक्षों और पक्षियों को पकड़–२ कर पूछ रहे हैं–

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।

(रा॰ ३/३०–६)

"हे पक्षियो, लताओं, क्या तुमने मेरी प्राण–प्रिय मृगनयनी सीता को देखा है?" तुलसीदास जी लिखते हैं–

लछिमन समुझाए बहु भाँती।
पूछत चले लता तरु पाँती।।

(रा॰ ३/३०–८)

भगवान् की लीला देखिये, लताओं, पेड़ों और पत्तों से पूछते जा रहे हैं। आगे तुलसीदास जी लिखते हैं–

कबहूँ जोग बियोग न जाकें।
देखा प्रगट बिरह दुखु ताके।।

(रा॰ १/४९–८)

जिस सीता–राम का न तो स्वप्न में कभी संयोग होता है और न वियोग होता है अर्थात् एक ही सत्ता के दो नाम हैं। आपने सुना होगा कि ब्रह्म का नाम सच्चिदानन्द है। शिव पुराण में बताया गया है कि सत् शिव है, चित्त शक्ति है और दोनों के संयोग से जो रस पैदा होता है, उसे आनन्द कहते हैं। वह सत्–चित्त–आनन्द है। "सत्" वही ब्रह्म राम है, "चित्त" वही शक्ति सीता तत्त्व है, दोनों के संयुक्त स्वरूप से ही रस की वृष्टि होती है जिसे "आनन्द" कहते हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं–

जो आनन्द सिंधु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

(रा॰ १/१९७–५,६)

जो समस्त विश्व को विश्राम देने वाले, आनंद के समुद्र, सुख की राशि श्रीराम हैं, उनमें संयोग और वियोग की कल्पना कहाँ? यह तो प्रभु की लीला है। लीला को देखकर भगवान् शंकर मग्न हो गये, उनके नेत्रों में आँसू आ गये, शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने भगवान् राम को प्रणाम किया 'जय सच्चिदानंद जग पावन', जगत् को पवित्र करने वाले सच्चिदानंद आपकी जय हो–

अस कहि चलेऊ मनोज नसावन।।

काम को नष्ट करने वाले भगवान् शिव भगवान् को सच्चिदानंद कह कर चलते हैं–

चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता।।

(रा॰ १/५०–४)

भगवान् शंकर ने प्रणाम किया किन्तु सती ने नहीं किया। सती ने प्रणाम क्यों नहीं किया? सती सोचती है जो अपनी स्त्री के लिए इतना कामुक है, जिसको कामुकता में होश नहीं है, भला पेड़ की पत्तियाँ क्या बतायेंगी कि सीता कहाँ गई? उनको इतना होश नहीं कि जड़ और चेतन क्या है? इस कामुक को हमारे प्रभु सच्चिदानंद कह कर प्रणाम कर रहे हैं। यह राजकुमार प्रणाम का पात्र है या उपहास का? यह तो अपनी मनुष्यता भी गँवा बैठा है। क्या मनुष्य इतना पागल हो सकता है? नहीं। लीलाधारी की लीला

बड़ी विचित्र है। परिणाम क्या होता है? सती चलती है किन्तु उनके दिमाग में एक और प्रश्न है। वह सोचती है 'सिव सर्वज्ञ जानु सबु कोई' शिव सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जानते हैं, उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। सती को पहले भ्रम होता है पुनः संशय होता है। मनुष्य के पतन की अवस्थाओं में पहले मोह आता है, मोह के पश्चात् अहं होता है, अहं से संशय होता है, संशय से भ्रम होता है और अन्त में भ्रम से विनाश होता है, यह क्रम है। इस क्रम में सती को पहले मोह हुआ। मोह का बीज पहले पड़ा कि मैं विश्वेश्वरी, भुवनेश्वरी और सर्वेश्वरी हूँ। उस मोह के नाते ही अहंकार का जन्म हुआ। अहंकार मोह से पैदा होता है। कतिपय विद्वानों की राय है कि मोह की जड़ तमोगुणी अहंकार है। इसका परिणाम क्या होता है? संशय।अतः इस समय सती संशय में पड़ गई। संशय दो कोटि के ज्ञान को कहते हैं, एक ज्ञान यह है कि ऐसा हो नहीं सकता और दूसरा ज्ञान ऐसा हो भी सकता है। जहाँ दो प्रकार का ज्ञान हो, उसे संशय कहते हैं। इस प्रकार सती को दो प्रकार का ज्ञान है। एक तो यह है–

संभुगिरा पुनि मृषा न होई।
सिव सर्बग्य जान सबु कोई।।

(रा॰ १/५१–३)

शंकर जी कभी झूठ नहीं कह सकते; शंकर की बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती क्योंकि शंकर सर्वज्ञ हैं। दूसरे प्रकार का ज्ञान यह है–

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद।।

(रा॰ १/५०)

ब्रह्म व्यापक, अकल, अनीह और भेद रहित हैं। वह ब्रह्म शरीर धारण कर मनुष्य नहीं हो सकता। इधर शिव के प्रति आस्था और उधर निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्था, इन दोनों आस्थाओं में सती को संशय हो गया। बार–२ सोचने पर भी समाधान नहीं हो रहा। वह सोच रही है कि यह ब्रह्म तो नहीं है। कहीं यह नारायण का अवतार तो नहीं? सोच रही है नारायण भी नहीं है, विष्णु भी नहीं हो सकते। विष्णु क्यों नहीं हो सकते? वह कहती है–

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी।
सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।।

(रा॰ १/५१–१)

विष्णु भगवान् देवताओं का कार्य करने के लिए मनुष्यों का शरीर धारण करते हैं। 'यह तो विष्णु भी नहीं हैं। क्यों नहीं हैं? क्योंकि विष्णु वैसे ही सर्वज्ञ हैं जैसे शिव सर्वज्ञ हैं।' जो सर्वज्ञ है उसे पता होगा कि उसकी स्त्री कहाँ गई? जब पता है तो वह पत्तों, वृक्षों, लताओं से क्यों पूछेगा और क्यों रोयेगा इसलिए यह विष्णु नहीं है, फिर–

खोजइ सो कि अग्य इव नारी।
ग्यानधाम श्रीपति असुरारी।।

(रा॰ १/५१–२)

"नारायण तो ज्ञान के धाम हैं, वे कभी अज्ञानी की भाँति स्त्री के लिए रो नहीं सकते।" कहने का अभिप्राय कि राम ब्रह्म तो हो नहीं सकते, ब्रह्म की तो कल्पना ही अलग है लेकिन यह नारायण और विष्णु भी नहीं हैं। क्या नारायण और विष्णु अलग–२ हैं? परम चैतन्य के प्रकाश में ये सब अवस्थायें हैं। प्रथम अवस्था नारायण की और दूसरी अवस्था विष्णु की है। नारायण एक है, विष्णु प्रत्येक लोक का अलग–२ है। जितने ब्रह्माण्ड हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक शिव, एक ब्रह्मा और एक विष्णु होते हैं। अगनित ब्रह्माण्ड हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। जितने ब्रह्माण्ड हैं उतने ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। इन समस्त देवों का जो आदि कारण है, उसे नारायण कहते हैं। नारायण एक है, उस नारायण का जो मूल तत्त्व है, जिससे नारायण प्रकट होता है, वह ब्रह्मा है। उस ब्रह्मा का जो परब्रह्म परमात्मा है, उसी ब्रह्म को परम शिव, परम नारायण, परम विष्णु आदि अलग–२ नामों से पुकारते हैं। शाक्त उस परमतत्त्व को पराशक्ति, शैव उसको परम शिव और वैष्णव उसको महाविष्णु वा परम विष्णु कहते हैं। नारायण, विष्णु, शिव और शक्ति, वह सब कुछ है और वैसे वह कुछ नहीं है। जो कुछ नहीं है, वही सब कुछ है। यह दर्शन का विषय है, फिर कभी समझायेंगे।

यहाँ पर सती कह रही है कि ब्रह्म के होने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता किन्तु यह नारायण भी नहीं, विष्णु भी नहीं, यह तो

सामान्य राजकुमार हैं। शिव और विष्णु किसकी आराधना करते हैं? नारायण की वा विष्णु की? नहीं, वे तो ब्रह्म की आराधना करते हैं। विष्णु और ब्रह्मा भी ब्रह्म की आराधना करते हैं। शिव पुराण में भी इसका वर्णन है। शिव पुराण में भी उसे ब्रह्म कहा गया है, परम शिव कहा गया है। शिव और परम शिव का स्वरूप समझाया गया है, वह परम शिव है और यह शिव है। शिव एक ब्रह्माण्ड में एक होता है जबकि परम शिव सबका आधार एक है। जिसको शिव पुराण में परम शिव कहा गया है, रामायण का वही राम है, विष्णु पुराण का वही महाविष्णु है और श्रीमद्भागवत का वही कृष्ण है अर्थात् उसके अनेकों नाम हैं क्योंकि अनेक रूपों में वही अवतरित होता है। अब यहाँ पर सती सोचती है कि यह न तो विष्णु हैं, न नारायण और ब्रह्म तो हो नहीं सकते। वह मन ही मन सोच रही है किन्तु शिव से प्रकट रूप में कह नहीं सकती–

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी।
हर अंतरजामी सब जानी।।

(रा॰ १/५१–५)

सती ने भगवान् शिव को कहा नहीं किन्तु अन्तर्यामी प्रभु सब कुछ समझ गये। वह पूछने लगे, सती तुम्हें क्या हो गया?

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ।
संसय अस न धरिअ उर काऊ।।

(रा॰ १/५१–६)

हे सती! तुम स्त्री स्वभाव के नाते ऐसा संशय क्यों कर रही हो? यहाँ पर भी कुछ लोग कहते हैं कि जो भगवान् शंकर ने कहा–"सुनहि सती तव नारि सुभाऊ", उन्होंने प्रत्येक नारी को शंका युक्त बना दिया। क्या प्रत्येक नारी शंकायुक्त होती है? इसका समाधान मैने 'नारी तुलसी की दृष्टि में' नामक पुस्तक में किया है। तुलसी की रामायण में जहाँ पर भी आपको नारी निन्दा सुनने वा पढ़ने को मिलती है और जो लोग कहते हैं कि तुलसीदास जी ने स्त्रियों की बड़ी निन्दा की है जैसे–"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी" (रा॰ ५/५८–६) आदि जितनी भी चौपाइयाँ हैं, सभी का समाधान मैंने किया है। उनकी मैंने तत्त्वतः विवेचना की है, समझाया है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि पुरुष शंकालु नहीं होता, वह भी होता है। यहाँ पर–'सुनहि सती तव नारि सुभाऊ' क्यों कह दिया, पुरुष

सुभाऊ क्यों नहीं कहा? क्योंकि नारी की बात थी तो नारी स्वभाव ही कहना था। जिसकी चर्चा है कवि उसी की बात कहता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि पुरुष की अपेक्षा नारी के स्वभाव में अस्थिरता होना सहज है क्योंकि नारी को प्रकृति का प्रतिनिधि कहा जाता है। इसलिए नहीं कि समस्त नारियाँ वैसी होती हैं, ऐसी बात नहीं है किन्तु यहाँ पर सामान्य स्तर की बात कही गई है। भगवान् शंकर के कहने पर भी सती को बात समझ में नहीं आई। शंकर ने समझाया कि राम नारायण नहीं हैं, राम विष्णु नहीं है, यह राम ब्रह्म हैं, इस समय ब्रह्म ने अवतार लिया है। रामचरितमानस में आपको अनेकों अवतारों की कथा मिलेगी, कभी विष्णु, कभी नारायण एवं कभी ब्रह्म अवतार लेते हैं। रामायण में जो कथा है वह मैं आप लोगों को समझा दूँ। जहाँ पर जय–विजय को श्राप मिलता है वहाँ जय–विजय रावण और कुम्भकरण होते हैं, वहाँ पर विष्णु भगवान् अवतार लेकर रावण और कुम्भकरण का उद्धार करते हैं। जहाँ पर नारद के मोह से शिवगण रावण और कुम्भकरण होते हैं वहाँ पर नारायण अवतार लेकर उन शिवगणों का उद्धार करते हैं। जहाँ जालन्धर रावण बनता है, जहाँ पर विष्णु के द्वारा उनकी पत्नी का छल से सत्त्व हरण करते हैं, वहाँ पर विष्णु भगवान् राम रूप में अवतरित होकर जालन्धर का वध करते हैं। किन्तु जहाँ पर मनु–शतरूपा तपस्या करते हैं और परब्रह्म परमात्मा को पुत्र रूप में प्राप्त करने की चाह करते हैं, नारायण, विष्णु को नहीं ब्रह्म को पुत्र रूप में प्राप्त करने की चाह करते हैं, वहाँ राजा प्रतापभानु अपने भाई सहित रावण और कुम्भकरण बनते हैं, तब ब्रह्म स्वयं राम रूप में अवतरित होकर उनका उद्धार करते हैं। मनु और शतरूपा ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को अस्वीकार कर दिया। तुलसीदास जी लिखते हैं–

बिधि हरि हर तप देखि अपारा।
मनु समीप आये बहु बारा।।

(रा॰ १/१४५–२)

विधि–हरि–हर अर्थात् ब्रह्मा–विष्णु–महेश जो ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं, एक बार नहीं अनेकों बार आते हैं।

मागहु बर बहु भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।

(रा॰ १/१४५–३)

किन्तु उनका चित्त विचलित नहीं हुआ, वह तो ब्रह्म की आराधना करते रहे, अन्त में ब्रह्म स्वयं जिसको वासुदेव कहा जाता है, वह वासुदेव प्रकट होकर उनको दर्शन देते हैं और वे प्रार्थना करते हैं कि आप मेरे पुत्र रूप में प्रकट हों। आकाशवाणी होती है–वरदान माँगो। वहाँ पर यही कहते हैं–

जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।।

(रा॰ १/१४६–४,५,६)

वही ब्रह्म अवतरित होकर उनको दर्शन देता है और वही ब्रह्म राम रूप में अवतार लेता है। यहाँ पर शिव ने जिस रूप को देखा था उसी ब्रह्म राम की लीला हो रही है। यह उसी अवतार की कथा है जब मनु और शतरूपा कौशल्या और दशरथ के रूप में प्रकट हुए थे और राजा प्रतापभानु भाई अरिमर्दन सहित रावण और कुम्भकरण रूप में प्रकट हुए थे। उसी समय ब्रह्म राम स्वयं अवतरित होकर यह लीला कर रहे थे, जब शंकर जी ने ब्रह्म राम को "जय सच्चिदानन्द जग पावन" कहा था। सती को यह इसलिए पता नहीं था क्योंकि जब वहाँ चर्चा हो रही थी तो सती ने उस समय ध्यान से सुना नहीं। सती का ध्यान वहाँ नहीं था बल्कि वह तो इस सोच में थी कि यदि राम ब्रह्म हैं तो वे सर्वज्ञ होने चाहिए क्योंकि ब्रह्म सर्वज्ञ है। किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ? भगवान् शंकर के बार–२ समझाने पर भी सती को कुछ समझ नहीं आता। संशय भ्रम में परिवर्तित हो जाता है। संशय में रजोगुण और भ्रम में घोर तमोगुण होता है। संशय में यथार्थ–अयथार्थ का बोध नहीं होता और भ्रम में अयथार्थ को ही यथार्थ मान लिया जाता है–

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।

(गीता १८/३२)

संशय में यह है, यह नहीं है, ऐसा होता है और भ्रम में यही है, ऐसा होता है। अब संशय भ्रम में परिवर्तित हो गया। सती ने निश्चय कर लिया कि शंकर जो कह रहे हैं वह भी झूठ है। यहाँ

पर सती यह बता रही थी कि स्त्री को पति के शब्दों पर विश्वास होना चाहिए। पति–पत्नी का सम्बन्ध विश्वास पर ही अवलम्बित है, जहाँ विश्वास हटा वहाँ सम्बन्ध समाप्त हुआ। यही बात आगे तुलसीदास जी ने और लिखी है–

जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि।।

(रा॰ १/५७ ख)

जल और दूध मिलकर एक ही भाव बिकता है किन्तु यदि उसमें एक बूँद खटाई पड़ जाये तो दूध अलग हो जाता है और पानी अलग हो जाता है। इसी प्रकार से स्त्री और पुरुष के जीवन में यदि कपट रूपी खटाई गिर गई तो दोनों का मन दूध और पानी की तरह अलग हो जाता है अर्थात् दो रूप हो जाते हैं इसलिए भगवान् शंकर के समझाने पर भी जब सती को बात समझ नहीं आई तो भगवान् शंकर ने मुस्कराते हुए एक बात कही–

जौ तुम्हरे मन अति संदेहू।
तौ किन जाइ परीछा लेहू।।

(रा॰ १/५२–१)

यदि तुम्हे सन्देह है तो जाकर परीक्षा ले लो। बात समझ में आ गई कि जाकर परीक्षा लेती हूँ। जब सती परीक्षा लेने के लिए जाने को तैयार होती हैं तो शंकर जी ने कहा–देवि! तुम परीक्षा लेने जा रही हो किन्तु परीक्षा के लिए भी बुद्धि का प्रयोग अनिवार्य है और इस समय तुम्हारी बुद्धि भ्रमित है इसलिए सावधान कर रहा हूँ–

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी।
करेहू सो जतनु बिबेक बिचारी।।

(रा॰ १/५२–३)

जैसे तुम्हारा मोह और भ्रम दूर हो, वही तुम करना किन्तु विवेक से विचार कर करना। जो भ्रम में पड़ा हो उसके पास विवेक कहाँ? यदि विवेक ही हो तो भ्रम क्यों हो, ज़रा विचार कीजिये। किन्तु नहीं, भगवान् का जो कर्तव्य था उन्होंने सावधान कर दिया। जब सती चलती है तो भगवान् शंकर वहाँ एक बात कहते हैं, शायद हिन्दू धर्म इस सत्य को अपने जीवन का आधार स्वीकार करता है। शंकर जी की जो वाणी है हमारे यहाँ अनपढ़ व्यक्ति भी

उस चौपाई को बोलता है। मैं समझता हूँ शत–प्रतिशत लोगों के जीवन का यही आधार है। कौन सी चौपाई जानते हो?

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढावै साखा।।

(रा० १/५२–७)

आप जानते हो शंकर ने कब कहा? जब अपनी पूरी शक्ति लगाकर थक गये, तब उन्होंने दोनो हाथ उठा लिए और कहा–

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।

इसका अभिप्राय यह है कि जब हम अपनी पूरी शक्ति लगाकर कोई काम करने में थक जायें तब हम उस काम को प्रभु पर छोड़ देते हैं। पहले पहल जब सती को मोह या संशय हो गया, उस समय उन्होंने 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' नहीं कहा। उस समय तो "भाँति अनेक संभु समुझावा", भगवान् शंकर ने अनेकों प्रकार से समझाने की कोशिश की। मेरे कहने का अभिप्राय कि जब कोई भी काम आपके सामने आये तो उसे एका–एक भगवान् पर मत छोड़ो। पहले तुम्हें जितनी शक्ति, योग्यता और सामर्थ्य मिली है, उसका सदुपयोग करो। उसके पश्चात् वह काम परमात्मा पर छोड़ दो। बिना उपयोग किये परमात्मा पर कार्य छोड़ देना प्रमाद है। प्रमाद धर्म नहीं अधर्म है, यह रजोगुण का नहीं तमोगुण का कार्य है।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।

(गीता १४/१७)

प्रमोद, मोह और अज्ञानता तमोगुण का कार्य है, उसको अपने जीवन में स्थान नहीं देना चाहिए। वेद कहता है प्रमाद से बड़ा मनुष्य का और कोई शत्रु नहीं है। मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु का नाम वेद की भाषा में प्रमाद है। प्रमाद किसे कहते हैं? मिली हुई शक्ति का प्रयोग न कर परमात्मा की दुहाई देना प्रमाद है। वेद का संदेश है–"न ऋते श्रान्तस्य सहाय देवाः।" जब तक तुम अपनी पूरी शक्ति लगाकर थक नहीं जाते तब तक परमात्मा तुम्हारी सहायता नहीं करते। जब तक तुम्हें जो मिला है उसे खर्च नहीं कर देते तब तक तुम भगवान् से अधिक मांगने के अधिकारी कैसे बनोगे? पहले जो तुम्हारे पास है उसका ईमानदारी से प्रयोग करो, जो तुम्हें मिला है जब उसका पूरी

शक्ति के साथ प्रयोग करोगे तो तुम और माँगने के अधिकारी बनोगे। यदि उससे पूर्व तुम कहो कि भगवान् तुम कर दो, ऐसा नहीं हो सकता। शंकर जी ने निश्चय किया–

मोरेहु कहे न संसय जाहीं।
बिधि बिपरीत भलाई नाहीं।।

(रा॰ १/५२–६)

"मेरे इतने प्रयत्न करने पर भी यदि संशय नहीं गया तो इसमें विधाता ही विपरीत है" क्योंकि भगवान् शंकर तो त्रिभुवन के गुरु हैं–"तुम्ह त्रिभुवन गुरु वेद बखाना", वे ज्ञान स्वरूप हैं। भगवान् शंकर के समझाने पर भी जब सती का मोह नहीं गया तब उन्होंने अपना हथियार डालते हुए हमारी भाषा में हार मानते हुए कहा कि जो भगवान् करेंगे वही होगा और हुआ भी वही। सती राम की परीक्षा लेने के लिए सीता का रूप धारण करती है। एक कामी पुरुष की परीक्षा लेने के लिये इससे बढ़कर और कोई उपाय भी तो नहीं हो सकता है। जिसके लिये वह रो रहा है उसी का रूप धारण करके सामने चले जाओ। क्या होगा? वह दौड़कर पकड़ना चाहेगा। सती सोच रही थी कि जब मैं राम के समक्ष सीता का रूप धारण करके जाऊँगी तो वह हा सीते! कह कर दौड़ेंगे फिर मैं ताली बजाऊँगी और आकर शंकर से कहूँगी कि यही हैं तुम्हारे सच्चिदानन्द किन्तु वहाँ बात कुछ और थी। दूर से सीता के रूप में आती हुई सती को देखकर तुलसीदास जी लिखते हैं–

सती कपटु जानेऊ सुरस्वामी।
सबदरसी सब अंतरजामी।।

(रा॰ १/५३–३)

भगवान् राम मुस्कराये, वाह रे जगदम्बा! तुम्हारी महिमा भी अपार है। उसी क्षण भगवान् ने मुस्कराते हुए आगे बढ़कर सती का स्वागत किया। अभी सती दूर ही खड़ी हैं कि भगवान् ने अपना और अपने पिता दशरथ का नाम लेते हुए प्रणाम किया–

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पिता समेत लीन्ह निज नामू।।

(रा॰१/५३–७)

सती देखकर चकित रह गई कि यह क्या हो गया? वह सोच रही थी कि राम मुझे देखेंगे तो हा सीते! कह कर दौड़ पड़ेंगे

किन्तु यहाँ पर तो उलटी बात हो गई। भगवान् ने हाथ जोड़कर उनसे एक बड़ा मार्मिक प्रश्न कर लिया–

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।।

(रा॰ १/५३–८)

भगवती! भगवान् शंकर कहाँ हैं? आप इस जंगल में अकेले क्यों घूम रही हैं? यहाँ पर भगवान् ने जो सम्बोधन किया है–"कहेऊ बहोरि कहाँ बृषकेतू", वृषभ (बैल) जो है, वह हमारे यहाँ सनातन धर्म में धर्म का प्रतीक माना गया है। उसी को भगवान् शंकर अपनी ध्वजा में धारण करते हैं, इसलिए उनका नाम वृषभध्वज, धर्मध्वज है। भगवान् राम कहते हैं जिसका पति धर्मध्वज है उसकी पत्नी का यह स्वभाव वा कार्य अशोभनीय है, इसलिए वहाँ पर यह सम्बोधन किया, "बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू", वह धर्मध्वज कहाँ हैं? आप किस कारण यहाँ पर अकेले विचरण कर रही हैं? इतना सुनना था कि सती लज्जा से गढ़ गई और समझ गई कि यह तो मेरे से गलती हो गई, भूल हो गई, भ्रम हो गया। हृदय में अब प्रार्थना करती हुई लौटती है कि अब क्या किया जाये? भगवान् ने सोचा कि मैं सती को बता दूँ कि मैं नारायण हूँ या विष्णु हूँ या ब्रह्म हूँ। यह समझाने के लिए भगवान् ने अपनी माया प्रकट की–

सतीं दीख कौतुकु मग जाता।
आगे रामु सहित श्री भ्राता।।

(रा॰ १/५४–४)

सती ने देखा–राम, लक्ष्मन और सीता तीनों चले जा रहे हैं। पुनः–

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा।
सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा।।

(रा॰ १/५४–५)

पीछे देखती है तो राम, लक्ष्मण और सीता तीनों सुन्दर वेश में चले जा रहे हैं–'जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना' जहाँ कहीं देख रही हैं वहाँ प्रभु उसी रूप में लक्ष्मण और सीता सहित विराजमान हैं। वहाँ पर पुनः देखा–

सती बिधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि-२ तन अनुरूप।।

(रा॰ १/५४)

जहाँ भगवान् राम विराजमान हैं वहीं शंकर और सती, वहीं पर ब्रह्मा और सरस्वती, वहीं पर विष्णु और रमा, ये तीनों देवियाँ तीनों देवों के साथ हैं और उनकी सेवा कर रही हैं। सती यह दृश्य देखकर घबरा गई, आगे नहीं बढ़ सकी और वहीं बैठ गई—"नयन मूदि बैठीं मग माहीं", वहीं भयभीत होकर आँख बन्द करके बैठ गई। जब प्रभु ने देखा लिया कि अब इसकी तृप्ति हो गई है, अब यह दया की पात्र हैं। बाद में सती ने जब आँख उघार कर देखा तो तुलसीदास जी लिखते हैं—

कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी।

(रा॰ १/५५—७)

कुछ नहीं देखा, लौट आई। भगवान् शंकर ने पूछा—परीक्षा ले ली? कहा, प्रभु! मैने तो परीक्षा नहीं ली—

कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं।
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं।।

(रा॰ १/५६—२)

प्रभो! जैसे आपने कहा था—जय सच्चिदानन्द जगपावन! वैसे ही जय सच्चिदानन्द जग पावन कह कर कोई परीक्षा नहीं ली। आगे तुलसीदास जी लिखते हैं—

तब संकर देखेउ धरि ध्याना।
सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना।।
बहुरि राममायहि सिरु नावा।
प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा।।
हरि इच्छा भावी बलवाना।
हृदयँ बिचारत संभु सुजाना।।

(रा॰ १/५६—४,५,६)

भगवान् शंकर ने हृदय में निश्चय किया कि अब कुछ नहीं हो सकता। सती का एक अपराध नहीं, पहला अपराध प्रभु की कथा का तिरस्कार, दूसरा प्रभु के दर्शन और उनके स्वरूप का तिरस्कार, तीसरा मेरे में अविश्वास और चौथा मेरे बारम्बार समझाने पर भी उसको स्वीकार न करना। पाँचवा अपराध सीता का वेश बनाकर उनकी परीक्षा लेना और छठा अपराध मेरे पास आकर मिथ्या भाषण करना कि मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। शिव 'कहते हैं इनमें से सारे

अपराध क्षम्य हैं किन्तु एक अपराध अक्षम्य है। वह कौन सा है–

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा।

(रा॰ १/५६–७)

"सती ने जो सीता का रूप बनाया" क्योंकि सीता मेरी माँ हैं। सती ने मेरी माँ का रूप धारण किया, चाहे परीक्षा लेने के लिए ही सही, सीता का रूप तो बनाया। अपने इसी रूप को माँ के रूप में परिणत किया होगा, यह रूप जो माँ के रूप में एक बार परिणत हो चुका है, मैं उसे पत्नी रूप में कैसे स्वीकार कर लूँ? यह प्रश्न खड़ा हो गया–

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा।
सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा।।
जौं अब करउँ सती सन प्रीती।
मिटइ भगति पथु होइ अनीति।।

(रा॰ १/५६–७,८)

अनर्थ हो जायेगा, जिस सती ने माँ सीता का रूप धारण किया और पुनः वह सती बनी। सती को यदि मैं इस शरीर से प्यार करूँ तो अपमान है। निश्चय कर लिया–

एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।
सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं।।

(रा॰ १/५७–२)

भगवान शंकर कहते हैं, "हे भवानी! अब मैं इस शरीर में तुम्हें प्यार नहीं कर सकता।" सती का त्याग नहीं है, उसके शरीर का त्याग है। सती रूप में जो भगवती है उसका त्याग है; यदि सती का त्याग कर देते तो अनर्थ हो जाता। भगवान् शंकर जानते हैं–

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु।।

(रा॰ १/५६)

सती अन्दर से तो पवित्र हैं क्योंकि उनके हृदय में राम के प्रति प्रेम तो उमड़ा नहीं। राम की परीक्षा लेने के लिए ही उन्होंने सीता का वेश बनाया था; किसी दूसरी भावना से नहीं। उन्होंने तो केवल अपने भ्रम को दूर करना था किन्तु भगवान् शंकर के इतना कहने पर भी कि तुम विवेक से विचार कर परीक्षा कर लेना, बुद्धि

और विवेक का प्रयोग न करने के नाते बुद्धि स्वरूपा स्वयं सती भगवान् शिव के द्वारा त्याग दी गई। धर्म और अधर्म का निर्णय बुद्धि वा विवेक के द्वारा होता है। यदि बुद्धि भ्रमित हो गई तो मनुष्य धर्म और अधर्म का निर्णय नहीं कर पाता। ऐसी अवस्था में वह शिव के द्वारा अथवा धर्म और कल्याण के द्वारा त्याग दिया जाता है, यही परिणाम सती का होता है। पश्चात् सती उस दुःख से कितनी पीड़ित हुई, यह लम्बी कथा है। बाद में वही सती अपने शरीर को पिता के उसी यज्ञ कुण्ड में त्यागती हैं। उस समय यही कहती हैं–'दच्छ सुक्र संभव यह देही', मेरा यह शरीर दक्ष के शुक्र से पैदा हुआ है–

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चंदमौलि बृषकेतू।।

(रा॰ १/६४–७)

"इसलिए मैं इस शरीर का तुरन्त त्याग करूँगी।" इस भावना से सती ने अपने शरीर का त्याग किया। इससे आप समझ गये होंगे कि बुद्धि की ओर से तनिक प्रमाद करने से सर्वनाश का कारण बन गया। गीता का सिद्धान्त है–

संशयात्मा विनश्यति। (गीता ४/४०)

उस संशय का उदय सती के हृदय में हुआ और अंत में उस शरीर का नाश हुआ। इससे पूर्व शान्ति नहीं मिली। उन्होंने अपने आपको शुद्ध करने के लिए घोर तप का आश्रय लिया क्योंकि उन्हें पता था कि पिता के संस्कारों ने ही हमारे में दोष उत्पन्न किया। अहंकारी दक्ष की पुत्री होने के नाते ही अहंकार ने उनके यथार्थ ज्ञान को आवृत किया। इसलिए अब जो शरीर मिला है, इस के द्वारा घोर तप करके उस दोष का मार्जन करना है। तब पार्वती को आकाशवाणी होती है–'करहि जाइ तपु सैलकुमारी,' हे शैल पुत्री! तुम जाकर तप करो क्योंकि–

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तपबल संभु करहिं संघारा।
तपबल सेषु धरइ महिभारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी।।

(रा॰ १/७३–३,४,५)

तपस्या के द्वारा ही तुम्हारा शुद्धिकरण होगा। घोर तपस्या के परिणामस्वरूप भगवान् शंकर उन्हें अपना लेते हैं और पुनः वह पावन होकर जगत् जननी, जगदम्बा के पद पर प्रतिष्ठित होती हैं। मुझे आप लोगों को यह बताना था कि उमा, सती और पार्वती के चरित्र से हमें यह पता चलता है कि तप के अभाव में यदि दैवी शक्ति भी संसार में प्रकट हो जाये तब भी उसमें कुछ मात्रा में दोष आ ही जाता है। मैंने अपनी पुस्तक में संकेत किया है—

काजल की कोठरी में कैसेहु सयानो जाये।
काजल की एक लीक लागी है पै लागी है।।

"यदि चतुर व्यक्ति काजल की कोठरी में चला जाये तो उसको भी कहीं काजल छू ही जायेगा।" मेरे दोस्तो! इस संसार में हम आये हैं इसलिए धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझ लें। धर्म का प्रयोजन केवल इतना है कि आप विवेक के प्रकाश में अपनी शुद्धि करें। धर्म तपोमय है, उसमें यम और नियम दोनों मूल आधार हैं, इसके बिना व्यक्ति तपस्वी नहीं बन सकता। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पाँच यम हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं, जिनकी वृहद व्याख्या मैने अपनी एक "जीवन विज्ञान" नाम की पुस्तक में की है। उसमें मैंने बताया है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय क्या हैं? आप इनका विवेचन समझिये। इसको समझकर यदि आप अपने जीवन को तदनुसार तपोमय बनाते हैं तो तप के द्वारा आपकी शुद्धि हो जायेगी और शुद्धि से ही आपकी बुद्धि पवित्र होगी। पवित्र बुद्धि के द्वारा ही आपको विवेक की उपलब्धि होगी। तब विवेक का प्रयोग कर आप धर्मात्मा बनोगे किन्तु जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई वह महान तपस्वी होते हुए भी राक्षस बनता है। रावण, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध और बाणासुर, इन सबने तपस्या कम नहीं की थी, सभी बड़े तपस्वी थे किन्तु इनकी बुद्धि अशुद्ध थी। अशुद्ध बुद्धि के नाते ही ये राक्षस हुए। यदि आप शुद्ध बुद्धि से, निष्काम भाव से और केवल एक परमेश्वर को लक्ष्य रख कर तपस्या करेंगे तो अपकी बुद्धि शुद्ध होगी और शुद्ध बुद्धि से आप धर्म का रास्ता अपनायेंगे। अभी तो आप जीवात्मा हैं पुनः आप धर्मात्मा बनेंगे, धर्मात्मा के बाद आप महात्मा बनेंगे, महात्मा के बाद आप विश्वात्मा बनेंगे और शरीर छोड़ने के बाद आप परमात्मा बनोगे। विकास का यही क्रम है। मनुष्यता से आप आगे बढ़ें। मनुष्य

जीवन में जीते जी आप में परमात्मा का प्रकाश होगा, अवतरण होगा इसलिए शास्त्र ने कहा है–

न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित।

मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। क्यों नहीं है? मनुष्य शरीर में २४ तत्त्व हैं और इसी में बुद्धि का प्रकाश है। बुद्धि का प्रयोग करके आप जीवात्मा से धर्मात्मा, महात्मा, विश्वात्मा ही नहीं परमात्मा भी बन सकते हैं। जब पूर्ण शक्ति का अवतरण होगा तो जीते जी परमात्मा के अवतार कहे जायेंगे। इस शरीर को छोड़ने पर आप परमात्म स्वरूप हो जायेंगे, यही धर्म का प्रयोजन है। धर्म विकास की प्रथम सीढ़ी है। धर्म विकास की प्रथम सीढ़ी कैसे है? इसकी व्याख्या कल आपको समझाऊँगा। शिवपुराण का सती वा पार्वती चरित्र यानी इन दोनों चरित्रों का सार मैंने आप लोगों को समझा दिया। सती चरित्र में तपस्या के अभाव में मल का शोधन नहीं हुआ था, इसलिए अहंकारवश सती ने अपने आपको उस अवस्था में लाकर खड़ा कर दिया जो कि किसी भी नारी के लिए आदर्श नहीं कहा जा सकता। वही सती जब पार्वती रूप में अवतरित होती है तब तप के द्वारा अपने आपको निर्मल बनाकर, उस पद पर प्रतिष्ठित होती हैं जहाँ से आज विश्व भर की नारियाँ गिरिजा वा गौरी को अपना आदर्श मानती हैं, वह विश्व के लिए आदर्श हैं, विश्ववंदिता हैं। कोई भी नारी बिना गौरी पूजन के पातिव्रत पालन में असमर्थ होती है। इसमें मूल कारण शोधन है जो तप से होता है और तप निष्ठापूर्ण हो। निष्ठा किसमें हो? भगवान् शिव में। राक्षसों ने वर प्राप्ति के लिए, अमर होने के लिए, त्रैलोक विजयी होने के लिए तप किया। पार्वती ने तप किया शिव को पाने के लिए। उसी रूप में जब आपकी तपस्या एक निष्ठ होगी, शिवनिष्ठ होगी, इसके अतिरिक्त जब आपको कुछ नहीं चाहिए तब आप में विशुद्ध बुद्धि का प्रकाश होगा, फिर आप धर्म–अधर्म का निर्णय करते हुए विकास की दिशा में आगे बढ़ेंगे। यही सनातन धर्म का दिव्य संदेश है और यही संदेश हमें शिवपुराण से प्राप्त होता है। आगे की कथा कल आपको सुनायेंगे। अब यहीं अपने विचारों को विश्राम देंगे। प्रभु से प्रार्थना है कि वह आपको धर्म बुद्धि दे जिससे आप कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ सकें।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

१६/२/८२, हालैण्ड

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

आज हमारे इस ज्ञानयज्ञ का नवां दिन है। करुणानिधान भगवान् की अकारण अनुकम्पा हम आप सभी पर है जिससे उनके परम–पुनीत, पवित्र, पतित–पावन चरित्र का चिंतन, श्रवण एवं मनन कर रहे हैं–

अति हरि कृपा जाहि पर होई।
पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।

(रा॰ ७/१२६–४)

प्रभु की जब अत्यन्त कृपा होती है तब इस दिशा में मनुष्य का पग आगे बढ़ता है। जो प्रभु कृपा के पात्र नहीं हैं, उनके लिए प्रभु की पतित पावनी गाथा को सुनना और समझना असम्भव है, इसलिए आप सभी प्रभु कृपा के पात्र हैं जो उनकी पवित्र गाथा को सुनने के लिए अपना समय और अपने श्वासों को उसमें समर्पित कर रहे हैं। शिवपुराण सात संहिताओ में विभक्त है। आज हमारे पाठ क्रम में शिवपुराण की सातवीं संहिता जिसे वायवीं संहिता कहते हैं, वह प्रारम्भ हुई है। इसके प्रारम्भ में एक बार ऋर्षियों ने आपस में मिलकर विचार किया कि हमारे जीवन का कारण, इस जगत् का कारण और अनन्त ब्रह्माण्डों के आविर्तिरोभाव का कारण कौन है? क्या त्रिदेव हैं अथवा इनसे से परे भी कोई है? ऋषियों ने अपने भिन्न–भिन्न मत व्यक्त किये किन्तु समाधान नहीं हुआ। समाधान न होने पर समस्त ऋषियों ने निश्चय किया कि हमें लोक–पितामह ब्रह्मा के पास चलना चाहिये। इस जगत् और जीवन का आधार वा कारण कौन है? सभी ऋषि मिलकर ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मदेव से प्रार्थना की 'हे प्रभो! आप ही जगत् के स्रष्टा हैं, आपके द्वारा ही जगत् की उत्पत्ति होती है, पालन और प्रलय में भी आप ही कारण हैं और आप ही त्रिमूर्ति के रूप में प्रकट हैं इसलिए हम सब आपकी शरण में आये हैं, आप हमारे संशय का समाधान कीजिये। ब्रह्मदेव

ने पूछा–ऋषियो! तुम क्या जानना चाहते हो? ऋषियों ने अपना प्रश्न उपस्थित किया–प्रभो! हम सब इस संदेह में हैं कि सृष्टि का मूल आधार कौन है? हम तो केवल आपको ही देख सकते हैं, जान सकते हैं। आप ही त्रिदेव हैं या आप से परे भी कोई तत्त्व है जो इस सृष्टि का कारण है? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मदेव गंभीर हो गये, उनका शरीर पुलकित हो गया, आँखों में अश्रु भर आये और गद्गद् हृदय से उन्होंने एक शब्द उच्चारण किया 'रुद्र'। संकेत था कि हम देवों के भी जो आधार हैं वह रुद्रदेव हैं। ऋषियों ने कहा–प्रभो! हम आपकी बात समझे नहीं। रुद्र के विषय में आप जो संकेत कर रहे हैं, क्या वह यही रुद्र नहीं है या इससे भी परे और कोई रुद्र है? एक तो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अर्थात् त्रिदेवों में रुद्र हैं। आप जिसका संकेत कर रहे हैं, वह रुद्र कौन है? ब्रह्मदेव ने कहा–ऋषियो! उस परम तत्त्व का ज्ञान बिना तपस्या के नहीं होता। जो तपस्या के अभाव में उस परम तत्त्व के विषय में सुन लेता है, उसके चित्त में बात स्थित नहीं होती, इसलिए बहुत काल तक तपस्या करनी पड़ेगी। प्रभो! तपस्या के लिए उत्तम स्थान कौन सा है?

ब्रह्मदेव ने एक चक्र उठाया और कहा कि मैं यह चक्र पृथ्वी पर फैंक रहा हूँ। यह चक्र जहाँ पर जाकर विखंडित हो जाये वा टूट जाये, उसी स्थान को तुम परम पवित्र स्थान समझना और वहाँ पर तुम हज़ार वर्ष के लिए एक यज्ञानुष्ठान करना। तुम्हारा यज्ञ जब पूर्ण होने लगेगा तो उस समय मेरे एक प्रिय शिष्य वायु वहाँ आयेंगे, वही तुम्हें तत्त्व ज्ञान का वा रुद्रतत्त्व का बोध करवायेंगे। इतना कहते हुए ब्रह्मदेव ने उस चक्र को पृथ्वी पर फेंका। ऋषि लोग उसी चक्र का अनुसरण करते हुए भूतल पर आये। वह चक्र वन में कई योजन विस्तार वाले एक सुन्दर नदी के तट पर जाकर गिरा, जहाँ का जलवायु परम पवित्र एवं स्वच्छ था। जब ऋषियों ने आकर उस रमणीक वन को देखा तो उनका मन वहाँ रम गया। वहाँ पर समस्त ऋषियों ने मिलकर एक हज़ार वर्ष के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया। जहाँ पर ब्रह्मा के द्वारा फैंका हुआ वह चक्र गिरा था, उसको चक्रतीर्थ कहते हैं। जहाँ चक्र की नेमी जाकर टूटी थी इसलिए उस स्थान का नाम नैमिष पड़ा, जिसे चक्र तीर्थ नैमिष कहते हैं। जिस वन में वह गिरा था उसका नाम नैमिषारण्य पड़ा।

नैमिषारण्य ही चक्रतीर्थ है। वह परम पुनीत स्थान लखनऊ से पश्चिम और उत्तर की ओर पड़ता है। वहाँ एक सीतापुर जिला है, इसके बगल में एक नैमिषारण्य स्थान है, जहाँ से गोमती नाम की गंगा प्रवाहित होती है। गोमती नाम की गंगा के तट पर वह चक्रतीर्थ आज भी है। भारत के करोड़ों लोग उस तीर्थ में जाकर स्नान करते हैं, जहाँ पर ऋषियों ने दीर्घकाल तक तपस्या की थी। जहाँ पर बाद में अठासी हज़ार ऋषि शौनकादि ब्रह्मापुत्रों के साथ रहकर बहुत दिनों तक यज्ञ किये थे और यहीं पर सूत जी ने अपने पुराणों की व्याख्या की थी। वह नैमिषारण्य परम पुनीत पतित पावन तीर्थ है, वह यज्ञ भूमि एवं तपोभूमि है। उस भूमि पर ऋषियों का जब एक हज़ार वर्ष का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ तो वहाँ वायुदेव पधारे। वायुदेव को देखते ही ऋषियों ने उनके चरणों में प्रणाम किया और प्रार्थना की भगवन्! ब्रह्मा के वरदान एवं उनके निर्देशानुसार हमने हज़ार वर्ष का यज्ञ सम्पूर्ण किया। उनके वरदानानुसार आपके आगमन की प्रतीक्षा थी, आप हमारे मध्य में पहुँच गये, अब कृपा करके आप हमें रुद्र तत्त्व का बोध कराइये। यहाँ से वायवी संहिता प्रारम्भ होती है।

भगवान् वायुदेव ऋषियों को रुद्र तत्त्व का बोध प्रदान कर रहे हैं। इस बोध में, इस विज्ञान में उन्होंने मूलतः तीन बातों पर प्रकाश डाला है–पशु, पाश और पति। पशु, पाश और पति, ये शैव सिद्धान्त के तीन मूल तत्त्व हैं। आप लोगों ने सुना होगा कि भगवान् शिव का एक नाम पशुपति भी है। पशुपति क्यों कहे जाते हैं? पशु किसे कहते हैं? पहले यदि इसको समझ लें तो पशुपति को भी समझ लेंगे। पशु माने जीव, हम आप सभी पशु हैं। जीवों को पशु क्यों कहते हैं? कारण क्या है? जीवों को पशु इसलिए कहते हैं कि वह पाश से बंधा हुआ है। पाश क्या है? अब आप इसे समझिये। पाश है कर्म वा प्रकृति। प्रकृति को पाश कहते हैं, जीवों को उससे बंधे होने के नाते पशु कहते हैं और ईश्वर को पशुपति कहते हैं क्योंकि वह जीवों को पाश से छुड़वाता है और पाश में बाँधने का भी वही कारण बनाता है। जैसे पशुपति, पशुओं का स्वामी अपने पशुओं को बाँधता और छोड़ता है, इसमें वह स्वतन्त्र है, इसी रूप से वह परमेश्वर भी इसमें स्वतन्त्र है। यह जीव रूपी पशु माया के पाश में, कर्म की रस्सियाँ से बंधा हुआ है, इससे छूटने का एक ही

उपाय है पशुपति की उपासना वा उसकी प्रार्थना। शैव सिद्धान्त का यही सार है। पाश के कितने भेद हैं, आप लोगों को बता रहा हूँ। पशु की भी कितनी प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, इसको भी आप लोग बड़ी सावधानी से सुनें और समझें, इससे आपका हित होगा। जिस विज्ञान की मैं व्याख्या करने जा रहा हूँ, यह वेदान्त का सार हैं।

हमारे यहाँ मूलतः, तत्त्वतः दो प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हैं, एक शैव सिद्धान्त और दूसरा वैष्णव। इनके सिद्धान्तों में कोई भेद नहीं है, केवल नाम मात्र का भेद है। साधना की प्रक्रिया भी समान है। पहले एक दिन मैंने आप लोगों को बताया था कि शिव ज्ञानस्वरूप और विष्णु प्रेमस्वरूप हैं। शैव लोग विशेष रूप से ज्ञान प्रधान साधना और वैष्णव लोग विशेष रूप से प्रेम प्रधान साधना करते हैं। जो लोग ज्ञान प्रधान साधना करते हैं, उनमें प्रेम नहीं होता, ऐसी बात नहीं है प्रेम उनमें गौण होता है। कहने का अभिप्राय शैव सिद्धान्त में ज्ञान की प्रधानता है, प्रेम और क्रिया, ये दोनों उसमें सहायक होते हैं और वैष्णव सिद्धान्त में प्रेम की प्रधानता है, ज्ञान और वैराग्य उसके सहायक होते हैं, दोनों में इतना अन्तर है। साधना की प्रक्रिया में अन्तर है, साध्य में कोई अन्तर नहीं। यह मैं आप लोगों को पूर्व में भी बता चुका हूँ कि वही परमात्मा विष्णु है और वही परमात्मा शिव है। इसलिए यहाँ पर शैव सिद्धान्त की व्याख्या आप लोगों को समझा रहा हूँ। पहले आप पाश को समझ लीजिये। इसके पाँच भेद हैं– विद्या, कला, राग, काल और नियति, इन पाँचों के द्वारा ही जीव इस पाश में बंधता है।

विद्या किसे कहते हैं? ज्ञान को। शिव सूत्र में बताया गया है–'ज्ञानो बन्धः' ज्ञान ही बन्धन का कारण है, आपको सुनकर, आश्चर्य होगा। आप कहोगे कि ज्ञान तो मुक्ति का कारण है, शिव सूत्र ज्ञान को बन्धन का कारण क्यों बता रहा है? शिव सूत्र में मुक्ति का कारण ज्ञान नहीं बल्कि विज्ञान बताया गया है। यहाँ पर ज्ञान और विज्ञान में अन्तर बताया है कि ज्ञान सामान्य ज्ञान और विज्ञान विशेष ज्ञान है। सामान्य ज्ञान हम सबमें है, यदि हम सबमें सामान्य ज्ञान न हो तो हम आप कभी भी बन्धन में न पड़ें, इसके अतिरिक्त तो कोई बन्धन नहीं है। श्री मद्‌भागवत में प्रसंग आया है कि दुनिया में दो ही सुखी हैं–कौन? पूर्णज्ञानी या पूर्ण अज्ञानी। पूर्ण अज्ञानी भी सुखी है, कैसे? घर में क्या हो रहा है, इससे एक छोटे

शिशु को कोई मतलब नहीं। माँ ने ह्रदय से लगाकर स्तन का दूध पिला दिया, वह मस्ती में खेल रहा है। घर में कोई मर रहा है अथवा जी रहा है, उससे उसका कोई मतलब नहीं क्योंकि पूर्ण अबोध है। तो पूर्ण अज्ञानी को भी दुनिया में दुःख नहीं, उसको दुःख तभी है जब उसे भूख लगेगी तो वह रोयेगा क्योंकि उसे भूख का ज्ञान है? जितनी मात्रा में उसे ज्ञान है, उतनी मात्रा में उसे दुःख होगा, उससे अधिक दुःख नहीं होने का। किन्तु एक बात याद रखो, आप पूर्ण अज्ञानी नहीं बन सकते। मनुष्य पूर्ण अबुध नहीं हो सकता। अबुध क्यों नहीं होता? अल्प बुध होना उसका स्वधर्म है, सहज स्वभाव है। इसी को अल्पज्ञ कहते हैं। जीव अल्पज्ञ है, ईश्वर सर्वज्ञ है और प्रकृति अज्ञ है। अल्पज्ञ जीव अपनी अल्पज्ञता के नाते ही प्रकृति से बंधता है और जिस अल्पज्ञता के नाते उससे बंधता है, इस अल्पज्ञता को ही विद्या कहते हैं। पाशुपत धर्म में उस अल्पज्ञता का ही नाम ज्ञान है। आपके पास यदि ज्ञान न हो तो वस्तु को प्राप्त करने की चाह होगी आपको? आपकी क्या राय है? आपको ज्ञान न हो तो जो वस्तु स्वादयुक्त होगी उसको प्राप्त करने के लिए आप दौड़ेंगे? आप उसी वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं जिसका आपको ज्ञान होता है।

ज्ञान दो प्रकार का है—श्रुत ज्ञान और दृश्य ज्ञान अर्थात् सुना और देखा हुआ ज्ञान। देखने और सुनने के बाद अनुभव होता है। अनुभूत ज्ञान तो किसी–किसी को होता है। अनुभूत ज्ञान से तो आप सजग हो जाते हैं किन्तु श्रुतज्ञान और दृश्यज्ञान आपको क्रिया में प्रवृत्त करता है इसलिए अल्पज्ञान अथवा थोड़ा ज्ञान ही आपके दुःख का कारण है। शैव दर्शन कहता है कि आप अल्पज्ञान को हटा तो सकते नहीं और पूर्ण अज्ञानी नहीं बन सकते हैं, यह असम्भव है। आप जब मिट्टी बन जाओ तभी हो सकता है। मिट्टी आप बन नहीं सकते क्योंकि आप जड़ नहीं हैं। आप पशु हैं, पाश नहीं हैं। इसलिए आप में ज्ञान तो होगा, उस अल्पज्ञान को आप वृहद् कर सकते हैं, विस्तृत कर सकते हैं। अल्पज्ञ से आप सर्वज्ञ हो सकते हैं किन्तु अज्ञ नहीं हो सकते। कहने का अभिप्राय मनुष्य चेतन है इसलिए वह परम चैतन्य हो सकता है किन्तु जड़ नहीं हो सकता। जीव सर्वथा ज्ञान हीन हो जाये, ऐसा हो नहीं सकता, असंभव है क्योंकि जीव का सहज स्वभाव ज्ञान है। तुलसीदास जी

ने अपनी रामायण में लिखा है–

हरष बिषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना।।

(रा॰ १/११६–७)

हर्ष–विषाद, ज्ञान–अज्ञान, अहं और अभिमान, ये जीव के धर्म हैं, इसलिए जीव ज्ञान रहित नहीं हो सकता। फिर क्या हो सकता है? अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है। जब वह अल्पज्ञ से सर्वज्ञ हो जायेगा तो वह पाश से मुक्त हो जायेगा। यही दर्शन शास्त्र वा शैव सिद्धान्त का प्रयोजन है, कथन है कि तुम अपनी अल्पज्ञता को दूर करो। कैसे करो? उस सर्वज्ञ के साथ एक होकर ही तुम अपनी अल्पज्ञता को दूर कर सकते हो,अन्य कोई रास्ता नहीं है। यहाँ पर विद्या अल्पज्ञान का नाम है, इसके द्वारा पदार्थ का बोध वा ज्ञान होता है।

विद्या के पश्चात् दूसरा कला है। कला के द्वारा क्या होता है? उस पदार्थ को पाने के लिए क्रिया। ज्ञानात्मक शक्ति का नाम विद्या है और क्रियात्मक शक्ति का नाम कला है। जब आप किसी वस्तु के विषय में जान गये कि यह वस्तु है तब प्राप्त करने के लिए आपने जो कर्म या विधि का आयोजन किया उसका नाम कला है। इसीलिए गीता में कहा गया है–'योगः कर्मसु कौशलम्' उस कला में जो कुशल है, वह योगी हो जाता है किन्तु उसके बाद तीसरा एक और स्वरूप है–राग। राग आपको प्रेरित करता है उस पदार्थ को प्राप्त करने के लिए, पाने के लिए और भोग में प्रवृत्त होने के लिए। तो भोग के स्वाद का ज्ञान विद्या और भोग्य पदार्थ को पाने के लिए प्रयत्न कला और भोग में राग और उस कला को नियन्त्रित करने वाला है काल वा समय। इसलिए समय से आप इधर–उधर नहीं हो सकते, उस काल से आप इधर–उधर नहीं हो सकते। विद्या, कला, राग और काल, जिस काल में आप आबद्ध होकर विषय वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उस काल के आपके प्रयत्न को, आपके भोग की वृत्ति को, सबको, नियन्त्रण में रखने वाली शक्ति को नियति कहते हैं। पाश के पाँच भेद हैं–ज्ञान, कर्म, राग, काल और नियति। इन्हीं के बन्धन में पड़कर आप घूम रहे हैं। इसी दर्शन शास्त्र के सिद्धान्त को रामायण

की चोपाई में तुलसीदास जी ने बताया–

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।

(रा॰ ७/११७–२)

जीव ईश्वर का अंश है; जैसे सूर्य की किरणें है ऐसे ही हम आप सभी परमात्मा की किरणें हैं किन्तु–

सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।

(रा॰ ७/११७–३)

जीव कैसे बन्धता है तो तुलसीदास जी लिखते हैं–

आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।

(रा॰ ७/४४–४,५)

काल, कर्म, स्वभाव, गुण, इनमें एक नियति और जोड़ लो, इनके घेरे में पड़कर जीव चक्कर काट रहा है, बड़े दुःख की बात है। अन्धा आदमी चार दिवारी के अन्दर चला गया, जहाँ बाहर निकलने के लिए केवल एक ही द्वार है और वह भी बहुत सकरा सा दरवाज़ा है। वह अन्धा वहाँ चिल्ला रहा है कि कोई मुझे यहाँ से निकाल दो। कोई दयालु आकर उसे कहता है, बाबा! क्या चाहता है? वह कहता है–मैं इस घेरे से बाहर जाना चाहता हूँ। उस दयालु व्यक्ति ने कहा–तू बाहर जा सकता है किन्तु इस घेरे में केवल एक ही दरवाज़ा है, उस दरवाज़े तक जब तुम पहुँचोगे तभी बाहर जा सकते हो। दरवाज़े को तुम देख नहीं सकते क्योंकि आँख तुम्हारे पास नहीं है। कहा–फिर कोई उपाय? उपाय एक ही है, दीवार को पकड़कर तुम चलते जाओ, जहाँ दरवाज़ा आयेगा वहाँ तुम्हारा हाथ अपने आप बाहर की ओर चला जायेगा और दरवाज़े को पकड़कर तुम बाहर चले जाना। अन्धे ने कहा–बहुत अच्छी बात। वह दीवार पकड़कर चला जा रहा था, जब दरवाज़ा आने ही वाला था तो उसे शरीर में खुजली होने लगी। उसने सोचा–पता नहीं दरवाज़ा कहाँ होगा? वह दीवार छोड़कर खाज खुजलाने लगा, खुजलाते हुये दो कदम आगे बढ़ा, हाथ बढाया, दीवार फिर आ गई, दरवाज़ा बीच से

निकल गया। जब वह खाज खुजला रहा था तभी दरवाज़ा निकल गया। यह बात एक बार नहीं हुई, जब भी वह दरवाज़े के सामने आता है तभी उसको खुजली हो जाती और खाज खुजलाते हुए चार कदम बढ़ता तो दरवाज़ा पीछे चला जाता। थककर हार गया, चीख पड़ा और बोला, कोई मुझे बाहर निकालने वाला नहीं है। उस दयालु ने कहा, भई! मैंने तुम्हें बताया तो था। कहता है—मैं तो सदैव दीवार को पकड़े ही जा रहा हूँ, मेरे को कभी दरवाज़ा मिला ही नहीं। उसने कहा ऐसा कभी हो नहीं सकता। दरवाज़ा एक बार नहीं कई बार आया। कहा, कब आया? कहा, जब तू खाज खुजलाने में लग जाता है तब आया। खाज खुजलाने का अपना ही मजा होता है। आपको मजे की बात सुना दूँ। शायद तुम सभी जानते होंगे। एक शायर ने कहा है—

न मन्दिर में न मस्जिद में न बुतखाने में पाया है।
मज़ा जो आज मुझको खाज खुजलाने में आया है।।

खाज खुजलाने में मज़ा लेने पर दरवाज़ा बीच से निकल जाता है। यह बात हँसने की नहीं, मेरे विचार से हम सबके लिए रोने की है। तुलसीदास जी से पूछा गया—वह खाज क्या है जिसको खुजलाने में दरवाज़ा निकल जाता है? तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं—

ममता दादु कंडु इरषाई।
हरष विषाद गरह बहुताई।।

ममता ही ददरी है। ममता को समेटना ही खाज को खुजलाना है। उस ददरी को खुजलाना है। अपना जीवन किसमें जाता है? जब उस घेरे में चलते–चलते हम उस सकरे दरवाज़े के पास आते हैं। वह सकरा दरवाज़ा कौन सा है, जानते हो? यह मनुष्य शरीर और ८४ लाख योनियाँ ही बड़ा घेरा हैं। तुलसीदास जी ने लिखा—

फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।

(रा॰ ७/४४–५)

इस काल, कर्म, स्वभाव और गुण के द्वारा निर्मित बड़े घेरे में जीव चक्र काट रहा है, चीखता, पुकारता है। प्रभु दया करके उसे मनुष्य शरीर दे देते हैं और जीव को बताते हैं कि केवल एक मनुष्य शरीर है यदि तू उस दरवाज़े पर पहुँचा तो बाहर निकल जायेगा, यदि वहाँ तू गफलत में हो गया तो वही चक्र और वही घेरा

बना रहेगा। तुलसीदास जी से पूछिए वह बतायेंगे यह क्या है?

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

(रा॰ ७/४३–८)

यह मोक्ष का द्वार है, उस घेरे से बाहर निकलने का रास्ता है, दोस्त! किन्तु क्या होता है? जब इस द्वार के सामने हम आते हैं तो 'ममता दादु कंडु इरषाई' ममता रूपी दाद को खुजलाने लगते हैं। ममता में ही पड़कर अपना सर्वनाश कर लेते हैं। किसके लिए? जो हमारे किसी काम नहीं आते, उनके लिए हम अपना सर्वनाश कर डालते हैं। वे हमारे न जीते जी काम आयें और न मरने पर काम आयेंगे। ऐसे लोगों की तृप्ति के लिए ही हम कर्म में लग जाते हैं और इतने में ही दरवाज़ा निकल जाता है। यह द्वार कब निकल जाये, कुछ पता नहीं। क्या निश्चित है? इसी शिवपुराण में समझाते हुए कहा कि मनुष्य जिस परिवार के लिए जीवन का इतना महान अवसर खो देता है, उस परिवार की स्थिति क्या है? कहते हैं–जैसे महान सागर में बहते हुए लकड़ी के टुकड़े कभी मिलकर इक्ट्ठे हो जायें और बहाव आया तो बिखर जायें। मैं आपको बता रहा था कि इसी प्रकार से हम एक परिवार के रूप में परिणत हो जाते हैं और प्रकृति के प्रवाह में पता नहीं कहाँ से कहाँ चले जाते हैं? पता नहीं कौन और कब अलग हो जाये। भगवान् बुद्ध ने कहा–जितने प्रिय जन हैं, इन सबका एक न एक दिन अवश्य वियोग होगा। कुछ को हम छोड़ जायेंगे और कुछ हमें छोड़ जायेंगे। जो हमें छोड़ जायेंगे, उनके लिए हम रोयेंगे और जिनको हम छोड़ जोयेंगे वो हमारे लिए रोयेंगे। क्या कमाल की बात है?

महाभारत की एक कथा है–यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया था, "किं आश्चर्य इति अस्मिन् संसारे।" इस दुनिया में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर कहते हैं–

अहनि अहनि भूतानि गच्छन्ति यमालयम्।

हम देखते हैं कि हमारे सामने बुहत से लोग नित्यप्रति यमपुरी को जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे सोचते हैं कि हम कभी मरेंगे ही नहीं, इससे बड़ा कोई आश्चर्य हो सकता है? हमारे सामने संसार मरता चला जा रहा है, हम सोचते हैं हमने तो मरना

नहीं। यदि अल्प समय के लिए मृत्यु याद आ भी जाये तो मसानिया वैराग्य होता है कि दुनिया में यही होना है किन्तु होना कब है? वह कहता है कि जब होगा तो देखेंगे, जीते जी क्यों मरें? कबीरदास जी ने कहा–

हम देखें जग जात है जग देखे हम जात।
आपन ठाढ़े राह में औरन को पछतात।।

हाय–हाय बेचारा मर गया, अरे तुम कौन सा अमर होने आये हो? वह तो मर गया, तू भी तो एक दिन मरेगा। जो मर गया उसके लिए तो आँसू बहा रहा है, तू अपने लिए क्या कर रहा है? अपना तो बता, तू सदा के लिए मरने से छूटने की कोशिश कर रहा है? यदि नहीं कर रहा तो ऐसे तुम्हें हज़ार बार मरना पड़ेगा। अब तक मरते आये हैं और फिर भी मरते रहेंगे। मैं आपको बता रहा था कि यही एक दरवाज़ा है, इस द्वार पर यदि हम खुजलाहट करना बन्द कर दें और दीवार को पकड़े रहें तो मेरे दोस्त! हम पार हो सकते हैं, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। उस खुजलाहट से मुक्ति कैसे हो? ममता इतनी प्रबल होती है–"ममता केहि कर जस न नसाई।" इसको एकाएक छोड़ना कोई खेल नहीं किन्तु छूटती है। यह कब छूटती है? तुलसीदास जी ने कहा–'राम कृपा नासहिं सब रोगा' यह ममता रूपी दाद तो कोई रोग है नहीं, बड़े–बड़े रोग नष्ट हो जाते हैं। सभी रोग कब नष्ट होते हैं? 'जौं एहि भाँति बने संयोगा' (रा.७/१२२–६) यदि ऐसा संयोग बन जाये। तो कैसा संयोग?

सदगुर बैद बचन बिस्वासा।

(रा. ७/१२२–६)

कोई सद्‌गुरु मिल जाये। जैसे वैद्य मिल जाए तो शारीरिक रोग का इलाज हो जाता है। बिना वैद्य के रोग का इलाज नहीं होता। इसी रूप से यदि कोई सद्‌गुरु वैद्य मिल जाये तो ममता रूपी रोग का भी इलाज कर देता है–

सदगुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।।

(रा. ७/१२२–६)

यदि सद्‌गुरु वैद्य मिल जाये और उसके वचनों पर विश्वास हो जाये क्योंकि बिना विश्वास के कुछ नहीं बनता। गोस्वामी जी

कहते हैं–

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु।।

(रा० ७/९०)

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।

(रा० १/९०–४)

बिना विश्वास के भक्ति और धर्म नहीं होता। इससे आगे तुलसीदास जी ने कहा–

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।

बिना विश्वास के सिद्धि नहीं मिलती इसलिए तुलसीदास जी ने कहा–सद्‌गुरु रूपी वैद्य मिल जाये, उसके वचनों में विश्वास हो, संयम हो, सद्‌गुरु के पास जाकर विषयों की कामना न करें। सद्‌गुरु समर्थ हैं, वे सब कुछ दे सकते हैं लेकिन उनके पास जाकर विषयों की कामना अर्थात् सांसारिक वस्तुओं की कामना न करें। सांसारिक वस्तुओं की अपेक्षा परमात्मा और मुक्ति के लिए उनसे प्रार्थना करें, उनसे अमूल्य ज्ञान की प्राप्ति करें। आजकल तो लोग सोचते. हैं कि हमें वहीं जाना है जहाँ से चार कौड़ी और अधिक मिल जाये। आजकल लोगों के जीवन का धर्म ही धन बना हुआ है। अमुक महात्मा के पास जाकर धन बहुत जल्दी मिलता है, वहाँ पहुँच जायेंगे। सद्‌गुरु क्या बनेगा? वह क्या करेगा? जहाँ पर हमारे जीवन की दृष्टि ही धन पर अवलम्बित है, हमारे जीवन का लक्ष्य ही सुख और संसार की वृद्धि है, हम ममता को निर्मूल करने जाते हैं या ममता की वृद्धि करने जाते हैं? बिल्कुल उलटा चक्र है इसलिए मैं आपको समझा रहा था कि यह जो पाश का क्रम है वह बढ़ता ही जाता है, कम नहीं होता। यदि सद्‌गुरु मिल जाये तो वह तुम्हें पाश से छुड़वा सकता है, सन्मार्ग पर लगाकर, वही इस रोग को नष्ट कर सकता है। उस ममता रूपी दाद को मिटाकर परमात्मा में अनुराग पैदा करो, वही तुम्हें संसार से मुक्त कर सकता है, अन्य कोई साधन नहीं। इसलिए संत मत में भगवान् से अधिक बड़ा स्थान गुरु का है। रामायण में भी तुलसीदास जी ने लिखा है–

तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

(रा० २/१२९–८)

'प्रभो! आप से अधिक जो गुरु को मानते हैं, समझते हैं, उनकी उपासना करके संसार सागर से मुक्त होने की प्रार्थना करते हैं, आप उनके हृदय में निवास करें।' ऐसा क्यों कहा? कबीरदास जी ने एक दोहा लिखा कि जो गुरु है वह प्रभु से बड़ा है। बड़ा कैसे हो गया? प्रभु ने संसार बनाया था जिसमें हम फँस गये। उसके बनाये हुए संसार में हम फँसे और गुरु ने फँसे हुए संसार से हमें निकाल दिया; इसलिए गुरु प्रभु से भी बड़ा है। तुलसीदास जी ने इसी बात को और ढंग से कहा–समुद्र से बड़ा बादल है, यह कैसे हो सकता है? इसलिए कि समुद्र के किनारे रहकर भी हम प्यासे रहते हैं क्योंकि खारा पानी हम पी नहीं सकते। यदि बादल न हो तो मीठा पानी हमें कहाँ से मिलेगा? मीठे पानी के लिए बादल है। यद्यपि बादल कुछ नहीं करता समुद्र का ही जल खींचकर बरसता है किन्तु उस खारे पानी को मिठास में परिवर्तित कर देता है। इसी रूप से संत की अपनी कोई शक्ति नहीं होती, शक्ति उसी परमात्मा की होती है। परमात्मा खारे समुद्र के समान है और सद्‌गुरु उस बादल के समान है। जैसे समुद्र का पानी हम पी नहीं सकते और बादल का पानी हमारे लिए मधुरता प्रदान करता है, हमारे जीवन के लिए आधार बनता है, इसी रूप से ईश्वर के होते हुए भी हमें कोई तृप्ति नहीं मिलती, हमें कोई लाभ नहीं होता, सद्‌गुरु रूपी बादल मिल जाये तो हमारी तृप्ति हो जाती है। हमारी तृषा को शान्त कर देता है इसलिए सद्‌गुरु की महिमा ईश्वर से भी अधिक स्वीकार की गई है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ममता रूपी दाद को, रोग को दूर करने के लिए सद्‌गुरु रूपी वैद्य ही एक आधार है।

यही बात यहाँ शिवपुराण में भी बताई गई है। जो लोग इस पाश से मुक्त होना चाहते हैं जिस पाश की व्याख्या मैंने आपको बतायी है कि ज्ञान, क्रिया, राग, काल, और नियति, इन पाँच भागों में बँटे हुए हमारे अपने जीवन क्रम को, जीवन चक्र को, जिसमें हम अहर्निश घूम रहे हैं अथवा चक्कर काट रहे हैं, इससे छूटने का एक ही आधार है। वह कौन है? वह परमात्मा पशुपति है। जीव को पशु क्यों कहते हैं? यह पूर्व में मैंने बता दिया कि वह राग के नाते कर्म के पाशों में बँधा हुआ है इसलिए उसे पशु कहा जाता है। उस पशु के शास्त्रों में मूलतः तीन भेद बताये गये हैं, शिवपुराण में भी बताया गया कि ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जो पाश में बंधा है, सब पशु हैं,

यह नहीं कि ब्रह्मा पशु से आगे हैं, वह भी पशु हैं।

हमारे यहाँ पर जीवों की तीन श्रेणियाँ बताई गई हैं–नित्य जीव, मुक्त जीव और बद्ध जीव। आप बड़ी गम्भीरता से इसका मनन करेंगे। नित्य जीव कौन है? ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्र, सप्त ऋषि आदि सभी नित्य जीव हैं क्योंकि ये मन्वन्तर के आरम्भ में पैदा होते हैं और अन्त तक रहते हैं। ब्रह्मा को भी इसीलिए नित्य जीव कहा जाता है कि वह सृष्टि के आदि में पैदा होते और सृष्टि के अन्त तक जीवित रहते हैं। यह नित्य जीव है, नित्य जीव में बन्धन के लिए स्थान नहीं होता है। इनका पाश जो है वह विद्या का है अविद्या का नहीं। इनके लिए अज्ञान नहीं, वे ईश्वर कोटि के जीव हैं। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में भी लिखा है कि नित्य जीव को अविद्या की फाँसी नहीं लगती अर्थात् अविद्या उनको नहीं बाँधती–

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि विद्या।।
ताते नास न होइ दास कर।

(रा॰ ७/७६–२,३)

इसलिए उनका नाश नहीं होता। ब्रह्मादि जीव नित्य जीव हैं, इनके लिए बन्धन नहीं है और मुक्ति नहीं है। दूसरे कोटि के जीव मुक्त जीव हैं। मुक्त जीव उन्हें कहते हैं जो पहले कभी बन्धन में थे लेकिन साधना करके अब वे ज्ञान के द्वारा मुक्त हो गये हैं। गीता में भी भगवान् ने बताया है–

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।

(गीता ४/१०)

"बहुत से जीव ज्ञान रूपी तप के द्वारा पवित्र होकर ईश्वरत्व को प्राप्त कर चुके हैं अर्थात् मेरे भाव को प्राप्त कर चुके हैं।" वे मुक्त जीव हैं। तीसरी श्रेणी के बद्ध जीव हैं। बद्ध जीव किसे कहते हैं? जो इस पाश में बँधे हुए हैं। जिसकी संज्ञा मैंने पशु बताई है, वे बद्ध जीव हैं। अब उस बद्ध जीव की क्या स्थिति है?

बद्ध जीव के भुभुक्षु और मुमुक्षु दो भेद हैं। यह हमारे ज्ञान–विज्ञान तथा धर्म शास्त्र किसके लिए हैं? समस्त साधना, उपासनादि किसके लिए है? बद्ध जीव के लिए। मुमुक्षु कौन है जिसे मोक्ष की कामना है और भुभुक्षु जिसे भोग की कामना है।

'प्रभो! आप से अधिक जो गुरु को मानते हैं, समझते हैं, उनकी उपासना करके संसार सागर से मुक्त होने की प्रार्थना करते हैं, आप उनके हृदय में निवास करें।' ऐसा क्यों कहा? कबीरदास जी ने एक दोहा लिखा कि जो गुरु है वह प्रभु से बड़ा है। बड़ा कैसे हो गया? प्रभु ने संसार बनाया था जिसमें हम फँस गये। उसके बनाये हुए संसार में हम फँसे और गुरु ने फँसे हुए संसार से हमें निकाल दिया; इसलिए गुरु प्रभु से भी बड़ा है। तुलसीदास जी ने इसी बात को और ढंग से कहा–समुद्र से बड़ा बादल है, यह कैसे हो सकता है? इसलिए कि समुद्र के किनारे रहकर भी हम प्यासे रहते हैं क्योंकि खारा पानी हम पी नहीं सकते। यदि बादल न हो तो मीठा पानी हमें कहाँ से मिलेगा? मीठे पानी के लिए बादल है। यद्यपि बादल कुछ नहीं करता समुद्र का ही जल खींचकर बरसता है किन्तु उस खारे पानी को मिठास में परिवर्तित कर देता है। इसी रूप से संत की अपनी कोई शक्ति नहीं होती, शक्ति उसी परमात्मा की होती है। परमात्मा खारे समुद्र के समान है और सद्गुरु उस बादल के समान है। जैसे समुद्र का पानी हम पी नहीं सकते और बादल का पानी हमारे लिए मधुरता प्रदान करता है, हमारे जीवन के लिए आधार बनता है, इसी रूप से ईश्वर के होते हुए भी हमें कोई तृप्ति नहीं मिलती, हमें कोई लाभ नहीं होता, सद्गुरु रूपी बादल मिल जाये तो हमारी तृप्ति हो जाती है। हमारी तृषा को शान्त कर देता है इसलिए सद्गुरु की महिमा ईश्वर से भी अधिक स्वीकार की गई है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ममता रूपी दाद को, रोग को दूर करने के लिए सद्गुरु रूपी वैद्य ही एक आधार है।

यही बात यहाँ शिवपुराण में भी बताई गई है। जो लोग इस पाश से मुक्त होना चाहते हैं जिस पाश की व्याख्या मैंने आपको बतायी है कि ज्ञान, क्रिया, राग, काल, और नियति, इन पाँच भागों में बँटे हुए हमारे अपने जीवन क्रम को, जीवन चक्र को, जिसमें हम अहर्निश घूम रहे हैं अथवा चक्कर काट रहे हैं, इससे छूटने का एक ही आधार है। वह कौन है? वह परमात्मा पशुपति है। जीव को पशु क्यों कहते हैं? यह पूर्व में मैंने बता दिया कि वह राग के नाते कर्म के पाशों में बँधा हुआ है इसलिए उसे पशु कहा जाता है। उस पशु के शास्त्रों में मूलतः तीन भेद बताये गये हैं, शिवपुराण में भी बताया गया कि ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जो पाश में बंधा है, सब पशु हैं,

यह नहीं कि ब्रह्मा पशु से आगे हैं, वह भी पशु हैं।

हमारे यहाँ पर जीवों की तीन श्रेणियाँ बताई गई हैं–नित्य जीव, मुक्त जीव और बद्ध जीव। आप बड़ी गम्भीरता से इसका मनन करेंगे। नित्य जीव कौन है? ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्र, सप्त ऋषि आदि सभी नित्य जीव हैं क्योंकि ये मन्वन्तर के आरम्भ में पैदा होते हैं और अन्त तक रहते हैं। ब्रह्मा को भी इसीलिए नित्य जीव कहा जाता है कि वह सृष्टि के आदि में पैदा होते और सृष्टि के अन्त तक जीवित रहते हैं। यह नित्य जीव है, नित्य जीव में बन्धन के लिए स्थान नहीं होता है। इनका पाश जो है वह विद्या का है अविद्या का नहीं। इनके लिए अज्ञान नहीं, वे ईश्वर कोटि के जीव हैं। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में भी लिखा है कि नित्य जीव को अविद्या की फाँसी नहीं लगती अर्थात् अविद्या उनको नहीं बाँधती–

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि विद्या।।
ताते नास न होइ दास कर।

(रा॰ ७/७६–२,३)

इसलिए उनका नाश नहीं होता। ब्रह्मादि जीव नित्य जीव हैं, इनके लिए बन्धन नहीं है और मुक्ति नहीं है। दूसरे कोटि के जीव मुक्त जीव हैं। मुक्त जीव उन्हें कहते हैं जो पहले कभी बन्धन में थे लेकिन साधना करके अब वे ज्ञान के द्वारा मुक्त हो गये हैं। गीता में भी भगवान् ने बताया है–

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।

(गीता ४/१०)

"बहुत से जीव ज्ञान रूपी तप के द्वारा पवित्र होकर ईश्वरत्व को प्राप्त कर चुके हैं अर्थात् मेरे भाव को प्राप्त कर चुके हैं।" वे मुक्त जीव हैं। तीसरी श्रेणी के बद्ध जीव हैं। बद्ध जीव किसे कहते हैं? जो इस पाश में बँधे हुए हैं। जिसकी संज्ञा मैंने पशु बताई है, वे बद्ध जीव हैं। अब उस बद्ध जीव की क्या स्थिति है?

बद्ध जीव के भुभुक्षु और मुमुक्षु दो भेद हैं। यह हमारे ज्ञान–विज्ञान तथा धर्म शास्त्र किसके लिए हैं? समस्त साधना, उपासनादि किसके लिए है? बद्ध जीव के लिए। मुमुक्षु कौन है जिसे मोक्ष की कामना है और भुभुक्षु जिसे भोग की कामना है।

मुमुक्षु वे जो भोग से ऊब चुके हैं, जो चक्कर में घूमते–घूमते थक गये हैं, ऐसे मुमुक्षु करुणानिधान भगवान् को पुकारते हैं, प्रार्थना करते हैं कि अब हमें इस चक्कर से बाहर निकालो, इन्हीं के लिए शास्त्र है, सत्संग है और महात्मा हैं तथा इन्हीं को सद्‌गुरु की आवश्यकता होती है। जो भुभुक्षु हैं, उन्हीं के लिए भगवान् की आवश्यकता है लेकिन भोग प्राप्त करने के लिए मोक्ष के लिए नहीं। वे बड़े से बड़ा तप करेंगे किन्तु वह भी अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए। जैसे कल मैंने असुरों की बात बताई थी। भुभुक्षु जीव तपस्या, दान, त्याग, यज्ञ और तप करता है, इसके बदले में क्या चाहता है? स्वर्ग। वह कहता है, जैसा उसने सुना है एक दोगे तो दस पाओगे। वह सुनता है यहाँ तो व्यापार करके एक के बदले में दस ले रहे हैं। यदि यही प्रकिया हमारी वहाँ भी चल जाये, एक देकर दस प्राप्त कर लें तो हम किसी से पीछे न रहें। दुनिया में जितने ईश्वरवादी धर्म हैं, जितने भी इस्लाम, यहूदी, क्रिश्चियन आदि हैं, सभी की प्रेरणा यही है कि यहाँ तुम एक दोगे तो जन्नत में दस मिलेगा, जिसके नाते वे दान भी देते हैं। उनके यहाँ दान सत्कर्म नहीं शुभकर्म है। दान सत्कर्म और शुभकर्म के नाते दो प्रकार से दिया जाता है। सत्कर्म के नाते जो दान दिया जाता है, वह सुपात्र को देते हैं इसलिए कि वह कोई महान् काम करेगा। जैसे कोई धर्म का काम कर रहा है तो अपनी शक्ति के अनुसार अपनी कमाई में से दान देते हैं कि हम धर्म का काम तो कर नहीं सकते, यह धर्म का काम कर रहा है, इसकी सहायता करें। इसके बदले में उन्हें क्या चाहिए? केवल मात्र प्रभु की कृपा, इसको सत्कर्म कहते हैं। ग्रन्थ में लिखा है कि अमुक जगह जो इतना दान करेगा तो उसके बदले स्वर्ग में दसगुणा होकर मिलेगा। जो इस बुद्धि से दान करता है, वह भोग पदार्थ का व्यापार करता है। वह जानता है कि एक देंगे तो दस मिलेगा इसलिए एक ही दे दिया जाये।

कुछ वर्ष पूर्व रोम में यह व्यवस्था थी और आज भी है। धनी लोग मरने से पूर्व स्वर्ग की सीट बुक करवाया करते थे। जब चर्च में Priest के पास जाते थे तो Priest उनसे पूछता था कि आपको स्वर्ग से क्या–क्या सुविधाएँ चाहिए। कितना बड़ा मकान चाहिए, फर्नीचर युक्त चाहिए, समस्त सुविधा के साधन वा खाने पीने के लिए तुम्हें क्या–क्या चाहिए? उन्हें समस्त समानयुक्त सुविधाओं

की सूची बनाकर देता था कि स्वर्ग में तुम्हें सभी कुछ मिलेगा, इसके लिए तुम्हें इतना पैसा जमा करवाना चाहिए। जितना Priest कहता उतना रुपया जमा करवाकर स्वर्ग की सीट बुक करवा देते थे। जब मरते थे तो उस बक्से में जिसमें मरने वाले की लाश रखते हैं, उसमें Priest का मोहर लगा हुआ कागज़ भी रखते थे, जो कि आज भी रखा जाता है। मुसलमानों और क्रिश्चियनों में आज भी यह होता है। मुसलमानों में एक बोरा सम्प्रदाय है, उनका जो गुरु है वह आज भी जन्नत के लिए इसी प्रकार की व्यवस्था देता है कि वहाँ पर कितने हज़ार की व्यवस्था चाहिए। आज कल जहाँ मकानों की, दुकानों की अलाटमैंट होती है वैसे ही वह जन्नत की अलाटमैंट करता है। अज्ञानता है लेकिन वहाँ ज्ञान के लिए स्थान कहाँ है? निर्धन व्यक्तियों के लिए जन्नत में स्थान कहाँ? गरीब आदमी इतना पैसा दे नहीं सकता था इसलिए उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द था।

एक चतुर व्यक्ति आ गया, उसने जब इस अत्याचार को देखा तो उससे रहा नहीं गया। वह पोप के यहाँ पहुँच गया, नमस्कार करके उन्हें कहता है कि सर! आप जन्नत की सीटें बुक कर रहे हैं, वहाँ तो बहुत भीड़ होगी इसलिए आप सारा का सारा जहन्नुम (नरक) मेरे लिए रिज़र्व कर दो, मैं तो अकेला ही रहना चाहता हूँ। पोप ने सोचा अभी तक तो मूर्ख जन्नत के लालच में फँसते थे, यह तो महामूर्ख आया, जो अकेला ही नरक की सीट बुक करवाना चाहता है। पोप ने कहा–आपको इतनी मुद्रा देनी पड़ेगी। उसने कहा–बहुत अच्छी बात है। जितना पोप ने माँगा उतना उसने दे दिया और सारा नरक रिज़र्व करा लिया। अब वह पोप के घर के निकट जाकर बैठ गया। पोप के पास महल में जो लोग जाते, उनको पहले अपने पास बुलाकर पूछता–कहाँ जा रहे हो? वह कहता बाईबिल में परमात्मा ने दो चीज़ें बताई हैं–एक स्वर्ग और दूसरा नरक, तीसरा स्थान यह मर्त्य लोक है ओर कोई स्थान नहीं हैं। पोप के पास जाने वाले कहते, हाँ ऐसा ही है। नरक तो मैंने अपने लिए रिज़र्व करवा लिया, देखो यह पोप की मोहर लगी हुई है, नरक में मैं किसी को जाने नही दूँगा। अब मर्त्य लोक वा स्वर्ग लोक रह गया। या तो तुम मरोगे नहीं, यदि तुम्हें स्वर्ग नहीं भेजना होगा तो वह मारेगा नहीं, यदि मारेगा तो मैं नरक में जाने नहीं

दूँगा। इसलिए अब तुम लोगों को पोप के पास जाने की ज़रूरत नहीं, यहीं से लौट जाओ। अब वह इस बात का प्रचार करने लगा तो परिणाम क्या हुआ? कुछ दिनों बाद ग्राहक आना बन्द हो गये। पोप ने अपने व्यक्तियों से पूछा कि आजकल कोई सौदा खरीदने नहीं आया, क्या कारण है, इसका पता लगाना चाहिए। तब एक व्यक्ति ने आकर बताया साहब! जिसने सारे नरक की सीट बुक करवाई थी, वह बाहर बैठा हुआ है। वह कहता है कि मैं नरक में किसी को जाने नहीं दूँगा। खुदा के पास स्वर्ग या मर्त्यलोक दो ही स्थान हैं, मरेंगे तो स्वर्ग में जायेंगे नहीं तो यहीं पर रहेंगे इसलिए अब तुम्हें स्वर्ग की सीट बुक करवाने की आवश्यकता नहीं। जब उसने यह सुना तो कहने लगा कि यह तो मेरा भी दादा गुरु आ गया। विचार करने लगा कि अब क्या किया जाये। पोप ने उस व्यक्ति को बुलाकर कहा कि आप अपना वह कागज़ लौटा दो और अपना पैसा ले जाओ। कहता है, नहीं, हमारा व्यापार इतना कमज़ोर नहीं है। लौटाने का तुम क्या लोगे? उसने कहा–एक, दो, तीन गुणा नहीं बल्कि चार गुणा लूँगा। तुम स्वर्ग के नाम पर लोगों से पैसा इकट्ठा कर रहे हो, हमने तो तुमसे खरीदा है इसलिए अपनी रुचि से लौटायेंगे। तुम इसमें क्या कर सकते हो? खैर, उस समय पोप का शासन भी था, उसकी आज्ञा ही विश्व में चलती थी और ईसाई धर्म का प्रचार भी था। परिणाम यह हुआ कि कुछ अधिक द्रव्य देकर कागज़ लौटाया गया। यह मैं आपको इतिहास की कहानी सुना रहा हूँ। धर्म के नाम पर इससे भी बड़ी मूर्खतायें हुई हैं, यह तो छोटी मूर्खता है। जिस लेखक ने इतिहास की यह घटना लिखी है, उसने साथ यह भी लिखा है कि इस प्रकार की जन्नत की रिज़र्वेशन की मूर्खता से अभी तक मनुष्यता छूटी नहीं है। क्या समझते हो इस प्रकार के हमारे यहाँ लोग नहीं हैं? हमारे यहाँ भी पण्डित लोग हैं जो कहते हैं कि आप यदि एकादशी के दिन यह दान करो तो बैकुण्ठ से रथ आयेगा और आपको ले जाएगा। लोग बड़े शौक से दान करते हैं और बड़ी चाह है कि रथ आ जाये और हमें ले जाये। इसके लिए न जाने क्या–क्या करते हैं? कबीरदास जी ने अपने एक दोहे में लिखा है–

चोरी करे निहाय की देइ सुई को दान।
ऊँचे चढ़ि के देखता केतिक दूरी विमान।।

निहाय जानते हो आप? वह मोटा सा होता है जिस पर लोहा कूटा जाता है। निहाय की चोरी करके दान में सुई देता है और देखता है कि विमान तो लेने आया नहीं। पंडित जी की बात गलत है। "मेरे दोस्तो! यह वृत्ति धर्म नहीं है, यह बद्ध जीव का एक प्रलाप है।" भुभुक्षु जीव अर्थात् जो भोग के इच्छुक जीव हैं उनके जीवन का एक निकृष्ट रूप है, प्रलाप है। जहाँ धर्म, भक्ति और उपासना नहीं है, वहाँ तो भगवान् के ऊपर यदि गडुआ जल डाला तो उसके बदले में हमें एक गडुआ दूध नहीं बल्कि घी मिलना चाहिए। भगवान् ने यदि नहीं दिया तो वह भगवान् ही नहीं। हम भगवान् को इन्कार करने पर तुल जाते हैं।

एक समय की बात है, तीर्थराज प्रयाग त्रिवेणी, संगम में कुछ महात्मा नहा रहे थे। वहाँ एक देवी स्नान करने के लिए आई, उसने डुबकी लगाई और मुँह मलने लगी, उसके नाक का गहना जल में गिर गया। जल में अपना गहना ढूँढ़ने लगी, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते साथ में प्रार्थना कर रही है कि 'मैया त्रिवेणी! यदि मेरी बेसर मिल जाये तो मैं दुबारा कभी नहीं आऊँगी।' एक महात्मा सुन रहे थे, उन्होंने कहा-माँ, त्रिवेणी ने तुम्हें निमन्त्रण दिया था कि तुम जरूर आना? त्रिवेणी में डुबकी लगाकर स्वर्ग तक पहुँचने की चाह लेकर तुम यहाँ आई किन्तु स्वर्ग क्या उस नथनी से भी छोटा है? हम लोग जिन्दगी में यह देखते हैं कि जब स्वार्थ में अन्धे होकर हम भगवान् की उपासना में लगते हैं तो वहाँ भी हमारा दुष्कर्म या पाप हमारे साथ लगा रहता है। भगवान् में आस्था, श्रद्धा वा भक्ति होने नहीं देता। हमारे साथ अनेक प्रकार के भोगमय पदार्थों की वासना बनी रहती है। इसीलिए कहते हैं कि भुभुक्षु जीव भोगमय पदार्थों के लिए घोर से घोर तप करता है। जैसे रावण कितना बड़ा तपस्वी था। एक पांव से खड़ा होकर घोर तपस्या कर रहा है। किसके लिए? वरदान मिल जाये कि मैं दुनिया का स्वामी बन जाऊँ। अब उससे भी बड़ी मूर्खता देखिए। उसका दूसरा भाई कुम्भकरण इतने वर्षों तक घोर तपस्या करके भगवान् से क्या माँगता है?

मांगेसि नींद मास षट केरी।

(रा० १/११७-८)

हम छः मास सोयें। अरे मूर्ख! इसके लिए तप करने की क्या जरूरत थी? यदि यही माँगना था कि मुझे छः मास नींद आये

तो उसके लिए तप की क्या आवश्यकता थी? किन्तु नहीं, यह भुभुक्षु जीव की वृत्ति है, जिसमें उसे सुख मिल रहा है, उसी की वृद्धि वह माँगता है। जिसको धन में सुख दिखाई दिया तो उसने धन की वृद्धि माँगी, भोग में सुख दिखाई दिया तो भोग की वृद्धि माँगी और जिसको नींद में सुख दिखाई दिया तो उसने नींद में वृद्धि माँग ली। यह बात अलग है कि हम कहते हैं कि शारदा ने उनकी मति फेर दी। मति फिरने पर ही तो ऐसा माँगा जाता है। बुद्धि भ्रम के नाते ही तो माँगा जाता है, यह भुभुक्षु जीव है। उसकी बड़ी दुर्गति है, चाहे वह कहीं भी, स्वर्ग या नरक में चला जाये।

हमारे यहाँ सनातन धर्म में स्वर्ग और मोक्ष के दो अलग–अलग रास्ते हैं और दोनों धर्ममय बताये गये हैं। इनमें से एक धर्म है और दूसरा परम धर्म है। एक स्मार्त्त धर्म और दूसरा भागवत धर्म कहा जाता है। भागवत धर्म का रास्ता परम पुनीत रास्ता है। वर्तमान में जिस सनातन धर्म की प्रतिष्ठा है वह पुराना स्मार्त्त धर्म नहीं रहा, अब वह सनातन धर्म विशुद्ध वैष्णव भागवत धर्म है। भागवत धर्म का अभिप्राय है कि प्रत्येक कर्म भगवान् को समर्पित करके भगवान् में लीन हो जाओ। गीता में स्वर्ग को प्रेय बताया गया है। भगवान् ने कहा–

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्टवा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।

(गीता ६/२०)

अर्जुन! जो वेदत्रयी का माध्यम लेकर अनेक प्रकार के यज्ञादि का अनुष्ठान करते हैं, वे पाप से मुक्त हो जाते हैं–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

(गीता ६/२१)

वे विशाल स्वर्ग लोक के सुख को भोगते हैं किन्तु जिस दिन उनका पुण्य नष्ट हुआ उसी दिन वे इस मर्त्यलोक में आकर गिरते हैं। भगवान् आगे कहते हैं–

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।

(गीता ६/२१)

इसी प्रकार से यह त्रयीधर्म अर्थात् वैदिक धर्म तुम्हें यहाँ से

स्वर्ग भेजेगा और स्वर्ग से नीचे गिरायेगा। इसी चक्कर में लगे रहोगे, इस चक्कर से मुक्ति पाने का रास्ता नहीं है। वेद धर्म चक्कर से मुक्ति नहीं देता। इस चक्कर से मुक्ति देने वाला मार्ग क्या है? भगवान् कहते हैं, वह वेदान्त है। वेदान्त में आत्मा–परमात्मा की एकता की अनुभूति है इसलिए वर्तमान में जो सनातन धर्म है, वह वैदान्तिक धर्म है। हमारे सनातन धर्म के जितने आचार्य हुए हैं, उन्होंने समस्त ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थों को मुख्य माना है, उसे प्रस्थानत्रयी कहते हैं। सनातन धर्म के निर्णायक परम प्रमाण स्वरूप जो गन्थ हैं, वे प्रस्थानत्रयी हैं। प्रस्थानत्रयी में मुख्य उपनिषदें हैं जिसे वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदों का समन्वय होने के नाते दूसरा ब्रह्म सूत्र है। उपनिषदों के सार को प्रभु ने स्वयं श्रीमुख से वर्णन किया है इसलिए श्री मद्भगवद्गीता ही मूल आधार है। गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और सांख्य योग शास्त्र, इसको वेदान्त कहते हैं, यह प्रस्थानत्रयी है। इस प्रस्थानत्रयी के द्वारा प्रतिपादित जो धर्म वा कर्म है, वही भागवत धर्म है और वही वर्तमान का शाश्वत सनातन धर्म है इसलिए उसमें स्वर्ग और नरक के लिए कोई स्थान नहीं है। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास जी ने बताया कि स्वर्ग और नरक दोनों कल्पनामय हैं। मोह में पड़ा हुआ जीव स्वर्ग और नरक की कल्पना करता है। रामायण में तुलसीदास जी ने लिखा है–

जोग बियोग भोग भल मंदा।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू।
संपति बिपति करमु अरु कालू।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू।
सरगु नरक जहँ लगि ब्यवहारू।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं।
मोह मूल परमारथु नाहीं।।

(रा॰ २/९२–५ से ८)

यह स्वर्ग–नरक, धन, धरनी, धाम, परिजन और परिवार, जहाँ तक यह प्रपंच है, सारा मोह मूलक है, परमार्थ नहीं है। प्रपंच किसे कहते हैं? जहाँ ये पाँचों चीज़ें–अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश एक में मिश्रित हों, उसे प्रपंच कहते हैं। जो ब्रह्माण्ड है यह

सारा का सारा प्रपंच है। इस ब्रह्माण्ड का ऊर्ध्व भाग ही स्वर्ग है वा ब्रह्मलोक है। रामायण में लिखा है–

पद पाताल सीस अज धामा।

(रा॰ ६/१५–१)

यही श्रीमद्भागवत में और यही वेद में लिखा है–

नाभ्यां आसीदन्तरिक्षं ँशीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

(यजुः ३१/१३,३)

यह जो 'शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत' है, इस ब्रह्माण्ड का जो शीर्ष स्थान है, वह स्वर्ग लोक वा द्यौ लोक कहा जाता है। इस स्वर्ग लोक के आठ स्तर आर्थात् भेद हैं। इनका क्रम इस प्रकार है–सबसे बड़े स्वर्ग का नाम ब्रह्मधाम वा ब्रह्मलोक, उससे नीचे वाले को कहते हैं इन्द्रलोक, फिर नीचे वाले को देवलोक, उससे नीचे कर्मज देवलोक, पितृलोक, प्रजापत्य लोक फिर गन्धर्व लोक, किन्नर लोक और पिशाच लोक। इस प्रकार मनुष्यता से ऊपर ये आठ लोक हैं, अंतिम ब्रह्मलोक है, यह ब्रह्माण्ड में ही है। यह ब्रह्माण्ड स्वयं पंच महाभूतों का परिणाम होने से प्रपंच है। जो प्रपंच है वह नाशवान् है, केवल दृष्टि मात्र है, क्षणिक है, दिखावा है इसलिए हमारे यहाँ कोई इधर–उधर बात करता है तो कहते हैं जाने दो, इस प्रपंच को छोड़ो। प्रपंच किसको कहते हैं, यह नहीं जानते। वह प्रपंच क्या है जिसको छोड़ने के लिए कह रहे हैं। प्रपंच माने सारा संसार। यह समस्त संसार प्रपंच है जो पांच महाभूतों से निर्मित है। एक में दूसरे का मिश्रण होने के नाते इसको पंचीकृत कहते हैं। आकाश में एक गुण शब्द, वायु में दो गुण शब्द और स्पर्श, अग्नि में तीन गुण–शब्द, स्पर्श और रूप, जल में चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस, पृथ्वी में पाँच गुण हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इसलिए पृथ्वी की समस्त वस्तुएँ पाँच गुणों से युक्त होने के नाते प्रपंच कही जाती हैं। कारण रूप से यह प्रपंच आकाश में होने के नाते वह भी प्रपंच ही कहा जाता है। इस समस्त प्रपंच को छोड़कर, इस प्रपंच के आधार ईश्वर को प्राप्त करना धर्म का उद्देश्य है। वह धर्म किसका है? वह मुमुक्षुओं का धर्म है।

गीता में अर्जुन ने धर्म की जिज्ञासा की है, वह मुमुक्षु का

धर्म है भुभुक्षु का नहीं। मुमुक्षु भी धर्म के मार्ग पर चलता है। इन दोनों के धर्म में क्या अन्तर है? भुभुक्षु का धर्म स्वर्गप्रद है और मुमुक्षु का धर्म मोक्षप्रद है। स्वर्गप्रद और मोक्षप्रद में क्या भेद है? जहाँ पर हमारे जीवन का और जीवन के समस्त क्रियाकलाप का लक्ष्य परमात्मा है, वह धर्म मुमुक्षु का है और जहाँ पर समस्त क्रियाकलाप का लक्ष्य सुख है वह धर्म भुभुक्षु का है। धर्म सुख देता है, सुख के लिए ही धर्म है और दुःख के लिए अधर्म है। इस धर्म का पालन कौन करता है? सुखार्थी। पाप इसलिए नहीं करेंगे कि दुःख मिलेगा और पुण्य इसलिए करेंगे कि हमें सुख मिलेगा। सुख की कामना से, यश की कामना से और भोग की कामना से धर्म करना शुभ कर्म है, यह पाप नहीं है किन्तु इससे मोक्ष नहीं मिलता। धर्म शास्त्र में यह बताया गया है कि एकाएक तुम मुमुक्षु तो बन नहीं सकते। जो संसार में फँसा हुआ है वह व्यक्ति एकाएक मुमुक्षु नहीं बन सकता। ऐसा नहीं कि बन नहीं सकता लेकिन यह कठिन अवश्य ही होता है। कोई सौभाग्यशाली जो पिछले जन्मों से संस्कार लेकर आ रहा है–

अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

(गीता ६/४५)

अनेक जन्मों में जिसको संस्कार मिल गया, वह इस जन्म में आकर मुमुक्षुत्व को अपना लेता है किन्तु साधारण लोगों के लिए सरल नहीं होता। पहले तुम अधर्म छोड़कर धर्म में लगो और अशुभ का त्यागकर शुभ में लगो। जब शुभ में लगोगे तो धर्मात्मा बनोगे। जब तुम शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर दोगे तब तुम धर्मात्मा से एक कदम ऊपर चले जाओगे अर्थात् महात्मा बन जाओगे। तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड में इसका वर्णन किया है। एक प्रसंग आता है कि माता पार्वती जी शंकर से पूछती हैं–

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी।
कोउ एक होई धरम ब्रतधारी।।

(रा॰ ७/५४–१)

"हज़ारों मनुष्यों में कोई एक होता है जो धर्म का व्रत लेता है।" धर्म का व्रत माने अब शुभ ही करेंगे, अशुभ नहीं करेंगे। तन, मन, वचन से किसी का अशुभ नहीं होगा, ऐसा व्रत लेने वाला हज़ारों में कोई एक होता है। किन्तु जानते हुए जो अशुभ नहीं

करना चाहता ऐसा व्यक्ति भी हज़ारों में एक होता है, नहीं तो अधिकांश भीड़ उन्हीं लोगों की है जो प्रवाहमार्गी हैं।

मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ होती हैं–एक विज्ञानमार्गी, दूसरे मर्यादामार्गी और तीसरे प्रवाहमार्गी। विज्ञानमार्गी वे हैं, जिन्होंने साधना के द्वारा तत्त्व बोध प्राप्त किया है। वे जानते हैं कि सत्य और असत्य क्या है, वे असत्य का त्यागकर सत्य मार्ग पर चलते हैं इसलिए उन्हें विज्ञानमार्गी कहा गया है। दूसरे मर्यादामार्गी हैं जो स्वयं तो कुछ नहीं जानते किन्तु किसी जाने हुए की शरण में जाकर उनकी आज्ञानुसार अथवा निर्देशानुसार जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे व्यक्ति को हमारे यहाँ गुरुमुखी कहते हैं। गुरुमुख माने अब यह मनमुखी नहीं रहा कि जैसा मन में आये वैसा करते रहना। किसी गुरु की शरण अपना कर उनके आदेशानुसार जीवन चलाना, गुरुमुखी है। गुरुमुखी ही आगे जाकर ज्ञानी बनेगा, आज तक गुरुमुखी के बिना कोई ज्ञानी नहीं बना। आज कल हमारे यहाँ गुरुमुखी होने का एक और रिवाज़ चल पड़ा है। गुरु तत्त्वज्ञानी है वा नहीं, इससे कोई मतलब नहीं। शिष्य तत्त्व ज्ञान का जिज्ञासु है वा नहीं, इससे कोई मतलब नहीं। उसने सुन रखा है कि बिना गुरु के उद्धार नहीं होता, इसलिए कोई गुरु आ जाये और कान में कुछ कह जाये। इससे क्या होगा? इससे हम तर जायेंगे? अरे देवता–

गुरु ते लीन्हें मन्त्र अरू नहिं कीन्हें सत्संग।
कह कबीर कोरी रहे कैसे लागे रंग।।

जब तक तुम गुरु के बताये हुए मार्ग पर नहीं चलोगे, केवल कान फुंकाने से बैकुण्ठ में प्रवेश नहीं कर पाओगे। मेरे दोस्त! गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलने वाले को कहते हैं मर्यादामार्गी और तत्त्व ज्ञान के प्रकाश में चलने वाले को कहते हैं ज्ञानमार्गी। ज्ञानमार्ग और मर्यादामार्ग भिन्न–२ हैं। प्रवाह मार्गी अर्थात् मनमानी जैसा अपने मन में आया करते रहे–गंगा गये गंगादास, यमुना गये यमुनादास और घर में नहाये तो बाल्टीदास हो गये। कहने का अभिप्राय जहाँ रहे वैसी स्थिति हो गई, अगर ऐसी स्थिति है तो मनुष्य का जीवन नहीं। मनुष्य इस संसार में भटकने के लिए, प्रवाह के साथ बहने के लिए और प्रपंच में प्रवाहित होने के लिए नहीं आया, वह तो प्रपंच से आगे बढ़ने के लिए आया है। मेरी बात याद रखो, नदी बह रही है, यदि तुम कूदकर उसके प्रवाह के साथ

चलोगे तो कहाँ पहुँचोगे? समुद्र में, दूसरा कोई स्थान नहीं है। यदि तुम नदी को पार करना चाहो तो उसके प्रवाह के विपरीत चलना होगा, परिश्रम करना पड़ेगा, हाथ–पाँव मारना होगा, तैरने के लिए प्रयत्न करना होगा। इसलिए जो लोग कहते हैं कि हमें तो समाज के साथ चलना है, इसका अभिप्राय वे समुद्र में जाने का प्रयास कर रहे हैं। कहते हैं, हमें तो समाज के साथ चलना है और समाज में रहना है, हम महात्मा तो हैं नहीं। याद रखो! महात्मा बनकर ही उद्धार होगा किन्तु वह महात्मा नहीं जो कपड़े रंग कर बनता है, महात्मा बनने के लिए आपको प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति महात्मा बन सकता है किन्तु पहले तुम धर्मात्मा तो बनो और अपने जीवन में आज से यह निश्चय कर लो कि मेरे द्वारा कोई अशुभ नहीं होगा, आज से मैं शुभ करूँगा। शुभ का निश्चय करते ही तुम धर्मात्मा बन जाओगे किन्तु धर्मात्मा बनने से ही काम नहीं बनेगा, इसके आगे चार स्तर और हैं।

प्रवाहमार्गी मत बनो पहली बात। यदि तुमने प्रवाह मार्ग से मुक्त होना है तो मर्यादामार्गी बनो। मर्यादा मार्ग शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित और सद्गुरु के द्वारा निर्देशित मार्ग है। गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलना मर्यादामार्ग है और मर्यादामार्गी बनकर ही तुम विज्ञानमार्गी बन सकते हो और विज्ञान प्राप्त कर सकते हो, तब तुम अपने और समाज के लिए दीपक बनोगे। भगवान् बुद्ध की घोषणा थी 'आत्म दीपो भव' तुम अपने लिए स्वयं प्रकाश बनो जिससे दूसरा तुम्हें देखकर तुम्हारे प्रकाश में अपने जीवन का विकास कर सके। इसके लिए केवल एक ही रास्ता है कि पहले तुम प्रवाह से मुक्त होकर मर्यादा के मार्ग पर चलो, सद्गुरु की शरण में जाकर वहाँ से आगे बढ़ो, तब तुम धर्मात्मा बनोगे, जो हज़ारों में एक होता है। तुम अपने आपको हज़ारों में एक मानो, हज़ारों को क्यों गिनते हो? हम तो हज़ारों में एक हैं, हज़ारों में एक धनी बनना चाहते हो, बलवान् बनना चाहते हो, हज़ारों में एक बुद्धिमान वा ऐश्वर्यवान बनना चाहते हो; किन्तु तुम हज़ारों में एक धर्मात्मा बनना क्यों नहीं चाहते जो सबसे श्रेष्ठ तुम्हारे कल्याण का साधन है? यदि हज़ारों में एक धनी हो गये तो तुम्हारा क्या बनेगा? कुछ नहीं बनने वाला। कई धनवान् अथवा करोड़पति व्यक्ति पड़े हुए हैं। विपुल सम्पत्ति के उपलब्ध हो जाने पर भी तुम अच्छी प्रकार से न खा सकते हो और न पी सकते

हो। क्यों भई! यह खा लो, नहीं–नहीं, यह तो मैं खा नहीं सकता, डाक्टर साहब ने मना किया है। क्यों मना किया है? डाक्टर ने बताया है कि उबली हुई सब्जी खाना, नहीं तो जान के लिए खतरा है। हज़ारों, करोड़ों एकत्रित किया, देखकर तृप्त होते रहो या अन्दर ही अन्दर कुढ़ते रहो, यही हो सकता है। मेरे विचार से देखकर तृप्ति तो मिलती नहीं बल्कि जलन होती है कि सुख के साधन हैं लेकिन हम भोग नहीं पाये। जानते हो यह स्थिति क्यों आई? इसलिए आई कि हमने धर्म का रास्ता नहीं अपनाया। तुलसीदास जी कहते हैं–

नर सहस्र मँह सुनहु पुरारी।
कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई।
बिषय बिमुख बिराग रत होई।।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।।

(रा॰ ७/५४–१,२,३)

सर्वप्रथम हज़ारों में एक धर्मात्मा, हज़ारों और करोड़ों धर्मात्माओं में एक विरक्त वैरागी, करोड़ों वैरागियों में एक ज्ञानी, करोड़ों ज्ञानियों में एक विज्ञानी और करोड़ों विज्ञानियों के बाद में जाकर–

सब ते सो दुर्लभ सुरराया।
राम भगति रत गत मदमाया।।

(रा॰ ७/५४–७)

तब आगे जाकर परमात्मा की अनन्य भक्ति मिलती है जो मुक्ति से भी परे है। ब्रह्मलीन विज्ञानी मुक्ति को प्राप्त करता है। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में इसके पाँच स्तर बताये हैं–

धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी।
जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।।

(रा॰ ७/५४–६)

धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवनमुक्त, ब्रह्म-परायण, ये पाँच स्तर हैं और छठा स्तर भक्ति में लीन होने का है। उससे भी परे है, जिसे पराभक्ति कहते हैं, ये छः स्तर विकास के हैं। मूलतः पाँच हैं, पाँचवें स्तर पर जाकर भक्त बन जाए या उसमें लय हो जाये, एक ही अवस्था है, उसमें कोई भेद नहीं। पराभक्ति और ब्रह्म लीनता में

कोई अन्तर नहीं, कुछ लोग पराभक्ति करते हैं और कुछ लय हो जाते हैं। पहले तुम अपने आपको अशुभ से शुभ में प्रतिष्ठित करो, यहीं से इसका प्रारम्भ होगा और यहीं से तुम पाशों से मुक्त होने की प्रक्रिया में प्रवृत्त होंगे। जब तक तुम वहाँ नहीं पहुँचते तब तक तुम पशुता से अर्थात् पाशों से मुक्त नहीं होंगे। शैव दर्शन में यह बताया गया है कि पाश प्रकृति का बन्धन है, इसी नाते जीव पशु है। पशुता से मुक्त होने के लिए भोग की कामना का त्याग कर अर्थात् भुभुक्षु न बनकर उसके पति के पास अर्थात् पशुपति शिव की शरण में जाना है। भुभुक्षु के हेयमार्गी और प्रेयमार्गी दो रास्ते हैं। हेयमार्गी माने जो येन–केन–प्रकारेण धन कमाकर सुखी होना चाहते हैं और प्रेयमार्गी माने जो शुभ कर्म द्वारा सुख चाहते हैं। जो दुष्कर्म द्वारा सुख चाहते हैं, वे हेयमार्गी हैं और जो शुभकर्म द्वारा सुख चाहते हैं, वे प्रेयमार्गी हैं लेकिन मुमुक्षु जो है वह न हेयमार्गी और न प्रेयमार्गी है, वह तो श्रेयमार्गी है इसलिए श्रेयमार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील हों, यही शिवपुराण का सन्देश है। तुम हेयमार्गी मत बनो, प्रेयमार्गी वा भुभुक्षु मत बनो, तुम मनुष्य हो, तुम्हारे उद्धार का यही समय है। जीवन की सार्थकता तुम इसी से सिद्ध कर सकते हो कि श्रेयमार्गी बनकर परमात्मा को प्राप्त करने के लिए धर्मात्मा बनने की कोशिश करो। इन्हीं शब्दों के साथ आज के विचार को यहीं विश्राम देता हूँ।

हरि ऊँ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ऊँ नमः शिवाय ऊँ नमः शिवाय

२०/२/८२, हालैण्ड

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

आज हमारे इस पावन यज्ञ का दसवाँ दिन है। आप लोगों ने बड़ी श्रद्धा, प्रेम से इसमें भाग लिया और मैंने भी प्रयत्न किया है थोड़े दिनों में सनातन धर्म के सार को समझाने का। जैसा कि मैंने पूर्व में भी बताया है और मेरी यह चाह है कि कोई भी हिन्दू अपने धर्म में कहीं भी किंचित मात्र भी आशंका न रखे, उसके तत्त्व को अच्छी तरह से समझ ले, इसीलिए मेरा यह प्रयत्न है। कितनी मात्रा में आप लोगों ने इसको समझा है, इसके लिए भगवत् कृपा आधार है लेकिन फिर भी मुझे विश्वास है जो इतने स्नेह से, श्रद्धा से आप लोग अभिलाषा लेकर नित्यप्रति इतनी संख्या में यहाँ पर आते रहे हैं, इसका यह प्रमाण है कि आप लोगों को सुनने में रुचि है, समझने की चाह है। बड़ी प्रसन्नता है।

आज के हमारे पाठ में वेद का निचोड़ आया है और वैसे तो भगवान् की महिमा का गान नित्यप्रति आनन्दमय होता है लेकिन आज प्रातः के पाठ में मुझे इतना आनन्द आया जिसका मैं स्वयं वर्णन नहीं कर सकता। डेढ़ घण्टे गाते हुए ही उसका पाठ करता रहा। विशेष रूप से बड़े गौरव के साथ मुझे यह कहने का अधिकार प्राप्त है कि जो लोग पुराणों को गप समझते हैं, कहानियाँ समझते हैं, वेद विरुद्ध समझते हैं, ऐसे महानुभावों को बड़ी विनम्रता से मैं कहता हूँ कि उनको इन पुराणों का अध्ययन करना चाहिए; फिर वे समझ पायेंगे कि पुराणों में क्या है। हमारे यहाँ वेद की चार संहितायें हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। यजुर्वेद दो भिन्न–२ रूपों में उपलब्ध होता है। एक प्राचीन यजुर्वेद दूसरा उसकी अपेक्षा नवीन यजुर्वेद। जो एक लाख वैदिक मन्त्रों का संकलन वेदव्यास जी ने किया था और जो चार वेदों के रूप में विभक्त करके अपने शिष्यों को पढ़ाया था, उस समय के यजुर्वेद को वर्तमान में कृष्ण यजुर्वेद कहते हैं। वेदव्यास जी के शिष्य थे

वैशम्पायन। वैशम्पायन के शिष्य थे याज्ञवलक्य जो उनके यहाँ पढ़ते थे। किसी बात में गुरु शिष्य में विवाद हो गया जिसके कारण याज्ञवलक्य ने सूर्य की अराधना करके नये यजुर्वेद को प्राप्त किया, जिसको शुक्ल यजुर्वेद कहा जाता है। इस ऐतिहासिक घटना के आधार पर मैं आप लोगों को बता सकता हूँ कि जो यजुर्वेद व्यास द्वारा संकलित है, वह प्राचीन यजुर्वेद कृष्ण यजुर्वेद ही शिव पुराण का मूल आधार है। शिवपुराण का सिद्धान्त कृष्ण यजुर्वेद का है।

हमारे यहाँ उपनिषदें तो बहुत हैं। जितनी वेद की शाखायें हैं उतनी उपनिषदें हैं लेकिन वर्तमान में उपलब्ध उपनिषदें दो सौ के करीब हैं। उनमें से एक सौ आठ उपनिषदें विशेष रूप से सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित हैं। एक सौ आठ उपनिषदों में दो उपनिषदें ऐसी हैं जो वेद के सहिंता भाग की हैं इसलिए उपनिषदों का नाम वेदान्त पड़ा है। वेद के अन्तिम भाग होने के नाते उनको वेदान्त कहा जाता है और जो दो उपनिषदें संहिता भाग से हमें उपलब्ध हैं, उनमें एक शुक्ल यजुर्वेद की है और दूसरी कृष्ण यजुर्वेद की। शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को हम ईशोपनिषद् कहते हैं और कृष्ण यजुर्वेद के संहिता भाग की जो उपनिषद् है उसे हम श्वेताश्वतरोपनिषद् कहते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद का मन्त्र भाग है और श्वेताश्वतर संहिता का अंश है। जैसे वाजसनेयी संहिता का अंश शुक्ल यजुर्वेद से ईशोपनिषद् के रूप में प्राप्त है, ऐसे ही श्वेताश्वतर संहिता का अंश श्वेताश्वतरोपनिषद् के नाम से हमें उपलब्ध है। ये दोनों उपनिषदें यजुर्वेद की हैं, दोनों ही मन्त्र भाग की हैं, ब्राह्मण भाग तथा आरण्यक भाग की नहीं। इन दोनों की बहुत महिमा है। आज के पाठ में हम श्वेताश्वतरोपनिषद् का वा यों कहिए कि कृष्ण यजुर्वेद के मन्त्र भाग का ही पूरा वर्णन पढ़ रहे थे। वेद के मन्त्रों को श्लोकबद्ध करके भगवान् व्यास ने इस पुराण में रखा है और उसमें सारा शैव विज्ञान है। पशुपति की व्याख्या कल मैं आप लोगों को सुना रहा था। इससे सम्बन्धित आज भी आप लोगों को थोड़ी सी बात बताऊँगा। पाश की व्याख्या कल मैंने की थी। राग के नाते प्रकृति के गुणों से जो बन्धनात्मक तत्त्व उत्पन्न होता है, उसे ही पाश कहते हैं और उस पाश में बँधने के नाते इस जीव की संज्ञा पशु हो जाती है। पाश में बँधा रहना इसको प्रिय नहीं, उसमें पड़ा हुआ जीव उससे मुक्त होने के लिए

व्यथित रहता है, लालायित रहता है, छटपटाता है लेकिन उसके लिए केवल एक ही उपाय है पति की आराधना। वह पति ही शिव है। पति किसका है? पाश का भी पति है, पशु का भी पति है, पति दोनों का है; इसीलिए वेद मन्त्र में बताया गया है—

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेषः सँसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः।

(श्वेता॰ ६/१६)

वह प्रधान और क्षेत्रज्ञ दोनों का पति है। प्रधान माने प्रकृति, क्षेत्रज्ञ माने पुरुष। उसी प्रसंग में क्षर और अक्षर शब्द भी आया है। क्षर पाश है और अक्षर पशु है। क्षर और अक्षर से जो अतीत है वह पशुपति है। जो पशुपति है वही उपास्य है, बिना पशुपति की कृपा से यह पशु पाश से मुक्त नहीं हो सकता। जब तक पाश से मुक्त नहीं होगा, पशु की अवस्था से ऊपर नहीं उठेगा तब तक इसे शान्ति नहीं मिलेगी, सुख नहीं मिलेगा। इसलिए श्रुति कहती है—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।

(श्वेता॰ ६/१३)

जो नित्यों का भी नित्य है, जो चेतन का भी चेतन है, जो अकेला ही सभी की कामनाओं को पूर्ण करता है, उस परमात्मा को बिना जाने, उस परमात्मा की शरण में बिना गये, उस परमात्मा की उपासना किये बिना, कभी भी मनुष्य को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए शिवपुराण का यह मूल संदेश है कि आप उस पशुपति की शरण में जायें। उस के अनुग्रह, उसकी कृपा से ही आपको पाश से मुक्ति मिल सकती है, आपका कल्याण हो सकता है।

एक बात और बताई गई है, भगवान् के पाँच कार्य हैं— सृष्टि, पालन, प्रलय, तिरोभाव और अनुग्रह। सृष्टि, पालन, प्रलय और तिरोभाव, ये चार प्रकार के कर्म भगवान् के चलते ही रहते हैं। वे अनवरत रूप से चलते हैं, प्रवाह रूप से अनादि हैं। यह सृष्टि जो आप देखते हैं, कोई समय ऐसा नहीं है जबकि यह नहीं होगी। सृष्टि का प्रवाह नित्य है, हो सकता है प्रलय में हमारा यह ब्रंह्माण्ड नष्ट हो जाये लेकिन अनन्त ब्रह्माण्ड हैं जो नष्ट नहीं होंगे, जो बने रहेंगे और बने रहते हैं। एक बात और बताऊँ जिस बात को आज का वैज्ञानिक बता रहा है, इन बातों को हज़ारों, लाखों वर्ष पूर्व भारत के ऋषियों ने अनुसंधान करके उपनिषदों में और वेदों में

उसका वर्णन किया है। शिवपुराण में भी आज हमें उन तत्त्वों का वर्णन पढ़ने को मिला है। उसमें बताया गया है कि यह ब्रह्माण्ड एक नहीं अनन्त हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड को हम जान भी नहीं सकते, देखना तो दूर की बात रही लेकिन वह सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता सभी को जानता है। यह जीव इस ब्रह्माण्ड से यदि अलग होता है तो दूसरे ब्रह्माण्ड में भी इसका प्रवेश हो सकता है क्योंकि जीव तत्त्वतः विभु है इसलिए वैदिक ऋषि हमें बताते हैं कि एक ब्रह्माण्ड यदि नष्ट होता है तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि सारे ब्रह्माण्ड नष्ट हो जायेंगे। एक ब्रह्माण्ड के नष्ट होने पर दूसरे ब्रह्माण्ड बने रहते हैं। इसी प्रकार से सृष्टि और प्रलय दोनों का क्रम चलता ही रहता है।

इसी बात को आज का वैज्ञानिक कहता है कि यह जो चमकते हुए तारागण का प्रकाश दिखाई देता है वह स्वयं में ब्रह्माण्ड है और बहुत से ऐसे नेबुला वा ब्रह्माण्ड हैं जो नष्ट हो चुके हैं, लाखों, करोड़ों वर्ष पूर्व नष्ट हो चुके हैं किन्तु उनका प्रकाश अभी तक हमें पृथ्वी तक दिखाई दे रहा है और बहुत से नये ब्रह्माण्ड ऐसे उत्पन्न हुए हैं जिनका प्रकाश हमारे तक नहीं पहुँचा, जिसे हम नहीं देख पाये। जिस प्रकार से आदमी प्रतिपल मरता और जन्मता रहता है उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड प्रतिपल बनते रहते हैं और नष्ट होते रहते हैं। इस अनन्त महिमावान् की सृष्टि बड़ी विचित्र है। वह महिमावान् अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण करता है, अनन्त ब्रह्माण्डों का विनाश होता रहता है, यह अनवरत रूप से चलता है। आज के शिवपुराण में यही मैं पढ़ रहा था। मुझे लगा, यदि पश्चिम के विद्वान् जो सत्य की खोज कर रहे हैं उन्होंने कभी इस ग्रन्थ को देखा होता या भारत के ही लोग कभी इसे समझे होते तो उनके लिए यह बात नई न होती।

ब्रह्माण्ड के वा सृष्टि के विकास का एक सिद्धान्त बहुत नया आया है। वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है कि ब्रह्माण्ड जो है वह फैलता जा रहा है। आज के शिवपुराण में यही पढ़ रहा था कि ब्रह्माण्ड जो है वह ब्रह्म–अण्ड है। ब्रह्म शब्द का अर्थ बताया गया कि जो स्वयं में फैले या विस्तार करे। बृंह धातु है जिसका अर्थ होता है विस्तार करना। विस्तार करने के नाते उसे ब्रह्म कहते हैं और सृष्टि को ब्रह्माण्ड कहते हैं क्योंकि सृष्टि का विस्तार होता रहता है। यह ज्ञान और विज्ञान ऋषियों ने हज़ारों, लाखों वर्ष पूर्व

अनुसन्धान करके खजाने के रूप में, कोष के रूप में इन ग्रन्थों में रखा है। दुर्भाग्य हमारा है कि हम इनको समझ नहीं पाते, देख नहीं पाते, पढ़ नहीं पाते।

एक बात और आप लोगों को बताऊँ सृष्टि के निर्माण के विषय में। वैदिक सिद्धान्त आपको यह बता रहा है कि यदि आप इस जीवन में विकास करते–करते एक अवस्था में पहुँच गए हैं और वहाँ पहुँचने पर ब्रह्माण्ड का नाश हो गया, सारा ब्रह्माण्ड खत्म हो गया परन्तु बीज रूप से तो कुछ नष्ट नहीं होता, बीज तो बचा रहता है। जो बीज बचा रहेगा जब कभी फिर उसी प्रवाह में नये ब्रह्माण्ड का निर्माण होगा और उसमें जब आपका जन्म होगा, पूर्व जीवन में जितनी साधनायें की थीं या जिस अवस्था को आप प्राप्त हुए थे, वे नष्ट नहीं होंगी। उसी अवस्था में पुनः नई सृष्टि में आप अपने को पायेंगे। चाहे आप इसी सृष्टि में इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में इसी अवस्था को प्राप्त कर लें। यही नियम ब्रह्माण्ड के विनाश और सृजन में हैं। ब्रह्माण्ड के सृजन और विनाश को हमारे यहाँ ब्रह्मा का दिन और रात्रि कहा गया है।

एक दिन मैंने यह बात आप लोगों को समझाई थी कि ब्रह्मा का दिन क्या होता है और रात्रि क्या होती है? ब्रह्मा की पूरी आयु विष्णु का एक दिन होता है, विष्णु की पूरी आयु शिव का एक दिन है और शिव की पूरी आयु जब समाप्त होती है तो वह परम शिव जिसे साम्ब सदाशिव कहते हैं, वह ब्रह्म का पलक खोलना, देखना और बन्द करना मात्र है। अनन्त ब्रह्माण्ड इसी प्रकार से चलता रहता है। सृष्टि प्रवाह रूप से नित्य है और स्वरूपतः नाशवान् है, स्वरूपतः नाशवान् कैसे? जैसे हमारा आपका शरीर है। शरीर में जितने परमाणु हैं क्या वे नष्ट हो जायेंगे? परमाणु तो नष्ट नहीं होते, वे नित्य हैं, अविनाशी हैं लेकिन शरीर तो रहेगा नहीं। जब यह शरीर नष्ट हो जायेगा तो ये परमाणु दूसरे स्वरूप में परिणत हो जायेंगे। परमाणु तत्त्व हैं उनका नाश नहीं होता, वे नई आकृति ग्रहण करते हैं और उससे मुक्त होते रहते हैं। आकृति बनती रहती है, बिगड़ती रहती है लेकिन तत्त्व ज्यों का त्यों बना रहता है। जैसे सोने का नैकलस बनवा कर पहना जाता है, नैकलस टूट गया तो उसका मालिक कहता है हमें कंगन चाहिए। सुनार ने तोड़ कर कंगन बना दिया। कंगन टूट गया तो कहता है हमें तो

कर्णफूल चाहिए तो उसने कान के लिए आभूषण बना दिया। कितने रूप परिवर्तित हुए? यह किसके हुए? आभूषण के न कि सोने के। सोना–सोना है, सोने में कोई अन्तर नहीं आया। जब हाथ में था तब भी सोना था, गले में था तब भी सोना था, तत्त्वतः सोने का कुछ नहीं बिगड़ा, बिगड़ाव केवल आकृति का है। यही शिवपुराण कहता है कि आपके तत्त्व का कुछ भी नाश नहीं होने वाला, नाश आकृति का होगा। आकृति नाशवान् है यह अविनाशी है नहीं। जब ब्रह्माण्ड ही नहीं रहेगा तो ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नहीं रहेंगे, इसके आधार, उसकी आत्मा का ही लय हो जायेगा तो हमारी आपकी क्या गिनती? हम अनर्थ तब करते हैं जब आकृति में आसक्त हो जाते हैं। सारा रोना–धोना, हाय–तोबा, दुःख–विपत्ति आकृति में है तत्त्व में कुछ नहीं। तत्त्व तो अविनाशी है। यही बात भगवान् राम ने तारा को समझाई। जिस समय बाली मारा गया तो उसकी स्त्री विलाप करने लगी। भगवान् राम उसके निकट गये। तुलसीदास जी ने लिखा है–

तारा बिकल देखि रघुराया।
दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।।

(रा॰ ४/११–३)

तारा से भगवान् ने एक प्रश्न किया, तारा! तू क्यों रो रही है? तारा कहती है, प्रभु! आपने मेरे पति का वध कर दिया और मेरे से पूछ रहे हैं कि रो क्यों रही हूँ? इससे बड़ी विपत्ति मेरे ऊपर और क्या आयेगी। प्रभु कहते हैं, तारा! तेरा पति कौन है? किसको पति मानती हो? शरीर को? यदि शरीर तुम्हारा पति है तो–

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।।

(रा॰ ४/११–४)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन तत्त्वों के संघात से बने हुए शरीर को अपना पति मानती हो तो वह तुम्हारी गोद में है, उसके लिए रोने की क्या आवश्यकता? यदि तुम कहो कि शरीर में जो था वह मेरा पति है तो वह नित्य तत्त्व है–

प्रगट सो तनु तब आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।

(रा॰ ४/११–५)

जीव तो नित्य है, उसका कभी नाश नहीं होता। यदि तुम कहो कि मेरा पति अकेले शरीर नहीं, जीव नहीं, जब दोनों मिल जायें तब मेरा पति होगा, यह तो होगा नहीं। क्या दोनों अनादिकाल से मिले हुए हैं? जो वस्तु अनादि काल से नहीं मिली है बीच में मिली, उसे कैसे चाहते हो कि हमेशा मिली रहे? जो मिली है, वह बिछुड़ेगी।

जातस्य ही ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

(गीता २/२७)

जो बनता है वह बिगड़ता है, जो पैदा होता है वह मरता है। जो मिलेगा वह बिछुड़ेगा, जो आयेगा वह जायेगा, इस प्रवाह को देखकर यदि सोचो कि जैसे तुम चाहते हो वैसा हमेशा होता रहे, यह असम्भव है। इतनी बात सुनकर तारा को बोध हो गया। तुलसीदास जी लिखते हैं–

उपजा ग्यान चरन तब लागी।
लिन्हेसि परम भगति बर मागी।।

(रा॰ ४/११–६)

प्रभु के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो! मुझे आपके चरणों की भक्ति प्राप्त हो। मैं समझ गई सत्य क्या है। इन्हीं चौपाइयों को हम नित्य प्रति पढ़ते हैं, सुनते भी हैं लेकिन तारा जैसा बोध हो जाता है क्या? नहीं होता। वही रोना, वही धोना, वही हाय–हाय लगा रहता है, जानते हुए भी अनजान बने हैं अपन इसीलिए दुःखी हैं।

जो जानत मानत नहीं, मानत करत न सोय।
सुख चाहत जग बावरे, सो कहु केहिं विधि होय।।

"जो हम जानते हैं उसको मानने के लिए तैयार नहीं हैं, जो हम मानते हैं उसको करने के लिए तैयार नहीं, चाहते हैं कि हमें सुख मिल जाये, कैसे हो सकता है?" इसीलिए यहाँ पर हम पशुपात मत में भी यही देखते हैं। हम जानते हैं कि सर्वाधार भगवान् ही परम सत्य हैं। संसार बनता है, बिगड़ता है, संसार में हमारी आकृति बनती है, बिगड़ती है। जब से सृष्टि हुई है तब से अपनी कितनी आकृतियाँ हुई होंगी, क्या गिन सकते हैं? नहीं गिन सकते।

यह कल्प, जिसमें आप–हम सभी रह रहे हैं, वराह कल्प है। इस कल्प का यह सातवाँ मन्वन्तर है। छः मन्वन्तर बीत चुके हैं

यानी छः बार इकहत्तर–२ महा चौकड़ियाँ बीत चुकी हैं। इकहत्तर महायुग का एक मन्वन्तर होता है और छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। सातवें मन्वन्तर का यह २८ वाँ कलियुग है। सातवें मन्वन्तर में भी २७ महायुग बीत चुके हैं और अठाईसवें महायुग का सतयुग, द्वापर और त्रेतायुग बीत चुका है। हम अठाईसवें कलियुग में रह रहे हैं, गिनती करो तो कितना होता है? लगभग दो अरब वर्ष। दो अरब वर्ष हो गये सृष्टि को। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि इस पृथ्वी की आयु जिस पर तुम रहते हो दो अरब वर्ष से अधिक ही है लेकिन इस सृष्टि प्रवाह में जब पृथ्वी हुई तभी तो हम नहीं हुए। जब भी हुए हों, तब से लेकर अब तक कितने रूप बदले होगें, कितने माँ–बाप, बहन–भाई बनें होगें, कितने के हम पति बने होगें, कितने हमारे पति बने होगें, कोई गिनती है? कोई गिनती नहीं कि किन–किन योनियों में अपन रहे होगें। कूकर, सूकर, कीट, पतंग, न जाने कितनी योनियों में गये होगें। एक कवि ने बहुत सुन्दर बात कही है। कवि कहता है, "प्रभो! मैं बहरूपिया बन कर तेरे सामने लाखों रूप बनाये हैं। लाखों रूप बनाकर तेरे सामने नाचा। अब तक का मेरा नाच तेरे को पसन्द आ गया, जितने बहरूपिये के खेल किये यदि ये मेरे स्वांग पसन्द आ गये हों तो अब प्रसन्न होकर मेरे को अपनी भक्ति दे दे और यदि ये स्वांग तेरे को पसन्द नहीं आये तो मेरे को मुक्त कर दे जिससे मैं दुबारा स्वांग न करूँ। अभिप्राय यह कि मुक्त कर दे जिससे फिर स्वांग करना न पड़े।

सोचते हैं, कभी–२ चिन्तन करते हैं कि अनेक पशुओं में अनेक पक्षियों में कोई ऐसा रूप नहीं रहा जिसमें अपन न घूमे हों। एक बार बैठा मैं चिन्तन कर रहा था, क्या बताऊँ बड़े रहस्य की बात है; पता नहीं क्यों बता रहा हूँ। बैठे–२ मेरे को ऐसा महसूस हुआ कि मेरे सामने सारी सृष्टि है। अनेक योनियों में सृष्टि है। सब योनियों में मैं घूम कर आया हूँ। करोड़ों की संख्या में हमारे माता–पिता की पक्तियाँ खड़ी हुई हैं। वृक्ष–पौधे से लेकर ऐसा अनुभव हुआ कि समस्त योनियों में मैं घूम आया हूँ, सबका मैं कृतज्ञ हूँ। प्रत्येक प्रकार के जन्तु, जानवर, पशु, पक्षी, वृक्षादि औषधियाँ आदि देखी और उस समय मेरे से कोई कह रहा है कि तुम इन सभी में से होते हुए इस अवस्था में पहुँचे हो इसलिए तुम इन सबके कृतज्ञ हो। तुम्हारे विकास में इन सबका पूरा सहयोग रहा

है। केवल इसी जन्म के हमारे माता–पिता ने हमें यहाँ नहीं पहुँचा दिया। इस जन्म के माता–पिता तक पहुँचाने में करोड़ों माता–पिता सहायक हुए हैं। इसीलिए सनातन धर्म में करुणा की बात बताई जाती है। सब जीवों पर दया करो क्योंकि समस्त योनियों के जीव कभी तुम्हारे माता–पिता रहे हैं। इन सारी योनियों में से तुम होकर आये हो, इन सारी योनियों में तुम्हारी स्थिति रही है। इन सारी योनियों के जीवों के तुम कृतज्ञ हो। यदि इन योनियों में रहने वाले जीवों की कृपा न होती तो तुम विकसित होकर इस अवस्था तक न पहुँचते। सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करो क्योंकि सबके तुम ऋणी हो। इतना जरूर है कि इन सब ने तुम्हें विकास की दिशा में आगे बढ़ाया है, उसका मूल आधार कौन रहा? उस प्रभु की करुणा, जिसने जन्म लेने से पहले माता के स्तन में दूध दिया। जिसने जन्म लेने से पहले माता के हृदय में वात्सल्य दिया। यह अपनी उपज नहीं है, अपनी चाह नहीं, यह उसका दिव्य विधान है, अतः हमें सबसे बड़ा कृतज्ञ तो उसका होना चाहिए।

करुणानिधान प्रभु की करुणा का ही यह परिणाम है कि तुम यहाँ तक पहुँचे हो, इससे आगे भी तुम उसी की करुणा से जाओगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। ऐसा आप सबको अनुभव करना होगा एक दिन, चाहे आज कर लो चाहे कल कर लो, चाहे किसी दिन कर लो। मेरा यह निश्चित सिद्धान्त है, मेरी अनुभूति है कि जो आज चींटी है एक दिन उसकी आत्मा भी विकसित होती हुई इसी अवस्था को प्राप्त होगी। एक दिन वह भी अपने आपको मुक्त अनुभव करेगी क्योंकि सृष्टि सदैव विकास की ओर जा रही है, परमात्मा की तरफ जा रही है। अवतरण का परिणाम तिरोभाव में होता है, प्रकट का परिणाम लय में होता है। सृष्टि परमात्मा से प्रकट है और परमात्मा की ओर ही लय होने के लिए जा रही है। हाँ, यह नहीं कि एक दिन में सारा हो जायेगा, एक दिन में नहीं होने का। जिसका जब समय आया, हो गया, इस दौड में जो आगे बढ़ गया, बढ़ गया, जो रह गया सो रह गया। यह आप लोगों पर निर्भर है कि आप जल्दी से जल्दी प्रभु को पाना चाहते हैं या संसार के मेले में दो चार धक्के और खाने की रुचि है, फिर तो कोई बात नहीं और मज़ा ले लो थोड़ा–सा लेकिन यदि तृप्ति हो गई हो तो, दोनों हाथ उठाकर प्रभु के सामने अपनी हार मानकर अपने को

समर्पित कर दो। जब तक पशुपति के प्रति आस्था नहीं होगी तब तक आप पाश से मुक्त नहीं हो सकते।

शिव पुराण में आज के पाठ में एक और प्रसंग आया कि पशुपति में आस्था कैसे हो और उसमें समाधान भी किया गया। पहले सत्संग से सुभेक्षा उत्पन्न होगी, सत्संग के द्वारा तुम्हें सद्गुरु की प्राप्ति होगी, सद्गुरु की कृपा से तुम साधना में लगोगे, साधन के द्वारा तुम्हारा चित्त शुद्ध होगा, चित्त शुद्धि से तुम्हें बोध होगा, उस बोध के द्वारा तुम पशुपति को जान सकोगे और जानने के पश्चात् जब तुम उनको समर्पित हो जाओगे तो तुम्हारा पाश समाप्त हो जायेगा। इसका प्रारम्भ कहाँ से होता है? सत्संग से। आचार्य शंकर ने लिखा है–

सत्संगत्वे निषंगत्वं, निषंगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निर्मल चित्तं, निर्मल चित्ते जीवन मुक्ति।।

सत्संग से असंगता प्राप्त होती है, सत्संग से बड़ा दुनिया में और कोई साधन नहीं है। सत्संग ही वह स्थान है जहाँ पर तुम पहुँच कर अपने यथार्थ को जान पाते हो। तुममें जितना दुर्गुण है वह सब कुसंग का दिया हुआ है और जितना गुण है वह किसी सत्संग की देन है। याद रखो, प्रारम्भ से न तुम पापी थे न पुण्यात्मा, जैसा संग मिल गया वैसी तुम्हारी वृत्ति बन गई। तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है–

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।।

(रा॰ ४/१५ ख)

कहते हैं कभी घोर बादल छा जाते हैं, आसमान में सूर्य को ढक लेते हैं और अन्धेरा हो जाता है, जब जोर का वायु बहता है तो बादल छिन्न–भिन्न हो जाते हैं, सूर्य प्रकट हो जाता है, प्रकाश हो जाता है। उसी प्रकार कुसंगति से व्यक्ति के चित्त के ऊपर बुरे संस्कारों के बादल आ जाते हैं तो अज्ञान ही अज्ञान अर्थात् अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। जब सत्संग की आंधी चलती है तो उसमें उसके संशय रूपी बादल छिन्न–भिन्न हो जाते हैं और उसकी आत्मा का प्रकाश प्रकट हो जाता है।

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।

एक स्थान पर और लिखा है–

हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोकहुँ बेद बिदित सब काहू।।

(रा॰१/७–८)

लोक और वेद दोनों में विदित है कि कुसंगति से हानि है और सुसंगति से लाभ है। कुसंगति से हानि है, दोस्त पहले एक घूँट लगाने के लिए कहता है कि तुम्हें कौन सा खरीदने को कह रहा हूँ, लगाले, एक ही घूँट तो पीना है, पी ले। सोसायटी के नाते बैठे हैं, ऐसे अच्छा नहीं लगता, एक घूँट तो ले लो। चलो कोई नहीं, अब घूँट ले लिया बेचारे ने। अगले दिन उस घूँट की याद आई तो फिर पहुँच गया। बस इसी में जरा–२ में फिसल गया। एक शायर ने लिखा है–

सिर्फ इक कदम रखा था, गलत राहे शौक में।
मंजिल तमाम उमर मुझे ढूँढ़ती रही।।

"एक कदम मैंने शौक में आकर गलत रास्ते पर रख दिया था, मेरी मंज़िल मुझे उमर भर ढूढ़ँती रही, पर मैं उसे मिला नहीं।" कहने का अभिप्राय कि ऐसा बहा मैं कि गर्त में ही जाकर मुझे ठिकाना मिला। हम देखते हैं, इसी प्रकार से अधिकांश लोग शौक में आकर गलत रास्ते पर कदम रख देते हैं अर्थात् बुराई में प्रवृत्त होते हैं फिर बुराई स्वभाव बन जाती है जहाँ से निकलना मुश्किल हो जाता है। इसलिए बताया गया कि तुम सत्संग करो। सत्संग के तीन रूप हैं। शास्त्रों में एवं शिवपुराण में भी यही बात बताई गई कि सत्संग के तीन रूप हैं। सत् संग जिसका अभिप्राय होता है सत् में अनुरक्ति। सत् पुरुष, सत् शास्त्र और सत् परमात्मा तीनों का संग सत्संग कहा जाता है। पहले तुम्हें कोई सद्गुरु मिले, उसका संग करो, उसके पास बैठो, यदि वह तुम्हें कुछ नहीं देगा तो भी लाभप्रद ही होगा। जैसा मैंने एक दिन पूर्व भी बताया था कि यदि तुम इत्र वाले की दुकान पर जाकर बैठ जाओ, इतर न खरीदो तो भी उसकी सुगन्ध से वंचित नहीं रहोगे। गन्ध की दुकान पर जाकर बैठ जाओ, अगर खरीदो नहीं तो दुकानदार तुम्हारे नाक में जो सुगन्ध जा रही है, उसको तो नहीं रोकेगा। वह सुगन्ध तो तुम्हारी नाक में जाना ही है। कबीर ने लिखा है–

कबीरा संगत साधु की ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं तो भी बास सुबास।।

सत्संग में जाओ, अगर वहाँ से कुछ न खरीदो तो जो सत्संग की लहरें चल रही हैं, सात्त्विक परमाणुओं का प्रवाह जो चल रहा है, उसको तो कोई रोक नहीं सकता, वह तो तुम्हें मिलेगा ही। सत्संग का अभिप्राय सत् पुरुषों का संग जिन्होंने सत् को जाना है, पहचाना है, समझा है, अनुभव किया है, ऐसे महापुरुषों के संग में बैठो, वह सत्संग है। उससे तुम्हें चेतना मिलेगी, प्रेरणा मिलेगी और तुम उसके द्वारा विकास की दिशा में आगे बढ़ोगे। दूसरा सत्संग सद्ग्रन्थ का है, अपने घर में दुनिया भर की व्यर्थ की पुस्तकें लाकर रखते हो, कोई नावल है, कोई जासूसी है, दुनिया भर की बिना मतलब की पुस्तकें। वहाँ बैठे–२ तुम किसका ध्यान करोगे। यदि भूल से तुमने कोई पन्ना उठाकर खोलकर पढ़ लिया तो क्या मिलेगा तुम्हें? वही दुर्भाग्य, जिसमें भक्ति नहीं सद्भाव नहीं। इन इन्द्रियों को बहुत संभाल कर रखना चाहिए। परमात्मा की दी हुई वस्तु है, इनका दुरुपयोग क्यों करते हो? इनकी संभाल करो, इनको गलत रास्ते पर न जाने दो, आँखों से गलत चित्र मत देखो, अगर भगवान् का चित्र लगा होगा तो जिधर भी घर में देखोगे भगवान् का दर्शन होगा। इसी प्रकार से कुछ लोग अपने घरों में राम नाम लिखकर लगाये रखते हैं, बिना जाने ही तुम्हें राम शब्द देखना पड़ेगा, बोलना पड़ेगा। इसी प्रकार घर में अच्छे–२ ग्रंथ, अच्छी–२ पुस्तकें रखो, कोई आयेगा उसे उठाकर पढ़ लेगा। घर में अच्छे संस्कार युक्त ग्रन्थ हों, वेद शास्त्र हों, अच्छे व्याख्यान हों, महापुरुषों का साहित्य हो, कितना लाभ होगा, तुम जान नहीं सकते। कभी–कभी एक पंक्ति भी जीवन परिवर्तन कर देती है। किसी पुस्तक को खोलिये, पढ़िये तो किसी समय एक लाईन से भी जीवन में बहुत लाभ होता है।

भारत में एक प्रान्त है पंजाब। पंजाब में एक महात्मा हुये थे, जिनका नाम छज्जु राम था। एक दिन वह महात्माओं के पास गये। वहाँ महात्मा का कोई व्याख्यान हो रहा था। उन्होंने बताया कि जीवन को एक रास्ते पर लगा देना चाहिये। एक रास्ते पर लगाने से जीवन आगे ही आगे चलता है, विकसित होता है। सुनकर वह आये, जब घर की तरफ चले तो मन उनका यही सोच रहा था कि मुझे किधर लगना है। प्रातः का समय था, यही सोचते हुए चले जा रहे थे। भंगिनि आ रही थी, बाल्टी में कूड़ा लेकर

फेंकने जा रही थी। उनको तो होश नहीं था कि कोई आ रहा है, वह चिन्तन में निमग्न चले जा रहे थे। भंगिनि ने पंजाबी में उनसे कहा, "भरा जी, इक पासे हो जाओ"। इसका अर्थ होता है, हे भाई! आप एक तरफ हो जाओ। उसने इसलिए नहीं कहा कि तुम जीवन में एक तरफ हो जाओ, उसने तो इसलिए कहा कि कहीं गन्दा न लग जाए। उन्होंने सोचा और कहा–"अच्छा माँ! मैं एक तरफ हो रहा हूँ।" घर जा रहे थे और वहीं से लौट पड़े। बात उसने क्या कही थी किन्तु उस समय उनका मन विचार कर रहा था, वह बात उनके हृदय में जा लगी और उसी से उनको बोध हो गया और वे अच्छे संत बने। आपका मन जहाँ काम करता है आप उस समय किसी की कही हुई बात को उसी तराजू में तोलते हो। अच्छाई के विचार में हो तो सामान्य बातें भी आपको अच्छाई का प्रकाश करेंगी, बुराई के चिन्तन में हैं तो सामान्य बातें भी आपको बुराई की ओर ले जायेंगी।

आप लोगों को इतिहास की एक कहानी सुनाऊँ। आपने शिवाजी का नाम सुना होगा जिन्होंने मुसलमानों को जीत कर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की और औरंगजेब के गर्व को जिन्होंने मिटटी में मिलाया। जब युद्ध हो रहा था, युद्ध में उनकी विजय हुई। नवाब की बड़ी सुन्दर कन्या थी। युद्ध जीतने के बाद इनके सिपाहियों ने नवाब की कन्या को महल से उठा कर डोली में बिठा दिया और शिवाजी के पास ले चले। उन्होंने सोचा कि मुसलमान राजपूतों की अधिकांश कन्यायें ले गये हैं। आज हमारे लिए भी दिन आ गया है, आज इनकी लड़की उठाकर ले जाओ। शिवाजी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये, कहा "राजन! हम आपके लिए एक अतीव सुन्दर उपहार लेकर आए हैं"। उन्होंने सेनापति से पूछा, "क्या है?" नवाब की सुन्दर कन्या को सामने खड़ा कर दिया। देखकर शिवाजी ने कहा–"वाह–वाह! धन्य है तेरा बनाने वाला, धन्य हैं तेरे माँ–बाप।" इतना सोचते–२ उनके नेत्रों में आँसू आ गये। उनके कमांडर ने पूछा–"राजन्! क्या बात है? "आपके नेत्रों में आँसू क्यों हैं?" हमने बदला लिया है शत्रु से। ये भी हमारे राजाओं की बहुत सी लड़कियाँ जबरदस्ती उठाकर ले गये हैं, हमें भी आज अवसर मिला है, हम भी इनकी लड़की ले आए हैं। आपके नेत्रों में आँसू क्यों हैं?" शिवाजी कहते हैं कि मेरे नेत्रों मे आँसू क्यों हैं, मैं इसका उत्तर नहीं दे

सकता लेकिन इतनी बात को समझता हूँ, मैं देख रहा हूँ इस भव्य मूर्ति को, काश मेरी माँ इतनी सुन्दर होती। यह शब्द सुनकर सभी हैरान हो गये। पूछा, "भगवन्! आज्ञा क्या है?" कहा—"आज्ञा यह है कि अनेक प्रकार के उपहार देकर इस देवी को इसके बाप के यहाँ पहुँचा दिया जाए। हम हिन्दू हैं, हम क्षत्रिय हैं, हम मुसलमान नहीं।" एक शत्रु की कन्या में भी शिवा ने अपनी माँ को देखा। दृष्टि की बात है और कोई मुसलमान होता तो? अलग–२ संस्कार हैं। हमारे यहाँ यह संस्कार है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डिता।।

हिन्दू धर्म का यह सन्देश है। एक बार मैं इंग्लैण्ड में था, बातचीत हो रही थी। एक अग्रेंज सज्जन खड़े हुए। उन्होंने कहा—"स्वामी जी! आप भारतीय सभ्यता एवं हमारी सभ्यता के विषय में कोई सूक्ष्म सी बात समझा सकते हैं जो दो शब्दों में ग्रहण की जाये?" मैंने कहा—"देखिये, हमें बच्चेपन से यह सीख मिली है कि अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त दुनिया में जितनी देवियाँ हैं, सब हमारी बहन, माँ या बेटी हैं और तुम्हारी संस्कृति–सभ्यता में यह सीख है कि अपनी जाई हुई माँ को छोड़कर दुनिया में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब स्त्रियाँ हैं। मुहम्मद साहब ने कहा केवल दूध का सम्बन्ध छोड़कर दुनिया में जितनी स्त्रियाँ हैं, सब स्त्रियाँ हैं।" हमारे यहाँ यह बताया गया कि अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त दुनिया में जितनी स्त्रियाँ हैं सब मातायें हैं, यह संस्कार हैं। जिस संस्कार में व्यक्ति पलता है उसी प्रकार की भावनायें पुष्ट होती हैं। उसी प्रकार से उसका जीवन बनता है। इसलिए मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि सत्संग और कुसंग की यह महिमा है। अच्छे पुरुषों के पास बैठो, अच्छा साहित्य अपने घर में रखो। तुम पढ़ोगे, तुम्हारे बच्चे पढ़ेंगे, तुम्हारे घर में आने वाला व्यक्ति पढ़ेगा, उससे उनमें उनके संस्कार जागेंगे।

तीसरी बात घण्टे आध घण्टे एकान्त में बैठकर प्रभु का ध्यान करो। सत् परमात्मा का संग, यह नियम बनाओ। अरे भले आदमी! कार की सफाई में तुम घण्टे लगा देते हो और इस शरीर की सफाई मे भगवान् भला करें। शीशे के आगे खड़े हो गये तो अपने को घण्टों संवारते रहे, सोचते हैं उनके जैसा तो दुनिया में

कोई सुन्दर नहीं। तुम ज़रा सोचो जिस शरीर को तुम संवारते हो, क्या है उसमें? क्या बताऊँ दोस्त! जिस तत्त्व से इस शरीर का निर्माण हुआ है, उसको तुम देख नहीं सकते। उल्टी आ जाये। एक पद में मैंने कहा है–

नारी नर का संयोग हुआ, दो बूँद मिला गंदा पानी।
यह खेल विचित्र देख प्रभु की, होती है मन में हैरानी।।
कुछ समय बुदबुदा रूप रहा फिर तन की रचना शुरू होई।
माता के उदर मध्य, प्यारे! मल-मूत्र रक्त से जुरी हुई।।

धीरे–२ बढ़ता हुआ पहले बुदबुदा बना, गोला बना, छोटा सा सैल बन गया, फिर उसमें सिर निकला, हाथ–पाँव निकलने प्रारम्भ हुए।

बन गया पूतला क्रम-२ से, स्थूल शरीर तमोगुण का।
इन्द्रियाँ रजोगुण से प्रगटी मन बुद्धि चित्तादि सतोगुण का।।
वासना मूल आधार हुई, नारी या नर के विग्रह का।
कर्मों से बन्धा जीव तामे, आ पड़ा यातना निग्रह का।।
दुःख सहे अनेकों गर्भ माहिं, कहने में आता जो ना है।
अब जाग बावरे होश में आ, निशि बीत गई क्या सोना है।।

यह शरीर कैसे बना है–

है द्रव्य कारीगर नहीं, पर कोठरी आली बनी।
दो बूँद गन्दे नीर से, सब ठौर है लाली बनी।।

इसके अन्दर क्या है?

मल मूत्र मज्जा रुधिर तान समान सब अपवित्र है।
ता पर रुचिर पर्दा लगा यह खेल परम विचित्र है।।

यह पर्दा ऊपर से हट जाये देवता! तो सारी पोल खुल जाये। बताते हैं नेत्र क्या है? कमल है। प्रातः उठते ही देखो, जब नेत्रों को मलो तो क्या निकलेगा? पराग। भला! सोचो कितना सुन्दर मुख है जैसे चन्द्रमा। थोड़ा सा नाक दबाओ तो देखो चन्द्रमा से क्या निकलता है? यह शरीर मल–मूत्र का भंडार है, इसके सिवा कुछ नहीं लेकिन मेरे दोस्त! ऊपर जो पर्दा पड़ा हुआ है, इसी में अपनी इज्जत है। यदि पर्दा हट जाये तो सारा दिवाला निकल जाये। इतना निकृष्ट शरीर है। आचार्य शंकर से पूछा गया–

नरकस्य नरकं किम्?

नरक का भी नरक क्या है? कहा–'स्व शरीरम्' अपना

शरीर। इससे बड़ा नरक और क्या हो सकता है?

कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसको मैं पवित्र कहूँ। एक बार मैं विचार कर रहा था कि यदि कुम्हार के घर से तुम मिट्टी की कच्ची हंडिया ले आओ, उसमें मिठाई रख दो तब भी वह एक सप्ताह तक तो चल ही जायेगी। यह कुम्हार की कच्ची हंडिया से भी इतना गन्दा भाँड है, सारी सुन्दर दुकानों पर सजी हुई मिठाईयाँ इस भाँड में रख दो और दो मिनट बाद उसे बाहर निकालो तो देख सकते हो? नहीं देख सकते। इतना गन्दा भाँड है। जिसके ऊपर इतना गर्व है कि हम भी कुछ हैं। किन्तु क्या हो तुम? यह है क्या? केवल मल–मूत्र के भाँड, यही न कि और कुछ? मेरे दोस्तो! इसी भाँड में एक अनमोल रत्न भी है। कबीरदास जी ने कहा है–

मोर हीरा हिराय गया कचरे में!
कोउ मन्दिर कोउ मस्जिद बताये कोउ पानी कोउ पथरे में
मोर हीरा हिराय गया कचरे में।

इस कचरे में जो हीरा गुम गया है उसके लिए कोई कहता है तुम मन्दिर में जाओ, कोई कहता है मस्जिद में जाओ, कोई कहता है तीर्थ पर जाओ, कोई कहता है भगवान् की मूर्ति के पास जाओ किन्तु मेरा हीरा वहाँ गुम नहीं हुआ। हीरा कौन है? जीवन। जीव रूपी हीरा इस कचरे में गुम हो गया है। इस कचरे में ढूँढ़ोगे तो उसे पा लोगे।

हेरि-हेरि हारे सकल, मिले न कबहुँ ताहिं।
नेति-नेति श्रुति कहत जेहिं सो प्रियतम मों माहिं।।
खाक छानते जगत की, पायो रत्न अमोल।
अमर मरत लखि बावरे, अमरन पति मत बोल।।

वह हीरा तुम्हें इसी में मिलेगा, इससे बाहर नहीं मिलने का। इसमें ढूंढने के लिए ही शिवपुराण में सत्संग का मार्ग बताया है।

सत्संग के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है; पहला साधन सत्संग है। सत्संग के तीन भेद हैं। सत् जो परमात्मा है उसका संग, घण्टा, आध घण्टा बैठो, कुछ समय निकालो। मन्दिर में गये, प्रणाम किया चल दिये कि हमें बहुत जल्दी है, फुर्सत नहीं क्या करें? अरे भले आदमी! एक दिन ऐसी फुर्सत मिलेगी कि काम ही नहीं होगा। आज जो तुम्हारे पीछे–२ दौड़ रहे हैं, तुम्हें व्यस्त रख

रहे हैं, इनका कोई ठिकाना नहीं होगा, कोई ठौर नहीं होगी? कोई साथ नहीं देगा, उस समय दोस्त! इसलिए उस सत्य को समझो और सत्य को समझ कर थोड़ा समय निकाल कर प्रातः उठने के बाद प्रभु के चिन्तन में घण्टा आध घण्टा बैठ जाओ। सायंकाल से पूर्व आध घण्टा बैठ कर सत्य का चिन्तन करो, यह पहला सत्संग है।

दूसरा सत्संग सत्पुरुषों, विद्वानों के चरणों में बैठो, उनका सत्संग करो। तीसरा सत्संग है यह साहित्य, सद्ग्रन्थ अपने घर में रखो, उनको पढ़ो। जो बातें महापुरुषों की होती हैं, वही उनके ग्रन्थों में होती हैं, उनको पढ़ो। ये तीन प्रकार के सत्संग बताये गये हैं–सद्ग्रन्थ का संग, सत्पुरुष का संग और सत्परमात्मा का संग, इन तीनों प्रकार के संग से तुम्हारे चित्त में एक प्रकार की चाह पैदा होगी जानकारी के लिए। 'सत्संगत्वे निःसंगत्वम्', संसार से तुम्हें उपरामता मिलेगी। विचार करोगे, सही में संसार में कुछ नहीं है। यदि यह सारी कथा मनोरंजन के लिए सुनते हो तो क्या लाभ होगा?

मुझे एक कथा याद आ गई। एक सज्जन थे, प्रतिदिन सत्संग में जाते थे। बड़ी रुचि लेते थे, सुनते–२ झूमते थे किन्तु अपने घर में अपने बच्चों को कह रखा था कि कभी भूलकर सत्संग में नहीं आना। एक दिन संयोग की बात पिता जी कथा में गये थे। कोई अतिथि आ गया, उन्होंने लड़के से कहा–"जल्दी अपने पिता जी को बुलाओ, जरूरी काम है।" लड़के ने कहा–"वह तो सत्संग में गये हैं।" उसने कहा, "जल्दी जाकर बुला लाओ, बहुत जरूरी काम है।" वह लड़का बुलाने के लिए चला गया। भीड़ बहुत थी, वह लड़का सीढ़ियों पर खड़ा हो गया, जा नहीं पाया, कह नहीं सका। व्याख्यान सुनकर उसको भी आनन्द आया, खड़ा होकर सुनने लगा। व्याख्यान जब सम्पूर्ण हुआ, लोग जाने लगे। जब पिता बाहर आया, देखा, लड़का खड़ा है पूछा, "क्यों यहाँ कैसे आया?", "पिता जी! एक आदमी घर पर आया है, उसने आपको बुलाया है कि बहुत जरूरी काम है।" पूछा–"तू कब से आया है?" कहा ,"घण्टे हो गये।" सुनते ही उन्होंने दो चाँटे उस लड़के को लगाये। "अरे! मैंने तेरे को मना किया था सत्संग में नहीं आना। क्यों आया है?" महात्मा जी देख रहे थे, उन्होंने पूछा "भक्त जी! आप बच्चे को सत्संग में आने

के लिए क्यों मार रहे हो?" उन्होंने कहा–"स्वामी जी बात यह है कि बच्चे को मना किया था कि कभी सत्संग में नहीं आना, फिर भी आ गया"। पूछा–"आप क्यों आते हो?" कहा मैं तो पक्का घड़ा हूँ। यहाँ पर तो जितने आपके व्याख्यान की वर्षा होती है, वह मुझ पर पड़ती है और फिसल जाती है। यह अभी कोमल है, कच्चा घड़ा है, यदि इस पर आपकी वर्षा हुई, यह कहीं गल गया, तो हमारा तो दिवाला निकल जायेगा। हम तो सुनने के आदी हो गये हैं, हम तो सुनते ही रहते हैं। हम पक्के घड़े हैं। आपकी वर्षा का हम पर कोई असर नहीं होने का। हम तो सुनते हैं सुनने के लिए। इसका अभी कोमल हृदय है, आपकी त्यागमयी बातें इसके दिमाग में पड़ जाऐं और यह कच्चा घड़ा गल जाये तो हमारा दिवाला निकल जायेगा। यदि पक्के घड़े की तरह केवल वर्षा का आनन्द लेना हो तो बात अलग रही। सत्संग का लाभ सही में वही है जो आप लोगों को बताया है।

जहाँ तक सत्संग की बात है वहीं से आपको सद्‌गुरु की प्राप्ति होगी। सुनते–२ कभी कोई ऐसा महापुरुष आ जाता है जिसको देखकर हृदय में आत्मीयता वा प्रियता का जागरण होने लगता है। एक बात याद रखो, विद्वान् और गुरु में अन्तर होता है। विद्वान् बहुत मिलते हैं। सभी उनकी बात सुनते हैं किन्तु बड़े से बड़े सिद्ध पुरुष के प्रति भी हमारी आत्मीयता नहीं बनती क्योंकि उससे हमारा कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं होता। जब अपना गुरु आ जाता है, सत्संग में कहीं उसके दर्शन हो गये तो स्वभावतः उसके प्रति आत्मीयता का सम्बन्ध हो जाता है। ऐसा लगता है कि यह मेरे हैं। आत्मीयता करनी नहीं पड़ती, अपने आप हो जाती है। उनके प्रत्येक शब्द अपने हृदय को छूने लगते हैं। ऐसा लगता है कि वह जो कुछ कह रहे हैं मेरे लिए कह रहे हैं। जब ऐसी स्थिति आ जाये और जिस समय किसी महात्मा की बात आपको अपनी बात लगने लगे, याद रखो वह आपका गुरु है। उनके पास जाकर के उससे मार्ग पूछो। जब सद्‌गुरु मिल जायेगा और उसके बताये हुए मार्ग पर चल दोगे फिर सत्य दूर नहीं है, फिर दुनिया की कोई शक्ति नहीं जो तुम्हें इस संसार (पाश) से बांध सके। दुनिया का बन्धन तब तक है जब तक सद्‌गुरु नहीं मिला या जब तक गुरु की शरणागति नहीं ली, उसके बाद संसार बन्धन नहीं रहता।

शिवपुराण में यह बात बताई गई है कि सत्संग में बार–बार

जाने से सद्‌गुरु की उपलब्धि हो जायेगी, उसके शब्द अपने हृदय को आन्दोलित कर देंगे। वहाँ पर तीन प्रक्रिया बताई गई हैं। उत्तम अधिकारी है तो गुरु के शब्द सुनकर ही उसके हृदय में हलचल पैदा हो जायेगी, वहीं से ज्ञान उत्पन्न हो जायेगा। पहला उत्तम अधिकारी तो वही है जिसको देखकर हृदय में आत्मीयता जागृत हो जाये। दूसरा, उसके शब्द सुन हलचल मची, तीसरा सुनते–२ जैसे–२ मोह का अन्धकार दूर हो जाता है वैसे–२ आत्मीयता बढ़ती जाती है। वही आत्मीयता प्रेम में परिणित होकर एक अटूट सम्बन्ध, जिसे गुरु–शिष्य सम्बन्ध कहते हैं, उसमें बाँध देती है। यह सत्संग, सद्‌गुरु की प्राप्ति, सद्‌गुरु से साधन की प्राप्ति, साधन से चित्तशुद्धि, चित्तशुद्धि से शुद्ध ज्ञान, शुद्ध ज्ञान से शिव तत्त्व का बोध, शिव तत्त्व के बोध से समर्पण और समर्पण से ही पाशों से मुक्त होना है, यही जीवन का अन्तिम ध्येय है, यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। वेद में एक जगह प्रश्न आया है। जब तक हम शिव तत्त्व को नहीं जानते क्या हमारी मुक्ति नहीं हो सकती? ऋषि कहता है, हो सकती है। कहा–हमें वह उपाय बता दो जिससे हम शिव तत्त्व को बिना जानें मुक्त हो जायें। ऋषि कहता है–

यदाचर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

(श्वेता० ६/२०)

"जब तुम आकाश को चमड़े के समान लपेट कर अपनी बगल में दबाने की सामर्थ्य रखोगे तब उस देव को बिना जाने तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।" यह तो असम्भव है। आकाश को कोई चमड़े के समान लपेट कर बगल में दबा सकता है? नहीं, यह तो नहीं हो सकता। कहा–यदि यह नहीं हो सकता तो वह भी नहीं हो सकता। बिना परमात्मा का ज्ञान हुए तुम कभी भी इस संसार–सागर से पार नहीं हो सकते, दुःख से मुक्त नहीं हो सकते। इसी क्रम में आगे बताया है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

(श्वेता० ६/२३)

जिस देव में तुम्हारी पराभक्ति है, जैसी पराभक्ति देव में है, ऐसी पराभक्ति गुरु में हो तो शास्त्र में अकथित अर्थ भी हृदय में प्रकाशित हो जाता है।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।

(श्वेता॰ ६/२३)

शिव पुराण में भी यही बात बताई गई है। शिव और गुरु इन दोनों को यदि तुम दो मानते हो तो भक्ति अधूरी है। शिव ही गुरु है और गुरु ही शिव है। शिव साक्षात् गुरु रूप में प्रकट है।

महात्मा नारद जन्म से सिद्ध थे। पहले जन्म में वे दासी पुत्र थे; उनकी माँ सन्तों की सेवा करती थी; उसके पुण्य के प्रभाव से दूसरे जन्म में वह ब्रह्मा पुत्र बने। ब्रह्मा के पुत्र बनने के पश्चात् वह ऋषि हुए और प्रत्येक स्थान पर उनका सम्मान होता था। जहाँ जाते वहीं सम्मान होता था। एक स्थान पर भागवत् की कथा हो रही थी। वहाँ भी वह प्रतिदिन जाते और बड़े आदर से उनको बिठाया जाता था। जब वह वहाँ से चले जाते तो लोग वहाँ से उस स्थान की मिट्टी खोद कर नई मिट्टी लाकर बिछाते। एक दिन अचानक उनकी दृष्टि पड़ गई, देखा वहाँ कुछ खोदा हुआ है, बिस्तर उठाया देखा, वहाँ नई मिट्टी थी। हैरान हो गये, यह क्या? ऋषि से पूछा—"ऋषिवर! जब हम यहाँ से जाते हैं तो उस स्थान की मिट्टी निकाल कर ताजी मिट्टी रखी जाती है और आसन लगाया जाता है। ऐसा क्यों होता है?" उन्होंने बताया, इसलिए कि आप गुरु विहीन हैं। गुरु विहीन के लिए किसी भी प्रकार के यज्ञ की व्यवस्था नहीं है। शिवपुराण के प्रारम्भ में भी यही आया है कि यदि कोई यज्ञ में प्रवृत्त होना चाहे तो दीक्षित होकर ही उस यज्ञ के फल को प्राप्त कर सकता है। आप गुरु हीन हैं इसलिए आपके लिए यह व्यवस्था है।

बड़ा दुःख हुआ नारद जी को। वह ब्रह्मा जी के पास गये और कहा—पितामह! आपने मुझे यह नहीं बताया कि मेरा गुरु कौन है? सभा में मेरा इस प्रकार से अपमान हुआ। कहा—वत्स! घबराओ नहीं, तुम्हें गुरु मिलेगा। पूछा, कौन होगा मेरा गुरु? कहा—प्रातःकाल जब तुम सोकर उठोगे, जो सबसे प्रथम तेरे सामने आयेगा, वही तेरा गुरु होगा। वह जाकर सो जाते हैं, रातभर नींद नहीं आ रही, कल को गुरु मिलेगा, बड़ी उत्सुकता है। जब प्रातःकाल चार बजे उठकर अपनी झौंपड़ी के बाहर जाते हैं तो झाडू लिए चाण्डाल खड़ा है। देखते ही याद आ गया कि पिता ने कहा है कि प्रातःकाल जो सबसे पहले मिलेगा वही मेरा गुरु होगा, चरणों में

गिर गये। उसने स्वभावतः 'राम–राम' कहा। नारद जी ने सोचा हमें राम–नाम मिल गया। अब वह उस सभा में गये तो आसन ठीक था। पूर्व जैसा उनके साथ व्यवहार नहीं हुआ। ब्रह्मा के पास गये, ब्रह्मदेव ने पूछा–वत्स! गुरु मिल गये। गुरु तो मिल गये लेकिन.....। लेकिन क्या? जो गुरु के लिए लेकिन करता है उसे तो ८४ लाख योनियाँ भोगनी पड़ती हैं। शिवपुराण में भी यह बात आई कि गुरु के लिए यदि कोई लेकिन कहता है तो ८४ लाख योनियों में उसे भटकना पड़ता है। नारद बहुत घबराये कि यह दूसरी मुसीबत आ गई। कहा–पितामह! इसके उद्धार का उपाय? कहा–मैं इसके उद्धार का उपाय नहीं जानता, वह तो गुरु ही बतायेगा। रात भर चिन्ता के कारण नींद नहीं आई। बैठे रहे, कब सवेरा हो, कब गुरु के दर्शन हों, कब मैं उनसे पुछूँ, सवेरा होते ही वह चण्डाल हाथ में झाड़ू लिए दिखाई दिया। जाकर उसके चरणों में गिर गये। गुरुदेव! आप मुझे क्षमा करें। उसने कहा, मैं आपका गुरु नहीं। मैं चण्डाल और आप ऋषिपुत्र! मैं आपका गुरु कैसे हो सकता हूँ? नारद जी ने कहा, चाहे आप जो कुछ हों पर आप मुझे क्षमा कर दो तथा कल की सारी कथा बता दी। पिता जी ने कहा है कि ८४ लाख योनियों में भटकना पड़ता है। फिर क्या हुआ? जाओ ८४ लिखो, उसी में लोट जाओ। अब उन्होंने उसी समय ८४ लिख कर उसी में लोटना शुरू किया। देखा, सामने कौन था, जानते हो? भगवान् शिव! उन्होंने कहा–नारद! तुम्हारी परीक्षा के लिए मैं ही चण्डाल रूप में प्रकट हुआ था। हमारे शास्त्रों में ऐसा बताया है–

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।

(रा॰ १/३)

शिव और गुरु दोनों एक तत्त्व हैं, दो तत्त्व नहीं। शिव को गुरु की भावना और गुरु को साक्षात् शिव रूप स्वीकार करके एक निष्ठ होकर गुरु के बताये हुए साधन में पूर्ण आस्था के साथ लगे रहना चाहिए। रामायण में एक कथा आती है पार्वती की। जब सप्तऋषि उनको बहकाने के लिए जाते हैं तो पार्वती जी अपनी घोषणा करती हैं–

तजऊँ न नारद कर उपदेसु।
आपु कहहिं सत बार महेसू।।

(रा॰ १/८१–६)

ऋषि कहते हैं, तुम्हें शिव नहीं मिल सकते। पार्वती कहती हैं, मैं नारद जी के उपदेश को त्याग नहीं सकती चाहे शंकर जी स्वयं आकर हज़ार बार मेरे को कहें। पार्वती जी ने कहा–

गुरु के वचन प्रतीति न जेही।
सपनेहूँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(रा॰ १/८०–८)

जिसको अपने गुरु के वाक्य में विश्वास नहीं है, उसके लिए स्वप्न में भी न कोई सुख है न सिद्धि। इसीलिए पार्वती जी ने कहा, मैं गुरु वाक्य में आस्था रखती हूँ, शंकर जी मुझे नहीं मिलेंगे, ऐसा हो नहीं सकता। वही हुआ, भगवान् शंकर को स्वयं आना पड़ा।

मैं आपको यही बता रहा था कि शिवपुराण में, विशेषकर शैव मत में, वैसे प्रत्येक मत में, हमारे सनातन धर्म का सिद्धान्त ही यही है कि गुरु पहले है ज्ञान बाद में। शैव सिद्धान्त में जो मैं अभी आपको पाशुपत धर्म की बात बता रहा था कि एक कदम भी कोई गुरु के बिना आगे बढ़ नहीं सकता। आज के व्याख्यान में बताया गया कि सत्संग सबसे पहली बात है। सत्संग से सद्गुरु प्राप्ति, सद्गुरु प्राप्ति से साधना, साधना से चित्त शुद्धि, चित्त शुद्धि से तत्त्व बोध, तत्त्व बोध से शिव का यथार्थ ज्ञान और यथार्थ ज्ञान के पश्चात् शिव में समर्पण, यही शैव संहिता का सार तत्त्व है जो मैंने आज आपको बताया है। इन्ही शब्दों के साथ मैं अपने विचारों को यहीं विश्राम देता हूँ।

हरि ऊँ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ऊँ नमः शिवाय ऊँ नमः शिवाय

२१/२/८२, हालैण्ड

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

प्रभु के मंगलमय विधान से हम आप सभी आज ११ दिनों से भगवान् भूत–भूतेश्वर की अनन्त महिमा का चिन्तन कर रहे हैं। नित्य प्रति आप लोगों को शाश्वत सनातन धर्म से सम्बन्धित नई–नई बातें सुनने को मिल रही हैं, यह भगवत् कृपा का ही प्रसाद है। मैं ऐसा समझता हूँ कि यदि इसका अंशमात्र संस्कार भी आप अपने जीवन में लेकर जायेंगे तो उससे आपके कल्याण का बीज पड़ जायेगा। जिस प्रकार बीज वृष्टि से अंकुरित होकर वृक्ष रूप में परिणत होता है, फूलता और फलता है, इसी प्रकार से यह संस्कार का बीज आपके जीवन में भगवत् कृपा की वृष्टि से साधना के रूप में अंकुरित होगा। साधना के रूप में अंकुरित होकर पूर्ण आस्था का वृक्ष बनेगा जिसका फल अमृतमय और आनन्दमय होगा। इसी सद्भावना से मैं आप लोगों को शिव महापुराण की व्याख्या सुना रहा हूँ। कल का दिन और है, कल इस महायज्ञ की पूर्णाहूति है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भगवान् की अहैतुकी कृपा से यह सकुशल वा निर्विघ्न सम्पन्न होगी।

कल मैंने आप लोगों को कुछ बातें बताई थी। शैव सिद्धान्तानुसार साधन और साध्य, इन दोनों विषयों पर कुछ चर्चा की थी और आज भी उसी से सम्बन्धित कुछ बातें बताऊँगा। आप सदैव दो बातें स्मरण रखें, आज तक कभी भी किसी की आत्मा अपवित्र नहीं हुई और शरीर कभी भी किसी का पवित्र नहीं हुआ। शरीर को ऊपर से धो लेने पर, चन्दन–तिलक का लेप कर लेने पर भी यह गन्दगी का भाण्ड है, इसमें गन्दगी रहती है, इसको कभी भी, किसी काल में भी पवित्र नहीं किया जा सकता। आत्मा को कभी किसी ने अपवित्र नहीं किया और न कभी अपवित्र हो सकती है। जैसे सूर्य की किरणें गंगाजल पर पड़ने से पवित्र नहीं होतीं और किसी मल–मूत्र, गन्दगी पर पड़ने से अपवित्र नहीं होती,

किरणों में पवित्रता–अपवित्रता की कल्पना नहीं की जा सकती, इसी प्रकार से हमारी आपकी आत्मा सूर्य किरण के सदृश है, वह कहीं भी पड़े, किसी भी रूप में पड़े, वह गन्दी वा अपवित्र नहीं होती। फिर शुद्धि किसकी होती है? पवित्र किसको करना पड़ता है? आज इसके विषय में थोड़ा सा समझ लें।

शरीर को पवित्र नहीं करना, वह तो अपवित्र है। जो कुछ आप खायेंगे, खाने के साथ ही घण्टे भर बाद तुरन्त उसका मल बनना प्रारम्भ हो जाता है। तीन घण्टे तक हजम होकर मल–मूत्र और रस अलग–अलग हो जाता है। आपके शरीर में यदि कुछ मात्रा में मल–मूत्र न हो तो आप जीवित नहीं रह सकते, उसी के द्वारा आपको चलने–फिरने, उठने–बैठने की शक्ति मिलती है इसलिंए वह भी जरूरी है। शरीर को शुद्ध करने के लिए कोई साधना नहीं है स्वस्थ रखने के लिए है। स्वस्थ रहना अलग बात है और शुद्ध होना अलग। दूसरी बात रही इन्द्रियों की। इन्द्रियाँ स्वयं में न तो शुद्ध होती हैं और न अशुद्ध। इन्द्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं, इनका कोई भी स्वतन्त्र कार्यक्रम नहीं होता। आँख अपनी रुचि से देख नहीं सकती, कान अपनी रुचि से सुन नहीं सकते, जिह्वा अपनी रुचि से खा नहीं सकती, बोल नहीं सकती और पांव अपनी रुचि से चल नहीं सकते। मेरे कहने का अभिप्राय ये सब पराधीन हैं, सब यन्त्र हैं। जिस प्रकार बिजली का बटन दबाने से प्रकाश और बन्द करने से अंधेरा हो जाता है, बटन के अधीन यह प्रकाश है ऐसे ही हमारी इन्द्रियाँ हमारे मन रूपी बटन के अधीन हैं। मन यदि आँख के साथ है तो आँख देखेगी, कान के साथ है तो कान सुनेगा, मन जुबान के साथ है तो जिह्वा बोलेगी और पांव के साथ है तो पाँव चलेगा अर्थात् मन जिस इन्द्रिय के साथ है वह इन्द्रिय काम करेगी, मन जिसके साथ नहीं है, वह इन्द्रिय काम नहीं कर सकती। इसलिए गीता में भगवान् ने एक बात बताई कि जहाँ आपका मन है वहीं आप हैं और आप का जैसा मन है वैसे आप हो। आपका मन ही आपके व्यक्तित्व का प्रतीक है। भगवान् ने गीता में उसे सत्त्व कहा है–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

(गीता १७/३)

भगवान् कहते हैं–"हे अर्जुन! मनुष्य श्रद्धानुरूप है वा सत्त्वानुरूप है। सत्त्व माने अन्तःकरण। अन्तःकरण का व्यक्त रूप आपका मन है। जैसा आपका मन है, जैसा आपका अन्तःकरण है वैसा आपका जीवन है, वैसे ही आप सोचेंगे, समझेंगे, संकल्प करके वैसे ही आप काम करेंगे अर्थात् आपके जीवन का समस्त क्रियाकलाप आपके मन के अधीन है। भारत में एक सुन्दरदास सन्त हुए हैं, उन्होंने अपने एक पद में लिखा है–

सुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म सरूप।

हमारा जो मन है जब शरीर और इन्द्रिय के साथ जुड़ जाता है तो जीव बन जाता है और यही मन जब परमात्मा के साथ जुड़ जाये तो ब्रह्म बन जाता है। मन जिसके साथ जुड़ जायेगा, वही हो जायेगा। मन किस के साथ जुड़ता है? जिसको चाहता है, जिसकी महिमा को स्वीकार करता है। जिसकी महिमा नहीं जानता उसके साथ नहीं जुड़ेगा।

एक व्यक्ति रास्ते में चला जा रहा था, हीरे का जानकार और पारखी था। वहाँ एक गड़रिया भेड़ें चरा रहा था, उसे कहीं से चमकता हुआ बड़ा सुन्दर पत्थर दिखाई दिया। बकरा उसे बहुत अधिक प्रिय था, वह सुन्दर पत्थर उसके गले में पहना दिया। जो व्यक्ति हीरे को पहचानता था, उसने रास्ते में जाते हुए देखा कि बकरे के गले में हीरा पहना हुआ है। गड़रिये को हीरे का पता नहीं था, उसके लिए यह एक चमकता हुआ पत्थर ही था। पहाड़ में बहुत पत्थर होते हैं, वह भी एक पत्थर है, उस की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं था। जब उस पारखी ने बकरे के गले में हीरा बँधा हुआ देखा तो उसको बुलाकर पूछा–"अरे भैया! बकरे के गले में पत्थर बाँध रखा है।" उसने कहा–"हाँ, यह बकरा मेरा है, मैंने पत्थर बाँध रखा है।" पारखी ने कहा–यह मुझे दे दो। उसने कहा–"तुम मेरे बकरे की अपेक्षा अधिक अच्छे हो जो तुम्हें दे दूँ?" उसने कहा–"तुम्हारे बकरे से अच्छे नहीं परन्तु तुम इस पत्थर के पैसे ले लो।" उसने कहा–"हाँ, पैसे लेकर तो मैं तुम्हें दे देता हूँ।" उसने पूछा–"क्या लेगा?" गडरिये ने कहा–"जो तुम दे दो"। वह जानता था कि पत्थर की क्या कीमत होती है? उसने कहा–"पाँच रुपये ले ले"। गड़रिये की दृष्टि में पाँच रुपये की बहुत कीमत थी। उसने पाँच रूपये लेकर बकरे के गले से पत्थर उतार कर ज्योंहि जौहरी

के हाथ में दिया तो पत्थर टूट कर चूर–चूर हो गया। जौहरी हैरान था, वह हाथ में लेकर देख रहा था कि यह क्या हो गया? आवाज़ सुनाई दी, 'अरे मूर्ख! गड़रिये को मेरा मूल्य पता नहीं था, जिस कारण उसने बकरे के गले में पहना दिया। उसने यदि पाँच रुपये कीमत लगायी तो मुझे दुःख नहीं था किन्तु तुमने मेरे मूल्य को जानते हुए भी मेरा इतना अवमूल्यन किया, इसलिए तू मेरी कृपा का पात्र नहीं है।" आप क्या समझे? जो व्यक्ति जिस वस्तु का मूल्य जानता है, उसके लिए वह महत्त्वपूर्ण है। यदि मूल्य को जानते हुए भी कोई उसे महत्त्व न दे तो वह उसे प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता। अन्य जितने जीव हैं वे उस गडरिये के समान हैं। उनको आत्मा रूपी हीरे का पता नहीं है, वह चाहे बकरे के गले में अथवा भेड़ के गले में बाँध दें, चाहे वह किसी भी अवस्था में रखें, किन्तु मनुष्य के पास बुद्धि है। मनुष्य यदि बुद्धिमान् होता हुआ उस हीरे की कीमत को नहीं पहचानता, उसका मूल्य पूरा नहीं लगाता तो वह उसे पुनः प्राप्त करने का अधिकारी नहीं बनता। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक व्यक्ति किसी वस्तु का मूल्य नहीं समझता तब तक उसकी उपयोगिता उसकी दृष्टि में नहीं है, उसका मन वा ध्यान उस ओर नहीं लगेगा। मूल्य समझने पर ही उसकी अनुरक्ति होती है।

मनुष्य शरीर में आकर हम आप उस परमतत्त्व का मूल्य समझ सकते हैं। आपका मन जिसको अधिक मूल्यवान् समझता है उसमें लगा रहता है। जिस समय आपकी जिह्वा पर मिठाई खाने का लार टपकता है, उस समय आपका मन उस पैसे से मिठाई की कीमत अधिक समझता है; इसलिए मिठाई के लिये पैसे दे देता है। जब श्रम करके पैसा प्राप्त करता है तो पैसे की कीमत समझता है; किन्तु जब पैसे से अधिक वस्तु की कीमत समझता है तो वह उस वस्तु के लिए पैसा दे देता है अर्थात् जिसका कम मूल्य समझेगा उसका समर्पण कर देगा। किसके लिए? जिसका अधिक मूल्य समझता है। मन की दृष्टि में मूल्यवान् कितनी वस्तुएँ हैं, यह नहीं कहा जा सकता। जिस समय जिसकी आवश्यकता है, उसकी दृष्टि में उस समय उसके लिये वही मूल्यवान् हो जाता है, इसलिए मन को चंचल कहा गया है। भगवान् से प्रार्थना करते हुए अर्जुन ने भी

कहा है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

(गीता ६/३४)

"हे प्रभो! मन बड़ा चंचल है, एक स्थान पर टिकता ही नहीं। आज अगर इस वस्तु को मूल्यवान् समझ रहा है तो कल किसी और वस्तु को, परसों किसी अन्य वस्तु को मूल्यवान् समझ रहा है। पहले समझता था कि लड़के की विद्या मूल्यवान् है, वह पढ़—लिखकर योग्य हो जाये। योग्य हो जाने के बाद विद्या की क्या कीमत है यदि उसे नौकरी नहीं मिली। अब नौकरी मूल्यवान् हो गयी, रातों—दिन उसके लिए चक्कर लगाता है, किसी को रिश्वत देने के लिए तैयार है। नौकरी मिल गई तो कहता है नौकरी क्या करेगी यदि उसकी शादी नहीं हुई? अब उसकी दृष्टि में स्त्री मूल्यवान् दिखाई देती है या पति मूल्यवान् दिखाई देता है। शादी के कुछ समय पश्चात् उसको अन्य चिन्ता लग गई कि यदि सन्तान न हुई तो शादी की क्या कीमत? क्या समझे, मन का कहीं टिकाव है? कहीं नहीं लगा। यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ। एक ने पूछा बाबू जी दुनिया में आकर कौन—कौन से काम कर गये? कहा—पढ़ाई की, नौकरी की, पैन्शन ली और मर गये, और क्या काम करते? जिसको मूल्यवान् समझा उसी में जीवन खपा दिया; किन्तु जो परम मूल्यवान् है उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि हमारा मन इधर से उधर और उधर से इधर भटकता रहता है इसलिए मन को उस परम तत्त्व, उस परम सत्य का मूल्य समझना पड़ेगा। जब तक उसका मूल्य नहीं समझोगे तब तक मन उसकी ओर नहीं झुकेगा और बिना मन के तुम रातों—दिन कर्म करते रहो, कोई लाभ नहीं। यदि शरीर से तुम सत्संग में बैठे हो, मन कहीं और गया हुआ है तो उस समय तुम मन्दिर में नहीं हो, सत्संग में नहीं हो, याद रखो, तुम वहीं हो जहाँ तुम्हारा मन है।

जैसा आपका मन है वही आप हो। शुद्धि किसकी करनी है? मन की। शरीर शुद्ध नहीं होता, इन्द्रियों की कोई गति नहीं, ये तो यन्त्र मात्र हैं। यह न कभी शुद्ध होती हैं और न अशुद्ध होती हैं, शुद्धि और अशुद्धि तो मन की होती है। आत्मा कभी अशुद्ध नहीं हुई, वह तो परम शुद्ध है। मन क्या बला है? इधर आपका अन्नमय कोष अर्थात् शरीर और इन्द्रियों के मध्य में मन और मन के ऊपर

विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष आत्मा के निकट हैं अर्थात् आत्मा के प्रकाश में हैं। मनोमय कोष जो मध्य में है वही नीचे शरीर और इन्द्रियों को प्रकाश देता है, उनको चलाता है और ऊपर उनसे सम्बन्धित करता है। समस्त अशुद्धियाँ बीच वाले में ही होती हैं। ये जितने भी साधन हैं, भजन वा चिन्तन सब मन की शुद्धि के लिये हैं, इन सबका यही प्रयोजन है। मन शुद्ध हो गया तो सब शुद्ध हो गया; यदि मन अशुद्ध है तो सब कुछ अशुद्ध है। मन की अशुद्धि से बुद्धि शुद्ध नहीं हो सकती, बुद्धि की शुद्धि में भी मन ही कारण है; क्योंकि संसार के साथ सीधा सम्बन्ध मन का है, बुद्धि तो मन के पीछे है। मन जिस बात क़ा मनन करेगा, बुद्धि उसी पर विचार करेगी। यदि मन गलत बात का मनन कर रहा है तो बुद्धि भी गलत विचार करेगी, मन अच्छी बात का मनन कर रहा है तो बुद्धि भी उत्तम विचार करेगी, यह सारा उत्तरदायित्व मन पर ही है। सारी साधना का प्रयोजन मन की शुद्धि है। इसी मन को शुद्ध करने के लिए मनन करना है। जिससे मन शुद्ध होता है, उसी को मन्त्र कहते हैं। आज शिव पुराण के पाठ में यह प्रसंग आया था कि मन्त्र के चिन्तन से ही मन शुद्ध हो सकता है और दूसरा कोई साधन नहीं। मन स्थूल तो है नहीं, जिसको तुम रगड़कर, धोकर, साबुन लगाकर साफ कर लोगे, वह तो सूक्ष्म वस्तु है।

आप लोगों को एक कहानी सुनाता हूँ। पाँचों पाण्डव द्रोपदी सहित भगवन् श्री कृष्ण के पास जाकर चरणों में प्रणाम किये और कहा कि–"भगवन्! हमें आदेश दें।" भगवान् ने पूछा–"किसलिए?" कहा–"हम लोग तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं। तीर्थ यात्रा से पुण्य होता है इसलिए हम तीर्थ यात्रा करने जा रहे हैं"। भगवान् ने एक कड़वी तूंबी दी जिसे लौकी अथवा घीया कहते हैं। भारत में कड़वी तूंबी (घीया) होती है जो खाने में कड़वी होती है, जिसका महात्मा लोग कमंडल बनाते हैं। भगवान् ने कड़वी तूंबी पाण्डवों को देकर कहा–"तुम लोग तीर्थ यात्रा के लिये जा रहे हो, जहाँ कहीं भी जाओ, स्नान से पूर्व तूंबी को गंगा जी में स्नान करवा देना, भूलना नहीं।" पाण्डवों ने कहा–"बड़ी अच्छी बात।" जब भी वे किसी तीर्थ स्नान पर जायें यह सोचकर कि यह भगवान् की वस्तु है इसलिए उसको खूब जल में डूबो–डूबो कर स्नान करवाते। कई वर्ष लगाकर समस्त तीर्थ भ्रमण कर वापिस आकर भगवान् को प्रणाम किया।

भगवान् ने पूछा, तीर्थ यात्रा हो गयी, स्नान कर आये? हाँ, प्रभो! बहुत आनन्द आया, क्या पूछना!" भगवान् ने पूछा–"मेरी तूंबी को भी स्नान करवाया?" "हाँ प्रभो! प्रत्येक तीर्थ में स्नान करवा कर लाये हैं, इतना कहते हुए भगवान् को तूंबी दे दी। उन्होंने उसके सात टुकड़े किये। पाँच टुकड़े पाँचो पाण्डवों को, एक द्रोपदी को और एक टुकड़ा भगवान् ने स्वयं रख दिया। पूछा–"यह क्या है?" भगवान् ने कहा, प्रसाद है। मुँह को लगाया तो सारा मुँह कड़ुवा हो गया। "प्रभो! यह तो खाने के योग्य नहीं है, आप इसे कैसे खाओगे?" भगवान् ने कहा–"अरे, इतने तीर्थों पर आपने इसको स्नान करवाया, अभी इसकी कड़वाहट नहीं गई।" धर्मराज ने कहा–"प्रभो! इसको मैने ऊपर से स्नान करवाया, इसको अन्दर से मैंने साफ नहीं किया।" प्रभु ने कहा, अरे धर्मराज! तुम तो बड़े समझदार हो, तीर्थों में तुम ने अपने आपको ऊपर से धोया वा अन्दर से? अब ध्यान आया कि प्रभु हमें क्या सिखलाना चाहते हैं। प्रभु ने कहा–"पाण्डुपुत्र! जिस प्रकार इस तूंबी को बाहर से स्नान करवाने पर भी अन्दर की कडवाहट नहीं गई, इसी प्रकार जल में अपने को डूबोने से अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती।" धर्मराज ने कहा–"प्रभो! जिस तीर्थ की महिमा इतनी गायी गई है, वह तीर्थ क्या है जहाँ मैं स्नान करके शुद्ध हो जाऊँ।" भगवान् ने वहाँ पर बड़ा सुन्दर सन्देश दिया, जिसका सार है–

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्थ, सत्योदका शील तटादयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्रः, न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।।

आत्मा रूपी नदी बहती है, उस में संयम रूपी तीर्थ है। आत्मा रूपी नदी में सत्य रूपी जल भरा हुआ है। उसके शील रूपी किनारे हैं और दया की तरंगे उठती हैं। जिसकी आत्मा रूपी नदी में सत्य का जल भरा हो, जिसके शील ही किनारे हों, जिसका सदाचार ही तीर्थ हो, जो व्यक्ति उस आत्मा रूपी नदी में, सत्य रूपी जल में और दया की तरंगों में गोता लगाता है, उसी का मन शुद्ध होता है। इसके विपरीत जो बाहर जल में धोता है, उसके शरीर का मल तो साफ हो सकता है; किन्तु मन का मैल साफ नहीं होता। दीन–दुखियों को देखकर क्या दया की लहर उठती है? नहीं। किसी दुःखी को देखकर ह्दय में पीड़ा होती है, आँखों में आँसू आ जाते हैं? नहीं आते। अन्दर दिन भर सत्य की नदी बह रही है या

असत्य की?

भारत में, वैसे तो सब जगह की बात है लेकिन भारत की बात मैं इसलिए कहता हूँ क्योंकि यह विश्व की दृष्टि में धर्मभूमि है। पहले जब किसी गृहस्थ को कोई झूठ बोलने के लिए कहता था तो उसका उत्तर था कि मैं झूठ नहीं बोल सकता, मैं बाल–बच्चों वाला हूँ, मैं ऐसा पाप नहीं कर सकता। प्रत्येक भारतीय जानता था कि हम पाप करेंगे तो हमारे बच्चे कभी सुखी नहीं रह सकते। आज कैसी वृत्ति हो गयी है, जानते हो? आज यदि किसी को कहो, भाई, बेईमानी न करो, झूठ न बोलो तो कहेंगे–"स्वामी जी! हम माहात्मा नहीं बाल–बच्चे वाले हैं।" वह सोचता है कि हम पाप नहीं करेंगे तो हमारे बच्चे कैसे जीयेंगे, कैसे पलेंगे। बाल–बच्चे होने का अभिप्राय हमने पाप का ठेका ले रखा है। कितनी विपरीत भावना वा विचार हो गया जिसका परिणाम भी हमारे सामने है। प्राचीन काल में परिश्रम की कमाई के द्वारा सूखी रोटी खाने से जो आनन्द उपलब्ध होता था वह पाप की कमाई से घी में डूबी हुई रोटी खाने से नहीं मिलता।

भारत में एक सन्त गुरु नानकदेव हुए हैं। एक दिन वह किसी गाँव में गए; तो एक धनी आदमी थाल सजा कर भोजन ले आया। एक बढ़ई परिश्रम करने वाला था, वह सूखी रोटी पर साग रखकर ले आया गुरु के सामने। उन्होंने बढ़ई की रोटी उठाई और हाथ में रखकर खाने लगे। धनी आदमी ने कहा–"गुरु! आप मेरे भोजन का अपमान कर रहे हैं"। उन्होंने कहा–"मै किसी का अपमान नहीं करता।" पूछा–"फिर आपने मेरा अन्न क्यों नहीं खाया।" उन्होंने कहा–मैं तुम्हारी रोटी नहीं खा सकता। उन्होंने सेठ के कहने पर उस समय क्या किया, जानते हो? एक हाथ में मजदूर की रोटी का टुकड़ा लिया और दूसरे हाथ में धनी आदमी की रोटी का टुकड़ा लेकर खूब जोर से दबाया। धनी की रोटी से खून बहने लगा और मजदूर की रोटी से दूध की धारा बहने लगी। उन्होंने कहा–"देख, मेरे खाने के लिए दूध वाली रोटी है या खून वाली? यह परिश्रम की कमाई से होने के कारण दूध में सनी हुई है पर आपकी पाप की कमाई की है इसलिए खून से सनी हुई है।" मेरे दोस्तो! पाप के अन्न में पहले सुख तो दिखाई देता है; किन्तु इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। आज तक दुनिया में मैंने कोई ऐसा आदमी नहीं

देखा, जिसने पाप से सुख पाया हो; किन्तु बुद्धि इतनी भ्रान्त हो गई है कि लोग यह समझते हैं कि हम बाल–बच्चे वाले आदमी यदि पाप नहीं करेंगे तो निर्वाह कैसे चलेगा? दुःख की बात है। भगवान् कह रहे हैं कि–**सत्योदका शील तटादयोर्मि**, सत्यरूपी जल, शील रूपी किनारे और जिसमें दया की लहरें उठती हों, **तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्रः** "हे पाण्डु पुत्र! तुम वहाँ स्नान करो, उससे तुम्हारा मन शुद्ध हो जायेगा, **न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा** यदि तुम जगह–जगह नदियों में स्नान करके चाहो कि तुम्हारा मन शुद्ध हो जायेगा तो तूंबी जैसी बाहर की सफाई तो हो सकती है; किन्तु अन्दर की कड़वाहट नहीं जा सकती।" यही बात तुलसीदास जी ने भी लिखी है कि दुनिया भर के तीर्थों में घूम लो; किन्तु यदि मन तुम्हारे साथ नहीं है तो तुम्हारा सारा कार्य व्यर्थ है। इसलिए–

मनके हारे हार है मनके जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये मन ही के परतीत।।

परमात्मा को प्राप्त करने का साधन भी मन ही है, मन तुम्हारा शुद्ध है तो सारी दुनिया शुद्ध है।

महाभारत की एक और कथा सुनाऊँ। एक बार विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा–राजन्! तुम्हारा पुत्र बड़ा दुष्ट है। यदि तुम उसके मोह में पड़कर धर्मराज को गद्दी नहीं देते तो सारे कुल का नाश हो जाएगा। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। वह अन्धा बाहर से ही अन्धा नहीं था, भगवान् ने उसके अन्दर की भी आँख फोड़ रखी थी। धृतराष्ट्र ने कहा "विदुर! तुम सदैव मेरे पुत्र की निन्दा किया करते हो; तुम नहीं चाहते कि मेरा पुत्र राजा बने। तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि मेरा लड़का पापी और अत्याचारी है और युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा है?" विदुर जी ने कहा–"राजन्! इस के लिए कल्पना की आवश्यकता नहीं है, मैं प्रत्यक्ष उदाहरण देता हूँ।" उन्होंने दोनों राजकुमारों धर्मराज युधिष्ठिर और दुर्योधन को बुलवाया। दोनों के आने पर विदुर जी ने कहा–"दुर्योधन! महाराज की आज्ञा है कि नगर में घूम कर सायंकाल तक पांच धर्मात्मा व्यक्ति ले आओ।" वह बहुत अच्छा कह कर चला गया। धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा–"मेरे लिए क्या आज्ञा है?" विदुर ने कहा–"सम्राट की आज्ञा है कि तुम नगर में जाकर पाँच पापी आदमी पकड़ कर ले आओ।" बड़ी अच्छी बात है। दिन भर घूमने के पश्चात् न तो दुर्योधन को

कोई धर्मात्मा मिला और न धर्मराज को कोई पापी व्यक्ति मिला। दिन भर घूमकर जब वापिस आए तो सायंकाल को दोनों दरबार में पहुँचे। पहले दुर्योधन आया तो धृतराष्ट्र ने पूछा, "बेटा, तुम हमारे राज्य से कोई धर्मात्मा मनुष्य ले आए? वह कहता है कि तुम्हारे अन्धे के राज्य में कोई धर्मात्मा हो सकता है? जहाँ का राजा अन्धा हो वहाँ धर्मात्मा कौन होगा? इसलिए तो मैं कहता हूँ कि शीघ्र ही मेरे हाथ में राज्य दे दो तो सारी दुनिया को सुधार कर बता दूँ।" विदुर ने उस अन्धे के कान में कहा–"सुन लिया न, यह तुम्हारे लड़के की बुद्धि है। इसको तुम्हारे राज्य में कोई धर्मात्मा ही दिखाई नहीं दिया, सभी पापी ही दिखाई दिए। पाप का चश्मा जब आँख पर लगा होता है तो दुनिया में कोई धर्मात्मा दिखाई नहीं देता, वह चला गया।"

इतने में धर्मराज बड़े व्यथित मन से आए। पूछा, "क्यों भई, धर्मराज! तुम आ गए। आपको पाँच पापी लाने के लिए कहा था।" उन्होंने कहा–"भगवन्! मैं दिन भर ढूँढ़ता रहा, अन्त में मैंने देखा कि मेरे से बड़ा पापी और कोई नहीं था इसलिए मैं स्वयं आकर आपके सामने खड़ा हूँ।" "क्यों, तुम्हें नगर में कोई पापी ही नहीं मिला।" युधिष्ठिर कहते हैं–"जहाँ पर विदुर जैसे मन्त्री, द्रोणाचार्य जैसे गुरु, भीष्म पितामह जैसे रक्षक और साक्षात् धृतराष्ट्र जैसे धर्मात्मा राजा हों, उस राज्य में कोई पापी हो सकता है?" विदुर ने कहा–"धृतराष्ट्र! अभी तुम समझ जाओ कि धर्मात्मा की दृष्टि में सारी दुनिया धर्मात्मा है और पापी की दृष्टि में सारी दुनिया पापी है"; क्योंकि "जैसा होगा मन, वैसे दीखे जन"। कहने का अभिप्राय "मन ही सृष्टि का आधार है।" **मनैव मनुष्यणां कारणं बन्ध मोक्षयो**–मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है, मन ही पाप–पुण्य का चश्मा है। जैसा तुम लगाओगे वैसा तुम्हें दिखाई देगा। पापी के लिए सर्वत्र पाप दिखाई देता है। तुम जिस नगर, शहर वा स्थान पर हो यदि तुम्हारी यह शिकायत है कि पाप की वृद्धि हो रही है अर्थात् पाप बढ़ रहा है और धर्म का ह्रास हो रहा है, तो तुम समझ जाओ कि तुम्हारी अन्दर की स्थिति दिनों–दिन नीचे जा रही है। तुम्हें वहाँ गुणी और धर्मात्मा नहीं मिलेंगे। इसलिए मैं आप लोगों को समझा रहा था कि हमारा मन ही हमारे उत्थान और पतन का हेतु है। यह समस्त शास्त्र, सत्संग, सारा प्रचार वा प्रसार सब मन की शुद्धि के लिए है।

अब यहाँ पर मैं एक बात और बता दूँ। शास्त्र में समझाया गया है कि दुनिया में पाँच प्रकार के अर्थात् पाँच स्तर के व्यक्ति हैं। हमारे मन के पाँच स्तर हैं उनको दर्शन शास्त्र की भाषा में कहते हैं–मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। शास्त्र कहता है कि जो मूढ़ मन वाले लोग हैं उनके लिए न तो धर्म है, न कर्म, न भजन है, न भगवान् और न देवी, न देवता हैं, उनके लिए केवल अपना शरीर है और कुछ नहीं। शरीर से परे भी कुछ है, उसको वे नहीं जानते और न उसको जानने की रुचि होती है। क्यों नहीं होती? उनका मन इस स्तर पर है, अभी उन के मन का विकास नहीं हुआ। मन में घोर तमोगुण समाया है इसलिए उनकी दृष्टि में दुनिया में और कुछ नहीं है।

दूसरे लोग जो होते हैं उनको क्षिप्त कहते हैं। वे मूढ़ से थोड़ी सी ऊँची अवस्था के हैं। वे शरीर से ऊपर उठे हुए हैं, इन्द्रिया के स्तर पर पहुँचे हैं। उनके लिए वे और उनका परिवार ही सब कुछ है। जिसको आप परिवार कहते हैं, यह सारा परिवार इन्द्रियों से सम्बन्धित है, इससे आगे कुछ नहीं है। ऐसे लोगों को दार्शनिक भाषा में क्षिप्त कहते हैं। उनसे यदि आप धर्म, कर्म की बात कहो तो वे कहेंगे कि ये तो व्यर्थ की बातें हैं, हम फालतू बैठे हैं। हमारे परिवार नहीं, हमें कोई काम नहीं। यदि उनसे कहो कि चलो किसी विद्वान् के पास चलें, उनसे अच्छी बातें सुनें तो वे कहेंगे कि तुम बड़े मूर्ख व्यक्ति हो। उनकी मान्यता होती है कि दुनिया में डेढ़ अक्ल है, एक उनके पास और आधी सभी में बटी हुई है इसलिए दुनिया में कौन उन्हें समझा सकता है, ऐसे लोग क्षिप्त कहे जाते हैं। उनके लिए धर्म शास्त्र नहीं, उनके लिए सत्संग वा प्रचार नहीं है।

तीसरी अवस्था विक्षिप्त की है। विक्षिप्त किसे कहते हैं? जो दुनिया से ऊब गया हो, शरीर से मृत्यु का भय और रोग की पीड़ा से शरीर से आसक्ति जब हट गई तो कभी–कभी कहता है कि भगवान् इस शरीर से मुक्ति दे दो तभी भला है। दूसरी बात, परिवार से अब तृप्त हो गये और जान गये कि यदि परिवार वालों का स्वार्थ पूरा हो गया तो हम उनके हैं, यदि स्वार्थ पूरा नहीं हुआ तो हमारा कोई नहीं है। पुरुष जन्म भर कमाई लाकर स्त्री को देता रहे तो बहुत प्रिय लगेगा। यदि स्त्री को यह पता चल जाये कि मेरे

पति ने मेरी अपेक्षा और किसी को भी कुछ देना प्रारम्भ कर दिया है, उसी दिन से उसका सारा प्रेम समाप्त हो जाता है। यही स्थिति पुरुष की है, वह स्त्री के जीवन को निचोड़ कर उसका सारा उपभोग कर ले, वह उसकी सेवा में रातों–दिन लगी रहे, उसे न तो उसके प्रति कृतज्ञता है और न ही उसके प्रति कोई आत्मीयता है। उसे तनिक सा पता चल जाये कि अब मेरी स्त्री मेरे अतिरिक्त और किसी को चाहने लगी है, तुरन्त उसका दिमाग घूम जाएगा। यही स्थिति माता–पुत्र की है, पिता–पुत्र की है, पुत्र–पिता की है और भाई–भाई की है। कहने का अभिप्राय कि दुनिया में जितना भी सम्बन्ध है, कब तक है? जब तक हमारी पूर्ति हो रही है। एक देवी का पति मर गया वह रो रही थी, विलाप कर रही थी। उससे किसी ने जाकर पूछा कि तुम क्यों रो रही हो? मरने वाला तो मर गया। उसकी पत्नी का उत्तर था कि वह मर गया, इसलिए मैं नहीं रो रही हूँ, मैं इसलिए रो रही हूँ कि अब मेरे लिए कपड़ा कौन लायेगा, मेरे खाने–पीने और रहने की व्यवस्था कौन करेगा, हमारी पूर्ति कौन करेगा? यह तो आप देखते हो कि जब मरे हुए व्यक्ति के लिए हम रोते हैं तो किसलिए रोते हैं? उस व्यक्ति से जो–जो स्वार्थ हमारा सधता था, वह अब पूरा नहीं होगा। दुनिया में समस्त सम्बन्ध स्वार्थ का है। एक कवि ने एक पद में लिखा है–

पूत कमाई करके लाया, माता करे प्यार।
पिता कहे यह पूत सपूता, अकलमंद हुश्यार।।

यदि वह कमाई देना बन्द कर दे तो पुत्र नालायक है। एक लड़का मेरे पास आने लगा, कुछ वर्षों तक ऐसे चलता रहा। लड़के–लड़कियाँ जब अधिकांश मेरे पास आना प्रारम्भ कर देते तो उनको लग्न हो जाती थी कि हम भी इसी रास्ते पर चल कर इसी काम में लग जायें। ऐसे सैंकड़ों लड़के–लड़कियाँ अपने परिवार से अलग होकर हमारे मिशन की ओर लगे। ऐसे ही एक लड़का मेरे पास आया करता था, अपनी पूरी रुचि रखता था। उसके माँ–बाप उसे समझाने लगे और कहने लगे कि तुम्हारे गुरु जी तुम्हें रामायण की सीख देते हैं। क्या रामायण में यही लिखा है कि माता–पिता की आज्ञा न मानो? वह कहने लगा, नहीं, उसमें लिखा है कि अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन करो। पिता ने कहा–"जब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ तो क्यों नहीं मानते?" क्या आज्ञा देते हो? अब गुरु

जी के पास नहीं जाना। अब वह संकट में पड़ गया। विचार करने लगा कि यदि माता–पिता की आज्ञा न मानूँ तो पाप लगेगा और गुरु जी के पास जाये बिना रहा नहीं जाता। दो दिन भोजन भी नहीं किया, रोता रहा, जब नहीं रहा गया तो दो दिन के बाद भाग कर मेरे पास आ गया। मैंने पूछा–"क्या बात है?" वह रोता रहा। इतने में घर पर उसके बाप को पता चल गया, तुरन्त बाप भी उसके पीछे आया, प्रणाम करके बैठ गया और कहने लगा–"स्वामी जी! आप ज़रा इस बच्चे को समझाओ, हमारी बात नहीं मानता।" उस लड़के से मैंने पूछा–"तू अपने माता–पिता की बात क्यों नहीं मानता?" उसने कहा–"नहीं, गुरु जी मानता हूँ लेकिन मैं इनकी एक बात मानने के लिये तैयार नहीं।" मैंने पूछा–"वह कौन सी बात है?" उसने कहा–"आप इनसे पूछो मैं इनकी कौन–सी बात नहीं मानता, यही बतायेंगे।" मैंने पूछा–"आपकी कौन सी बात को यह नहीं मानता?" वह कहता है–"स्वामी जी! एक बात है, वह आपसे कहने वाली नहीं, घर की बात है।" मैंने लड़के से कहा अगर ये नहीं बता रहे तो तू बता क्या बात है? अब वह संकट में पड़ा तो उसे बताना पड़ा। उसने कहा–गुरु जी! ये लोग मेरे पीछे पड़े हैं कि तुम गुरु जी के पास न जाया करो, इन की यह बात मैं मानने को तैयार नहीं। मैंने उसके बाप की तरफ देखकर कहा कि तू धर्म का भय दिखा कर बच्चे के जीवन को पतन की ओर ले जाना चाहता है। बच्चे ने कहा–ये मुझे पाठ–पूजा करने से रोकते हैं, कहते हैं कि तुम्हारी आयु अभी पाठ–पूजा करने वाली नहीं है। मैंने उनसे पूछा–लड़का यदि सत्संग में जाता है, भगवान् का चिन्तन करता है तो यह गलत बात है। तुम्हारी क्या राय है कि यह आयु इस समय शराबखाने जाने की है? कहा–नहीं, यही एक लड़का तो धर्म के रास्ते पर चल रहा था, हमारी बात मानता था। मैंने कहा तो अब पाप के रास्ते चलने लगा? जब तक आपकी बात मानता रहा, आपकी सेवा करता रहा, तब तक धर्म के रास्ते पर चल रहा था। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि लोगों की वृत्ति किस प्रकार की है।

मैंने उसे एक कथा सुनाई कि रावण जैसे धर्मात्मा को राक्षस बनाने वाली उसकी माँ थी। आप लोगों को भी शायद पता नहीं होगा कि रावण जैसे महात्मा, ऋषि, विद्वान् को उसकी माँ ने

राक्षस बनाया। वह राक्षस नहीं था, वह तो परम पंडित वा चारों वेदो का ज्ञाता था, धर्मात्मा था, पौलस्त्य का पौत्र और विश्रवा का पुत्र महान् तपस्वी था तथा भगवान् शंकर का अनन्य भक्त था। आपको भी अधिकांश ऐसे ही माता-पिता मिलेंगे जो पुत्र को सन्मार्ग पर नहीं; बल्कि राक्षसी मार्ग पर ले जाने के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसे सम्बन्धी और साथी मिलेंगे जो आपको विकास की ओर नहीं, विनाश की दिशा में ले जाने के लिए सहयोगी बनेंगे क्योंकि आप जानते हो स्वार्थ बहुत बुरी वस्तु है, स्वार्थ मनुष्य को अन्धा कर देता है। रावण की माँ एक राक्षस की लड़की थी, उसके बाप का नाम सुमाली था। माली, सुमाली और माल्यवान्, ये तीनों भाई सुकेशी के पुत्र दैत्य थे। सुमाली ने अपनी लड़की को ले जाकर विश्रवा को समर्पित किया। विश्रवा ऋषि से उसकी तीन सन्तानें-रावण, कुम्भकर्ण और एक लड़की शूर्पणखा हुई। विभीषण उसका सगा भाई नहीं था, वह दूसरी माँ से उत्पन्न हुआ मौसेरा भाई था। परिणाम यह हुआ कि जब रावण हुआ तो वह विद्वान् और तपस्वी बना। शिव से वरदान लेकर आया और माँ के चरणों में प्रणाम किया। माँ दैत्य कन्या थी, वह यह नहीं चाहती थी कि उसका लड़का देवताओं का सहयोगी एवं धर्म का अनुयायी बने।

हमारे यहाँ वेद का ऐसा नियम है कि जब प्राचीन काल में ऋषियों के आश्रम में रहकर लोग विद्या प्राप्त करते थे तब विदा होते समय गुरु उनको आदेश देता था-

मातृ देवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो
भव अतिथि देवो भव सत्यं वद धर्मं चर।

यह उपदेश है जिसे स्नातकोत्तर कहते हैं अर्थात् वहाँ से जब शिष्य स्नातक होकर चलता है तब उस समय गुरु का आदेश होता है। माँ ने कहा-"पहली शिक्षा क्या है? मातृ देवो भव। मैं तुम्हारे लिए देवता हूँ"। कहा-"हाँ माँ", "जो मैं कहूँगी तू उसे करेगा?" "तुम कहो और मैं न करूँ, ऐसा कभी हो सकता है? यह तो मेरा धर्म कहता है।" वह कहती है कि मैं तुम्हें कहती हूँ कि आज से देवता तुम्हारे शत्रु हैं। वह कहता है-शिव, शिव! माँ यह तुमने क्या कहा! देवता और मेरे शत्रु! देवताओं ने मेरे बाप का वध किया है, लंका मेरे बाप की राजधानी है। मैंने एक दिन आप लोगों को बताया था कि रावण का जन्म उत्तर प्रदेश का था। भारत के

उत्तर प्रदेश में हिमालय में वह पैदा हुआ था, वहीं रहा करता था। उसकी माँ ने कहा—जो लंका है वह मेरे बाप की राजधानी है। देवताओं ने उन्हें मारकर उसके ऊपर कब्जा किया है इसलिए मैं तुम्हें आदेश देती हूँ कि देवताओं से लंका छीन लो और अपने नाना की गद्दी पर तुम चलकर बैठो।

रावण कहता है—माँ! वहाँ तो मेरा बड़ा भाई रहता है। रावण के पिता विश्रवा की तीन स्त्रियाँ थी। पहली स्त्री बिंदुमती थी, उसका लड़का कुबेर था, रावण की बड़ी माता से उत्पन्न होने के कारण वह उसका बड़ा भाई था, बाप एक ही था। आपने कुबेर का नाम सुना होगा जो देवताओं का कोषाध्यक्ष है। दूसरी स्त्री कैकसी थी जिससे रावण, कुम्भकर्ण और शर्पूणखा हुए थे और तीसरी स्त्री का नाम राका था जिससे विभीषण और त्रिजटा दो बच्चे हुए थे, ये दोनों बहन—भाई थे। रावण कहता है, माँ! वहाँ तो मेरे बड़े भाई का राज्य है, मैं उससे युद्ध नहीं कर सकता, मैं उसे कुछ नहीं कह सकता; क्योंकि बड़ा भाई पिता के बराबर होता है। कैकसी कहती है कि मैं माँ होकर तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि या तो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके धर्म से भ्रष्ट हो जा अथवा मेरी आज्ञा का पालन कर। तुम्हारे लिये माँ बड़ी है या भाई बड़ा है। इस धर्म की आड़ में उस कैकसी ने धीरे—धीरे उसे राक्षस बना दिया और उसे उत्तर प्रदेश से ले जाकर लंका में बिठाया। रावण ने जब कुबेर के पास यह समाचार भेजा कि लंका मेरे नाना की है, इसे खाली कर दो। कुबेर ने कहा—भैया! लंका जैसी मेरी वैसी तुम्हारी, तुम यहाँ आकर रहो। वह कहने लगा—यह मेरे नाना की गद्दी है, इसे मैं संभालूँगा। उसने कहा—तुम संभाल लो। माँ ने देखा, यह बात तो बनी नही; क्योंकि दोनों भाई आपस में लड़े नहीं। पुनः एक दिन कैकसी कहती है, जो विमान कुबेर के पास है, तुम उसे छीनकर ले आओ और स्वयं उस पर बैठो और अन्त में यही हुआ। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा—

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान छीन लइ आवा।।

इस प्रकार रावण देवताओं का शत्रु बन गया। किसके कहने से? माँ के कहने पर। वह माँ कैकसी जिसने एक धर्मात्मा पुत्र को धर्म का भय दिखाकर राक्षस बनाया, ऐसे ही एक माँ और थी—कैकेयी।

यदि भरत कैकेयी की बातों में आ जाते तो क्या बनता? रामायण ऐसे होती, राम की कथा यही होती और राम–राज्य होता? कुछ न होता किन्तु कैकेयी की बातों में भरत नहीं आए। भरत को यह ज्ञान था कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है? रावण को यह ज्ञान नहीं मिला था, उसको केवल इतना ज्ञान था कि जो वेद में कहा गया है, वह ब्रह्म वाक्य है, इसलिए उसमें परिवर्तन नहीं करना। भरत ने सत्संग किया था, उन्होंने सत्य और असत्य को समझा था। माता–पिता की कौन सी आज्ञा माननी है, कौन सी नहीं माननी चाहिए, इस पर विचार करो। जीवन पर विचार करना अनिवार्य है, नहीं तो हम कभी आज्ञा के भुलावे में आकर अनर्थ कर बैठते हैं क्योंकि हमारे माता–पिता, बन्धु, साथी, मित्र हमें डुबोने के लिए अधिक साधन अपनायेंगे, उबारने के लिए बहुत कम बनाते हैं। ऊँगलियों पर गिनी हुई माताओं में कोई एक माँ होगी जो सुमित्रा की भाँति लक्ष्मण को समझाये और पुत्र को ऐसा कहे–

तात तुम्हारि मातु बैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही।।
जौं पै सीय राम बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं।।

(रा॰ २/७४–४)

सुमित्रा कहती है–"मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ, राम तुम्हारे पिता और सीता तुम्हारी माँ है। यदि राम–सीता वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नहीं है।" ऐसी माँ ऊँगलियों पर गिनने से भी नहीं मिलेगी। अधिकांश माता–पिता तो तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है–

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।।

(रा॰ ७/९९–८)

सबसे बड़ा धर्म क्या है? जिससे पेट भरता हो। पेट का धँधा करो, यही सबसे बड़ा धर्म है। पापी से पापी आदमी भी आपको धर्म का उपदेश देगा, अरे बाल–बच्चों का पालन करो, यही तो धर्म है और धर्म क्या है, भगवान् ने यही गीता में कहा है। दूसरे को उपदेश देते समय सारी गीता का निचोड़ उसकी मुट्ठी में होता है।

एक सज्जन आकर मेरे से कहने लगे–"स्वामी जी। शास्त्रों

में लिखा है–"धन्यो गृहस्थाश्रमः"। क्या गृहस्थाश्रम में रहते हुए भगवान् नहीं मिलता? मिलता है। लोग गृहस्थाश्रम में क्यों नहीं रहते?" सारी दुनिया रह रही है और लोग कहाँ रहते हैं, मैंने उस श्रीमान् से पूछा? आप जानते हो "धन्यो गृहस्थाश्रमः" का अभिप्राय क्या है? हज़ारों में कोई एक होगा जो यह कहने का साहस रखे कि मेरा गृहस्थाश्रम है। किसका गृहस्थाश्रम है? गीता में भगवान् ने कहा–कर्म करो। मैंने कहा–आपको किसने बता दिया कि भगवान् ने कहा है कर्म करो। भगवान् ने गीता में बताया कि कर्म न करके कर्मयोग करो। गीता का संदेश क्या है? कर्म या कर्मयोग? कर्मयोग है, कर्म नहीं। धन्यो गृहस्थाश्रम या गृहस्थ? गृहस्थाश्रम धन्य है, गृहस्थ नहीं। पहले अपने गृहस्थ को आश्रम तो बनाओ। गृहस्थ आश्रम कैसे बनेगा? जब गृहस्थी में पवित्र कमाई का अन्न आयेगा, दूसरे को खिलाने की सद्‌बुद्धि आयेगी, जब प्राणीमात्र के प्रति दया की वृत्ति होगी, तुम्हारी सन्तान वा स्त्री भगवान् की भक्ति में लगेंगे, तब गृहस्थ बनेगा आश्रम। शास्त्र में बताया है कि कैसा गृहस्थाश्रम धन्य है। पूरा श्लोक मैं आपको बता दूँ। बहुत मतलव की बातें हैं, इसलिए मैं आपको बता रहा हूँ।

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधिः कान्ता न दुर्भाषिनी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः।।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे।
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।

(चा॰ नीति॰ १२/१)

सानन्दं सदनं–घर छोटा हो या बड़ा आनन्ददायक हो। घर में प्रवेश करते समय ऐसे लगे जैसे किसी मन्दिर में आ गए, नहीं तो घर के अन्दर प्रवेश करते समय ऐसे लगता है कि नाक दबाओ। घर में वा रसोई में दुर्गन्धयुक्त वस्तु चारों ओर अपवित्र वातावरण। जिस घर में भगवान् का नाम नहीं गूँजता, जिस घर में शुद्ध होम का धुआँ नहीं, जिस घर में अगर बत्ती की सुगन्ध नहीं, उस घर में नाक दबाकर नहीं तो और कैसे बैठोगे? हमारे नाक दुर्गन्ध से इतने पक जाते हैं कि दुर्गन्ध का पता नहीं चलता। पता उसे चलता है जब कभी बेचारा मेरे जैसा किसी के घर में जाकर फँस जाये, चारों ओर दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध, नाक दबाना कठिन हो जाता है। ऐसे परिवारों में भी हमें जाना पड़ता है क्योंकि घर में एक भी धर्मात्मा हुआ तो वह

सोचता है कि स्वामी जी को घर ले चलो। घर में प्रवेश करते ही यदि सुगन्धित दैवी वातावरण से घर पवित्र नहीं है तो घर आश्रम नहीं बन सकता। सबसे प्रथम बात–"सानन्दं सदनं" घर जो है आनन्ददायक हो, चाहे छोटा हो, कुटिया हो, झौंपड़ी हो; किन्तु शुद्ध, साफ एवं सुन्दर हो। **सुतास्तु सुधिः**–सन्तान समझदार, बुद्धिमान और प्यार वाली हो। बाप कहता है कि बेटा यह काम कर दो। वह कहता है–आप कर लेना मुझे समय नहीं, मैंने अपने मित्रों के साथ जाना है। हमने कई घरों में जाकर देखा, माँ–बाप कहेंगे स्वामी जी आये हैं, इन्हें प्रणाम करो किन्तु बच्चे के ऊपर उसका प्रभाव ही नहीं होता। तब मुझे कहना पड़ता है कि जब तुमने माथा झुकाने अर्थात् प्रणाम करने की सीख ही नहीं दी तो अब झुकेगा? बच्चेपन से जिसको सिखाया नहीं गया कि बड़ों को, गुरुजनों को प्रणाम करना है, नम्रता दिखानी है तो वह बड़ा होकर कैसे सीखेगा? छोटे पौधे वा पेड़ को जैसा आप मोड़ना चाहें मुड़ जाएगा किन्तु वृक्ष बन जाने पर उसको मोड़ना चाहो तो वह मुड़ेगा नहीं बल्कि टूट जाएगा इसलिए समझदार सन्मार्ग पर चलने वाली सन्तान हो। **कान्ता न दुर्भाषिनी**–घर की देवी इतनी मधुर बोलने वाली हो कि घर में आने वाला व्यक्ति सन्तुष्ट वा तृप्त हो जाए। घर में प्रवेश करते ही जहाँ टाँय–टाँय सुनाई दे, वहाँ क्या हाल होगा? वहाँ कोकिल वाणी नहीं, ऐसी करकरी आवाज़ जिससे कान फट जायें। अतीव भाग्यशाली वा पुण्यशाली व्यक्ति को सुभाषिणी सुगृहिणी स्त्री का संयोग मिलता है, बहुत बड़ी तपस्या से मधुर भाषिणी, सदाचार और धर्मनिष्ठ स्त्री किसी को मिलती है। महालक्ष्मी तो किसी–किसी के भाग्य में होती है किन्तु चण्डी तो नित्य नृत्य करती हुई मिलेगी। **सन्मित्रं**–साथी कैसे हों? अच्छे मित्र हों, बुरे मित्र पाप की ओर ज्यादा ढ़केलते हैं। जैसे मैंने एक दिन बताया था कि मित्र एक घूँट का लालच देकर ऐसे ढ़केल देते हैं कि जन्म भर मरते रहो। भारत में एक बहुत अच्छे सन्त एवं कवि हुए हैं गिरधर, उन्होंने कुण्ड़लियां लिखी हैं–

साई या संसार में, मतलब का व्यवहार।
पैसा जाके पास में, ताहीं के सब यार।।
ताहीं के सब यार, यार संग ही संग डोलें।
पैसा रहा न पास, यार मुख से न बोलें।।

कह गिरधर कविराय, जगत् कर आहीं लेखा।
करत बिगड़ की प्रीति, यार विरला कोउ देखा।।

ऐसा साथी जीवन में कम मिलता है जो तुम्हें सन्मार्ग की ओर ले जाए, हम तो कभी–कभी ऐसा देखते हैं कि कुछ सत्संगी हैं, सत्संग में जाना चाहते हैं, किन्तु अपने साथियों को यह नहीं कहते कि तुम सत्संग में चलो। क्यों नहीं कहते? इसलिए कि वे मज़ाक करेंगे। कोई मित्र मिल जाये, पूछे, कहाँ जा रहे हो? कहेंगे, दोस्त के पास जा रहा हूँ, यह नहीं कहेंगे कि मैं सत्संग में जा रहा हूँ। यदि उन्होंने गलती से कह दिया कि चलो यार आज मेरे साथ चलो तो कहेंगे प्रतिदिन सत्संग में क्या रखा है? कौन तुम बूढ़े हो गए हो? सन्मित्र बहुत बड़ी बात है। अच्छा सद्गुणों से युक्त मित्र एक ही हो अच्छा है। तुलसीदास जी ने कहा है–

बरू भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।

(रामा॰ ५/४६–७)

कुमित्र से बचकर रहो, कुमित्र की बजाय नरक में रहना अच्छा है। यदि दुष्ट मित्र मिल गया तो वह नरक से भी नरक में ढकेलेगा। **सुधनं**–ईमानदारी और परिश्रम की कमाई हो।

साईं इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाये।
मैं भी भूखा न रहूँ मेरा साधु न भूखा जाये।।

भगवान् का जिसके ऊपर कोप होता है, जिसको वे अपने से दूर करना चाहते हैं, उसको बहुत सा धन देते हैं। जो माँ बच्चे को गोद में नहीं लेना चाहती उस को खिलौना पकड़ा देती है कि खेलते रहो बेटे और यदि इधर–उधर किया तो मिठाई पकड़ा देती है, खाते रहो। इसी रूप से जिसको भगवान् अपनाना नहीं चाहते, उसको बहुत–सी सम्पत्ति दे देते हैं, खेलते रहो, इसमें मग्न रहो। परिणाम क्या होता है? वह तो आप जानते हो। बच्चे जब माँ बाप की कमाई का धन प्राप्त करते हैं, उनके परिश्रम की कमाई तो होती नहीं, इसलिये उस धन का दुरुपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है, वैसे ही साथी मिल जाते हैं, ऊपर से बुरी संगति मिल जाती है, जुआ, शराब आदि सब कुछ चलने लगता है। एक पीढ़ी नहीं ऐसे लालची मनुष्य अपनी अनेक पीढ़ियाँ नरक में डुबो देते हैं।

मैं आप लोगों को महाभारत की एक कथा सुनाता हूँ।

महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर को सिंहासन मिल गया तो भगवान् कृष्ण ने बुआ कुन्ती के पास जाकर प्रणाम करके कहा–"बुआ! अब मुझे जाने की आज्ञा चाहिए, अब मैं द्वारिका जाऊँगा।" कुन्ती वहीं चीख कर प्रभु के चरणों में गिर पड़ी, "कृष्ण! मुझे राज्य नहीं चाहिए।" भगवान् ने पूछा–"बुआ! और क्या चाहिए? शत्रुओं का नाश कर दिया, तुम्हारे पुत्र को पूरे भूमण्ड़ल का राजा बना दिया, अब तुम्हें क्या चाहिए?" वही १२ वर्ष वाला वनवास चाहिए। क्यों? कुन्ती कहती है–"कृष्ण! जब हम १२ वर्ष वन में रहे तो तुम हमारे साथ रहे, जब राज्य मिल गया तो तुम हमें छोड़ कर जाना चाहते हो तो हमें ऐसे सुख, वैभव और राज्य से क्या मतलब जिसमें तुम हमारे साथ नहीं रहोगे? यह कुन्ती के हृदय की पुकार थी, ऐसा महाभारत के अन्त में लिखा हुआ है। मैं आप लोगों को समझा रहा था कि अधिक सम्पत्ति आ जाने पर अधिकांश लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, इसलिए शास्त्र में बताया गया है कि 'सन्मित्रं' यदि अच्छे मित्र होंगे तो अच्छे रास्ते पर लगायेंगे। धन बुरा नहीं है। धन, सम्पत्ति और वैभव तो अयोध्या में भरा हुआ था। द्वारिका सोने की थी, राम के राज्य में इतने बड़े–बड़े धनी थे, तुलसीदास जी ने लिखा है–

बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।

(रा॰ ७/२८ छंद)

ऐसे समझ पड़ता मानो कुबेर यही है, इतने बड़े–बड़े धनपति थे, किन्तु उनकी बुद्धि धर्म की थी। वहाँ धन से धर्म होता था, पाप नहीं होता। लक्ष्मी के दो रूप हैं–एक कमलजा। आपने देखा होगा कमल के ऊपर भगवती खड़ी हैं, उसे कमलजा कहते हैं। दूसरी उलूक वाहिनी है, उल्लू के ऊपर सवारी करती हैं। आपने सुना होगा लक्ष्मी की उल्लू और गरुड़ दो सवारियाँ हैं। किसी ने पूछा–लक्ष्मी उल्लू की सवारी क्यों करती हैं? मैंने कहा–जिसके पास लक्ष्मी आती है वह उल्लू हो जाता है, बिल्कुल सही बात है। उल्लू किसे कहते हैं? जिसको दिन में दिखाई न दे, जो अन्धेरे में ही देखे। जब पाप की कमाई का धन आता है तो वह अन्धेरे में देखता है, दिन में नहीं देखता। सूर्य का प्रकाश, सत्य का प्रकाश और ज्ञान का प्रकाश उसे दिखाई नहीं देगा। उसे पाप का अन्धेरा अच्छा लगेगा। तुलसीदास जी ने लिखा है–

पाप उलूक निकर सुखकारी।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि सन्मित्रं सुधनं और स्वयोषितरतिः अर्थात् अपनी स्त्री में प्रेम हो और **स्वाज्ञाः पराः सेवकाः** अर्थात् परिवार में सब अपनी आज्ञा पालन करने वाले हों, सन्मार्ग पर चलने वाले हों। इससे आगे **आतिथ्यं** घर में प्रतिदिन दो चार अतिथि आते रहें क्योंकि आश्रम है। गृहस्थ क्या है? आश्रम है। अब आश्रम कट गया केवल गृहस्थ रह गया। गीता में भगवान् ने कर्मयोग की बात कही, किन्तु अब योग काट दिया केवल कर्म रह गया, जिसका परिणाम भयानक हो रहा है। गृहस्थ स्वयं में आश्रम है जैसे वानप्रस्थ वा सन्यास आश्रम वा गुरुकुल में ब्रह्मचर्य आश्रम है।

यदि किसी गृहस्थी से कहो, तुम्हारे घर में भगवान् का भजन, पूजन होना चाहिए, वह कहेगा हमारा घर–घर है आश्रम तो नहीं है। आप ज़रा विचार कीजिए कैसी मति बनी है! शास्त्र कहता है–'अतिथ्यं शिव पूजनं प्रतिदिनं'–नित्यप्रति अतिथि सेवा करो। अतिथि उसे कहते हैं, जिसके आने की कोई तिथि न हो, ऐसे लोगों की सेवा हो। **शिव पूजनं प्रतिदिनं**–नित्य प्रति घर में भगवान् भूतेश्वर की आराधना हो। यह नहीं कि वर्ष में एक बार हो, प्रतिदिन भगवान् की आराधना होनी चाहिए। मैं जानता हूँ सभी लोग घर में बड़े–बड़े मन्दिर नहीं बना सकते किन्तु छोटा मन्दिर तो बना सकते हो। यह ड्राईंग रूम, यह बैड़ रूम, न जाने कौन–कौन से रूम हैं, उसमें से एक पूजा रूम बना लो तो क्या अन्तर पड़ेगा, क्या घटेगा? आप विचार करो, ड्रेसिंग रूम जरूर चाहिए किन्तु पूजा रूम नहीं चाहिए। कितने दुःख की बात है! फिर गृहस्थ आश्रम नहीं बनेगा, वह तो पाप का डेरा बनेगा, इसलिए अपने घर में एक छोटा–सा मन्दिर अवश्य बनाओ और वहाँ पर भगवान् की प्रतिष्ठा करके प्रतिदिन भगवान् की उपासना एवं आराधना करो। सायंकाल को अपने बच्चों के साथ पति–पत्नी मिल कर प्रभु से प्रार्थना करो, इससे बच्चों को अच्छे संस्कार मिलेंगे और धर्म का मार्ग प्रिय लगेगा तो वह भी उसी रास्ते पर चलेंगे। अपने बच्चों को पैसा एकत्रित करके देने की बजाय चरित्र की वा धर्म की शिक्षा दो जिससे बच्चों को अधिक सुख मिलेगा, पाप की कमाई एकत्रित करके देने की अपेक्षा। जो धन एकत्रित करके दोगे तो वह उनके लिए विष होगा, यदि धर्म की

सीख दोगे तो वह उनके लिये अमृत तुल्य होगा। किन्तु बुद्धि ऐसी फिरी हुई है कि धन को इकट्‌ठा करके बच्चों के लिए छोड़ जाना चाहते हैं किन्तु धर्म की सीख बच्चों को देने के लिये उनके पास समय नहीं। इसलिये घर में एक मन्दिर बनाओ, प्रभु की पूजा करो।

आतिथ्यं शिव पूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नं पानं गृहे-घर में शुद्ध आहार करो। घर में ऐसी वस्तु न बने जिससे उसकी दुर्गन्ध से सारा घर भर जाए। शुद्धाहार करो, यह माँस मनुष्य के लिये नहीं बना है। एक दिन मैंने बताया था कि मनुष्य की आँतें माँस के लिये नहीं बनी हैं, मनुष्य के दाँत माँस के लिये नहीं बने हैं, मनुष्य की जीभ माँस के लिये नहीं बनी है, यह तो भ्रष्ट बुद्धि का परिणाम है। जितने माँसाहारी पशु हैं उनके दाँत और नाखून तीखे होते हैं, वे जीभ से पानी पीते है, उनकी आँते छोटी होती हैं। जितने शाकाहारी पशु हैं उनकी आँतें लम्बी होती हैं, उनके दाँत फ्लेट वा सीधे होते हैं और वे मुँह से पानी पीते हैं। आप मुँह से पानी पीते हो या जीभ से पीते हो? जैसे गौ पानी पीती है वैसे पीते हो या जैसे कुत्ता पानी पीता है वैसे पीते हो? आप मुँह से पानी पीते हो, जीभ से तो नहीं पीते हो? कोई माँसाहारी मुँह से पानी पीता है? शेर, चीता, कुत्ता, भेड़िया, गीदड़ जितने माँसाहारी हैं सब जीभ से पानी पीते हैं और तुम मुँह से पानी पीते हो। सब माँसाहारी पशुओं के दाँत और नाखून तीखे होते हैं और तुम्हारे सीधे होते हैं, सबकी आँते छोटी होती हैं तुम्हारी आँते बड़ी होती हैं। तुम माँस खाने के लिये पैदा नहीं किये गये हो, तुम्हारा आहार अन्न, दूध और फल है, किन्तु जब बुद्धि भ्रष्ट होती है तब कुछ नहीं सूझता। यदि प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करोगे तो कौन भोगेगा? जो करेगा वही भोगेगा इसलिये अपने घर में 'मिष्ठान्नं पानं गृहे', मधुर, शुद्ध, सात्त्विक आहार करो, देवता बनो। मनुष्य पैदा हुए हो देवता बनने के लिए, राक्षस बनने के लिए नहीं। इन्सान से भगवान् बनो, हैवान न बनो, शैतान न बनो, यह शास्त्र का सन्देश है।

अन्त में कहा–**'साधुसंगमुपासते च सततं'**, नित्य प्रति सदैव सत्संग करो। जैसे सत्संग के लिये कल मैंने तीन बातें बताई थीं–या तो किसी सत्पुरुष का सत्संग करो, परमात्मा के ध्यान का सत्संग करो अथवा समय निकाल कर सद्ग्रन्थ का पठन करो। इधर–उधर की बातों में जो अपने श्वास व्यर्थ गवाते हो वे वापिस

आने वाली नहीं हैं। जितने श्वास चले गये चाहे करोड़ों रुपया दे दो, वे लौट कर नहीं आयेंगे। यह अमूल्य श्वास बर्बाद करने के लिए नहीं हैं, यह प्रयोग करने के लिए हैं इसलिए **साधुसंगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः** यदि ऐसा गृहस्थाश्रम है तो धन्य है। इससे आगे वाला श्लोक है–'धिक् धिक् गृहस्थाश्रमः' लोगों को "धन्योः गृहस्थाश्रमः" तो स्मरण रहता है, "धिक् धिक् गृहस्थाश्रमः" याद नहीं रहता इसलिए अपने गृहस्थाश्रम को धन्य बनाओ, धिक्कार के योग्य न बनाओ। जितनी बातें मैंने बताई हैं, इतना करोगे तब धन्य गृहस्थाश्रम बनेगा। आश्रम उसे कहते हैं जहाँ साधना होती है। गृहस्थ साधना का स्थान है, भोग का स्थान नहीं, पतन का नहीं, वहाँ तो भगवान् पैदा होता है। कभी सुना है कि भगवान् कभी सन्यासी के यहाँ पैदा हुआ हो? भगवान् का अवतार कहाँ होता है? किसी गृहस्थ के घर, भगवान् किसी माँ के द्वारा पैदा होता है। किसी बाबा जी के द्वारा पैदा नहीं होता, आकाश से नहीं टपकता। इसलिए गृहस्थाश्रम तो आश्रम हो, वह पवित्र पावन होना चाहिए, जिससे भगवान् को भी लालच हो कि मैं भी गृहस्थ में चल कर बच्चा बनूँ किन्तु यह कब होगा? जो मैंने बताया है जब उसके अनुसार बनोगे। आगे चलना या न चलना आप लोगों पर निर्भर है, मेरा काम तो बताना है। इसे बताने के लिये ही मैं आया हूँ, बैठा हूँ।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

२२/२/८२, हालैण्ड

मेरी प्रिय आत्माओ!

हम हिन्दुओं के लिए आज बड़ा ही सौभाग्य का दिन है। आज के ही दिन करोड़ों वर्ष पूर्व सृष्टि के मूलाधार भगवान् शंकर का अवतरण हुआ था। आज के ही दिन सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा और सृष्टि के पालक विष्णु भगवान् शंकर की आराधना किये थे। महाशिवरात्रि का अर्थ होता है कल्याणमयी रात्रि। आज की रात्रि को कल्याणमयी इसीलिए कहा गया है क्योंकि आज का दिन वह दिन है, जिस दिन से इस पृथ्वी पर हमारे हिन्दू सिद्धान्तानुसार प्रथम मनुष्य का जन्म हुआ था। फिर से समझ लीजिए आप लोग, आज का दिन वैदिक वा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तानुसार वह दिन है जिस दिन सर्वप्रथम मनुष्य इस पृथ्वी पर पैदा हुआ था। ऋग्वेद् के अनुसार–

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

उस परम तत्त्व को अनेकों नामों से पुकारा जाता है लेकिन मूलतः वेद में उसे महेश्वर, सर्वेश्वर, ईश्वरों का ईश्वर और शिव शंभु, शंकर आदि नामों से पुकारा गया है। आप लोगों को पता है कि मैं पहले भी यजुर्वेद का एक मंत्र बोला करता हूँ–

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शितवराय च।

इस मन्त्र का प्रथम चरण है "ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च" इसको आप लोग सुनिये और समझिये। 'शम्भवः' कहते हैं स्वयं प्रकाश को, स्वयं प्रकट को। जो स्वयं प्रकट हुआ था, स्वयं प्रकाशित हुआ था, जिसको प्रकाशित करने वाला कोई दूसरा नहीं था, जो किसी का Creation नहीं है, जो स्वयं अपने आपको प्रकट किया था, जो स्वयं अपने आप को Manifest किया था, उसको कहते हैं 'शम्भवः'। स्वयंभू अर्थात् जो स्वयं प्रकट हुआ हो, उसको शंभु कहते हैं। उसी से आगे सृष्टि का उद्भव हुआ जिसको कहते हैं–'मयोभवाय

च'। 'मयोभवाय च' का अर्थ होता है जो स्वयं प्रकट है और उसी से आगे सृष्टि का प्रकाश है, सृष्टि का प्राकट्य है। वह है कौन? "ॐ नमः शंकराय च मयस्कराय च" जो स्वयं कल्याण स्वरूप है। कल्याण स्वरूप परमात्मा से ही सृष्टि का प्राकट्य हुआ है और वह स्वयं सृष्टि का कल्याण करने वाला है। यदि परमात्मा न हो तो सृष्टि का आविर्भाव नहीं हो सकता, न सृष्टि का कल्याण ही हो सकता है और न इसकी स्थिति ही रह सकती है। इसलिए वह स्वयं सृष्टि का आधार है और स्वयं सृष्टि का पालक भी है। अन्त में हम कहते हैं "ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च" "शम कल्याणं करोति इति शंकरः" और "शिवः कल्याण कर्त्ता च" दोनों का अभिप्राय एक ही है। ये दोनों उसी के रूप हैं, जो शंकर है वही शिव है। अन्तर केवल इतना है कि शंकर उसे कहते हैं जो आपके भौतिक वा मायिक जगत् में आये हुए दुःख को नाश करके आपकी आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति करता है। जिनकी पूर्ति से आप संतुष्ट होकर परमात्मा की तरफ आगे बढ़ते हैं और शिव उसे कहते हैं जो आपके हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके आपको परमार्थ की तरफ आगे बढ़ाता है। ये दो बातें हैं इसको हम ऐसे कह सकते हैं कि एक आपके भौतिक विकास में प्रकाश प्रदान करता है और दूसरा आध्यात्मिक उन्नति का प्रकाश प्रदान करता है। दोनों प्रकार के प्रकाश के दाता को, दोनों प्रकार के शक्ति के दाता को शकंर और शिव कहते हैं। यह यजुर्वेद का मन्त्र है। इसी एक मंत्र में पूरी सृष्टि का विधान, पूरी सृष्टि की व्यवस्था, पूरी सृष्टि के कल्याण का बीज निहित है। 'ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च' इतना जो है, यह सृष्टि का मूल आधार और उसके द्वारा सृष्टि की अभिव्यक्ति का संकेत करता है। बाद में 'ॐ नमः शंकराय च मयस्कराय च' मन्त्र का यह भाग इस सृष्टि में सुख सुविधा की व्यवस्था का संकेत करता है। "ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च", यह सृष्टि का विकास करते हुए उस परमात्मा तक पहुँचने वा उसी कारण में लय होने की विधि बताता है। ये तीन बातें–आप इस संसार में आये हैं, जब तक रहें सुखी रहें और अन्त में आप उसी परमात्मा में लीन हो जायें; यही आपके जीवन का प्रयोजन है और इस प्रयोजन की पूर्ति में एक ही यजुर्वेद का मन्त्र ये तीनों बातें आपको समझा रहा है।

जो लोग नित्यप्रति इसका जाप करते हैं, मनन और चिन्तन

करते हैं, वे भगवान् शिव की कृपा के पात्र बनते हैं, यह बात याद रखो। जितने वेद के मन्त्र हैं उनमें केवल परमात्मा की उपासना की ही बात नहीं है, उनमें आपको सुखी जीवन जीने की भी व्यवस्था दी गई है। आप अपने जीवन काल में अज्ञान में नहीं प्रकाश में, दुःख में नहीं सुख में, नीरसता में नहीं सरसता में जीवन व्यतीत करें और अन्ततोगत्वा शरीर का अन्त हो जाने पर अपने कारण में लय हो जायें, पुनः आपको जन्म–मरण के चक्कर में न आना पड़े। जैसा कि भगवान् शंकराचार्य जी ने कहा है–

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरेशयनम्।

यह स्थिति न आवे, पुनः आपको माता के उदर में उलटा हो कर न पड़ना पड़े, उस मलमूत्र के बीच में पुनः ६ महीने आपको न लटकना पड़े, ऐसी दुःखद स्थिति से आप सदा के लिए मुक्त हो जायें, इसी के लिए यजुर्वेद का यह मन्त्र है।

कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है कि भगवान् शिव की उपासना वेद में नहीं है, यह तो पुराण काल से चली है। मैंने इतने दिनों के व्यख्यानों में बहुत बार वेद का उदाहरण देकर बताया है और समझाया भी है कि यजुर्वेद में, ऋग्वेद् में, अथर्ववेद में और सामवेद में अर्थात् चारों वेदों में आपको भगवान् शकंर की उपासना की विधि मिलेगी तथा उनकी महिमा का गान मिलेगा। जिन लोगों ने वेदों का अध्ययन नहीं किया, पुराणों को नहीं पढ़ा, उन्हीं के दिमाग में ऐसी भ्रान्ति होती है कि भगवान् की उपासना तो वेदों में है नहीं, यह तो बाद में पुराणों में आई है। मेरी एक बात याद रखें कि वेद के बाद पुराण आये हैं, यह भी एक भ्रान्ति है। मनुष्य जब से है तभी से उसके जीवन की घटनायें हैं, उसके जीवन का इतिहास है, उसके जीवन की व्यवस्था है और उसके जीवन के विकास का क्रम है। जब से मनुष्य है तभी से, यह नहीं कि मनुष्य पहले हुआ और विकास उसका बाद में होने लगा। आप ध्यान दें, माँ के गर्भ में बच्चा जिस दिन आता है उसी दिन से विकसित होना शुरू होता है, बाद में विकसित नहीं होता। उसी दिन से उसमें संस्कार पड़ने लगते हैं और वह अपने संस्कारों को ग्रहण करना प्रारम्भ कर देता है।

हमारे इतिहास में ऐसी कई घटनायें हैं जहाँ पर हम देखते हैं कि बच्चा माँ के गर्भ से ही अनेक प्रकार की विद्याओं को सीख

करके ही बाहर आया। महाभारत की कथा आप लोगों ने सुनी होगी। जिस समय गुरु द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की, अर्जुन उस दिन बाहर गया हुआ था। गुरु द्रोणाचार्य ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आज मैं पाण्डव कुल के एक महारथी का वध करूँगा। अन्तर्यामी भगवान् ने उधर ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा को भी पूर्ण करवाना था और इधर अर्जुन की रक्षा भी करनी थी इसलिए भगवान् अर्जुन को लेकर दूर चले गये। दूसरी ओर युद्ध क्षेत्र में पाण्डव घबराये हुए थे कि चक्रव्यूह का भेदन कौन करेगा। उसी समय अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु आया। उसकी आयु उस समय १६ वर्ष की थी, आकर उसने पूछा, दादा! आप घबराये क्यों हो? आप को किस बात की घबराहट है? धर्मराज ने कहा, बेटा! द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह बनाया है। हम लोग उसके विषय में कुछ नहीं जानते, केवल अर्जुन जानता है किन्तु वह यहाँ पर है नहीं। आज क्या होगा? हम सभी मारे जायेंगे। अभिमन्यु कहता है, दादा! आप दुःखी न हों, छः फाटक तोड़ने की कला मेरे को मालूम है। कहा, बेटा! तुम्हें कैसे मालूम है वो तो अर्जुन के अतिरिक्त कोई दूसरा जानता नहीं था, द्रोणाचार्य जानते हैं या अर्जुन जानता है। द्रोण अर्जुन के अतिरिक्त यह विद्या किसी को नहीं दिये हैं।

यहाँ पर एक बात और आप लोगों को समझा दूँ। प्राचीन काल में गुरु शिष्य का सम्बन्ध बहुत महान् होता था। द्रोणाचार्य जी ने जो विद्या अपने पुत्र अश्वत्थामा को नहीं दी, वह विद्या अपने शिष्य अर्जुन को दी। उसमें एक चक्रव्यूह के भेदन तथा उसके निर्माण की भी विद्या थी। महाभारत काल में केवल दो ही इसे जानते थे अर्जुन एवं द्रोणाचार्य, तीसरे को इस विद्या का पता नहीं था। अभिमन्यु ने कहा– दादा! मुझे ६ फाटक तोड़ने की विद्या प्राप्त है। कहा–कैसे प्राप्त है तुम्हें? बड़े आश्चर्य की बात है द्रोणाचार्य ने तो किसी तीसरे को बताया ही नहीं। उन्होंने तो अपने पुत्र को भी नहीं बताया, तुम्हें कैसे मालूम हो गई? अभिमन्यु कहता है, दादा! जब मेरी माँ का प्रसवकाल था, उस समय माँ पीड़ा से व्यथित थी तो मेरे पिता अर्जुन ने माँ को चक्रव्यूह की कहानी सुनाई थी। मैं माँ के उदर में ही ६ फाटक तोड़ने की विद्या को सुन लिया था, जब सातवें फाटक की कथा कहने वाले थे, उसी समय मेरा जन्म हो गया और मैं बाहर आ गया इसलिए छः फाटक तोड़ने की विद्या

मुझे याद है। आज भी भारत में तथा अन्य देशों में बहुत ऐसे बच्चें होते हैं जिनको पूर्व जन्म की बातें याद हैं, वे दुहराते रहते हैं। इस प्रकार की बहुत कहानियाँ प्रचलित हैं। आजकल यूनिवर्सिटिओं में एक अलग ब्राँच है जो इस पर रिसर्च कर रही है कि इसके पीछे रहस्य क्या है? अमेरिकन विद्वानों ने इस पर कई पुस्तकें लिखी हैं। अब तो यह बात प्रसिद्ध हो गई है, प्रत्यक्ष बात हो गई है और इसका तथ्य निकल आया है कि पूर्व जन्म की बातें बहुतों को स्मरण रहती हैं। इसी आधार पर अब लोग यह भी मानने लगे हैं कि भारतीय ऋषियों ने जो पुनर्जन्म की व्यवस्था दी है वह बिल्कुल सत्य है, कल्पना नहीं है यथार्थ है। अभिमन्यु ने अपने पिता के द्वारा माँ के गर्भ में रहते हुए छः फाटक तोड़ने की जो विद्या प्राप्त की इसका अभिप्राय क्या है? प्रमाण यह बताता है कि बच्चा जिस दिन से माँ के गर्भ में आता है तभी से वह संस्कार ग्रहण करना प्रारम्भ कर देता है। उसके विकास का क्रम उसी दिन से प्रारम्भ हो जाता है। यह नहीं कि पहले जन्मता है बाद में विकास होता है, ऐसी बात नहीं है। जिस समय जीव की अभिव्यक्ति हुई तुरन्त उसका विकास प्रारम्भ हो जाता है, उसमें विलम्ब नहीं होता।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि भगवान् के दिव्य मंगलमय विधान से जीवन का इतिहास, जीवन की प्रतिष्ठा एवं जीवन की प्रक्रिया अनादि काल से चली आ रही है और उसी की गाथा पुराणों में है और तत्त्वविज्ञान की बातें वेदों में हैं। वेदों में जो बातें तत्त्वविज्ञान की दृष्टि से बताई गई हैं उन्हीं की गाथा पुराणों में व्यक्त की गई है। उन्हीं का विष्लेषण, उन्हीं की वृहद् व्याख्या पुराणों में बताई गई है। पुराण और वेद दो अलग–२ बातें नहीं कहते अथवा ये दो बातें अलग–२ नहीं हैं। जो लोग दोनों का अध्ययन करते हैं, मनन करते हैं, अनुसंधान करते हैं उनको पता है। मैं आप लोगों को इतने दिन तक शिवपुराण की कथा सुनाता रहा, साथ में वेद मन्त्रों तथा दर्शन शास्त्र के सूत्रों का प्रमाण देकर जिससे यह किसी को भ्रान्ति न हो कि पुराण अलग है, वेद अलग है और दर्शन शास्त्र अलग है। मेरी यह राय है कि पूर्ण ज्ञान मनुष्य को तभी हो सकता है जबकि इस सब का उसे बोध हो, सब का अध्ययन हो। मैं जानता हूँ सभी नहीं कर पाते, इन सब का बोध सभी को हो जाये, सम्पूर्ण का अध्ययन सभी कर लें, ऐसा संभव नहीं है लेकिन

फिर भी आज भी विश्व में, हमारे भारत में ऐसे बहुत विद्वान् पड़े हुए हैं, मैं अकेला ही नहीं हूँ, भारत में मेरे जैसे और भी बहुत से ऐसे विद्वान् हैं जो वेद का, शास्त्र का, पुराणों का अध्ययन किए हुए हैं, मनन किए हुए हैं। आज भी शाश्वत सनातन धर्म की महिमा जो विश्व में प्रकाशित हो रही है, वो इसी का परिणाम है। भारत में लोग ज्ञान का अर्जन केवल स्वार्थ पूर्ति के लिए नहीं करते यूनिवर्सिटी की बातें अलग हैं।

भारत में इस समय भी शिक्षण की प्रक्रियायें चल रही हैं, एक प्रक्रिया है जो स्कूल यूनिवर्सिटी से होकर चलती है जहाँ लोग डिग्री लेते हैं और जहाँ से लोग पेपर का टुकड़ा लेकर अपने आपको विद्वान् समझते हैं और सोचते हैं कि हमें योग्यता मिल गई, अब हम अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रमाणित हैं। दूसरी प्रक्रिया हमारी ऋषियों की चल रही है और वह आज भी है। मैं आपके सामने स्वयं बैठा हुआ हूँ, मैं आप लोगों को बताऊँ कि मेरे पास प्रथम कक्षा का भी प्रमाण पत्र नहीं है। मैं कभी अपनी जिन्दगी में स्कूल पढ़ने नहीं गया। १८ वर्ष की आयु में मैंने अ आ इ ऊ सीखना शुरू किया था, वो भी अपने गुरु के चरणों में बैठ कर। भारत के विद्वान् लोग तथा यूनिवर्सिटिओं में रहने वाले प्रोफेसर लोग भी यह मानते हैं कि मेरा दिमाग एक छोटी सी लायेब्रेरी है। एक दो विषयों का नहीं कई विषयों की पी॰ एच॰ डी॰ करने वाले मेरे पास मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए आते हैं। हमारी पढ़ाई का क्रम अलग है, बहुत अलग है। मेरे शिष्य जो इधर आये थे वे कोशिश करने लगे और भारत के लोग भी कहने लगे कि आपको विदेशों में जाना चाहिए और आप अपनी व्याख्या धर्म के विषय में लोगों को समझाइये। मैंने कहा—बात यह है कि मैं यह समझ नहीं सकता कि लोग खड़े होकर मेरा अनुवाद करेंगे, वे कर ही नहीं सकते। मुझे पश्चिमी भाषा आती नहीं, मैं विदेशों में जाकर क्या करूँगा? एक मेरे शिष्य प्रिंसिपल थे, उन्होंने कहा—गुरु जी! आपके लिए कोई भाषा पढ़नी मुश्किल नहीं, आप थोड़ा सा समय निकालो। मैं उस समय बहुत Busy रहता था, मेरा आगे से आगे प्रोग्राम चलता रहता था। मैंने निश्चय करके सारे प्रोग्राम स्थगित कर लोगों को बताया कि मैं तीन मास व्रत में बैठ रहा हूँ, मौन व्रत ले रहा हूँ। लोगों को यह मालूम था कि अब स्वामी जी इस समय मौन व्रत में

हैं। बुलन्दशहर के पास यू॰पी॰ में एक स्थान दादरी है, मैं वहाँ तीन महीने रहा। दादरी में एक कालेज था, वहाँ पर प्रतिदिन चार प्रोफेसर और प्रिंसिपल स्वयं मुझे पढ़ाते थे। सात घण्टे मैं पढ़ता था। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि दो मास तैईस दिन में मैंने छोटी डिक्शनरी याद कर ली थी, चार हज़ार इंग्लिश के शब्द, बात समझे। इंग्लिश के चार हज़ार शब्द मैंने दो महीने तेईस दिन में याद कर लिए थे। हमें ट्रेनिंग मिली थी याद करने वाली, हमारी सारी विद्याएँ याद करने वाली हैं क्योंकि हमें बच्चेपन में पढ़ते समय समझाया गया था कि दान वही है जो अपनी गाँठ में हो और विद्या वही है जो अपने कंठ में हो। पोथी की विद्या, विद्या नहीं होती। परिणाम क्या हुआ वह आप लोग जानते हो। आज मैं दस वर्षों से विदेशों में काम कर रहा हूँ, उनकी भाषा में सनातन धर्म को समझा रहा हूँ।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि आज भी भारत में ऋषि परम्परा है, नहीं है ऐसी बात नहीं, उसकी व्यवस्था चल रही है लेकिन उसमें पढ़ने वाले बहुत कम हैं क्योंकि वहाँ से प्रमाण पत्र नहीं मिलता और वहाँ से पढ़े हुए को नौकरी नहीं मिल सकती। वहाँ से पढ़े हुए को ज्ञान मिलता है सर्टीफिकेट नहीं मिलता, अन्तर इतना है। जिसको ज्ञान चाहिए वह आज भी उस परम्परा से पढ़ता है। आज भी भारत में हज़ारों विद्वान् हैं, बड़े–२ विद्वान हैं जो अनेकों विषयों के विद्वान् हैं किन्तु प्रमाण पत्र उनके पास कुछ नहीं है। वे हैं विद्वान्, महात्मा, ऋषि। वे सर्विस करने के लिए, रोटी कमाने के लिए विद्या नहीं पढ़ते। वे अपने धर्म प्रचार के लिए विद्या पढ़ते हैं, यह बात समझे। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि जो लोग पल्लवग्राही पांडित्य के आधार पर कुछ पुस्तकें अथवा अनेक पुस्तकें पढ़ करके वा पुस्तक लिख करके पुराणों को शास्त्रों को समझाने की कोशिश करते हैं, यह उनके बस की बात नहीं है। यह तो स्वतन्त्र एक साधना का विषय है तभी समझाया जा सकता है कि शिव तत्त्व क्या है, शिवरात्रि क्या है? इसको समझने के लिए उन्हीं के द्वारा, उन्हीं की शरण ले सकते हैं जिन्होंने इसको अनुभव किया है, साक्षात्कार किया है, अनुसंधान किया है और अध्ययन किया है।

आज का दिन जैसे मैंने आपको बताया कि महाशिवरात्रि

का दिन है। भारतीय इतिहास के अनुसार आज के ही दिन मनुष्य जाति का इस धराधाम पर जन्म हुआ था, अवतरण हुआ था और वह मनुष्य जो पहले पैदा हुआ था, वह मूर्ख नहीं था। यह तो स्थिति पश्चिम की देन है कि पहले मानव जो थे वे पशु थे, पशु से Develop करके वे गोरिल्ला बने, गोरिल्ला से फिर उनकी पूँछ घिसी तो मनुष्य बन गये। यह डार्विन की थियूरी है, अब तो पश्चिम वालों ने इसे Reject कर दिया लेकिन हमारे भारत में आज भी स्कूलों तथा कालिजों में यही पढ़ाया जाता है। दुःख की बात तो यह है कि पश्चिम के लोगों ने डार्विन की थियूरी को बहुत पुरानी कर दिया, बहुत पीछे हो गई है, १५० वर्ष पीछे हो गई। नये अनुसंधान के अनुसार यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य बन्दर की संतान नहीं है। मनुष्य जब पैदा हुआ था तो वह पूर्ण प्रज्ञ था। हमारे सिद्धान्तानुसार सृष्टि के आदि में लोग पूर्ण प्रज्ञ हुआ करते थे। धीरे–२ उनके चित्त पर दोष पड़ा, मल पड़ा जिससे वे अज्ञानी हुए, अबुध हुए, जन्म से अज्ञानी नहीं थे। अज्ञान बाद में आया।

वेद का यही सिद्धान्त है, वेद की यही फिलौस्फी है कि मनुष्य में अज्ञान बाद में आया, मूल में नहीं है अज्ञान। यदि मूल में अज्ञान होगा तो बाद में ज्ञान का प्रकाश हो नहीं सकता, असंभव है। भारत की थियूरी बहुत पुरानी है उसको कहते हैं सांख्य शास्त्र वा सत्कार्यवाद। आजकल की भाषा में उसे कहते हैं Theory of Causation, Cause and effect theory whatever is in the cause, you will find same thing in the effect alsoअर्थात् जो कुछ कारण में है वही आपको कार्य में मिलेगा, जो कुछ कारण में नहीं है वह आपको कार्य में नहीं मिल सकता। यदि यह बात सत्य है कि जो कारण में नहीं है वह कार्य में नही मिल सकता, जो लोग ऐसी भ्रान्ति में हैं कि यह संसार पंच महाभूतों के संयोग से बन गया, उसी से मनुष्य पैदा हो गया और उसी में आगे चल कर ज्ञान पैदा हो गया, उन भले आदमियों को सोचना चाहिए कि यदि कारण में ज्ञान नहीं था तो बाहर ज्ञान कहाँ से प्रकट हो गया? यदि कारण में ज्ञान था तो ज्ञान जड़ता में कभी हो नहीं सकता, किसी काल में नहीं हो सकता। जड़ता ज्ञान से शून्य है इसीलिए उसे जड़ता कहते हैं। यहाँ पर जो चितशक्ति है, जिसके प्रकाश में ज्ञान का उदय होता है

वह नित्य तत्त्व है और वह जब भी संसार में प्रकट हुई है ज्ञान से युक्त रही है। इसलिए हम वेद के उस मंत्र को पहले स्मरण करते हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

(श्वेता॰ ६/१८)

सिद्धान्त यह है कि सर्वप्रथम मनुष्य जब पैदा हुआ इस पृथ्वी पर, पहले उसे दिव्यशक्ति द्वारा ज्ञान से भरा गया। वह पूर्ण ज्ञानी था अज्ञानी नहीं था। आप लोगों ने सुना होगा पुराणों में वेद के उसी सिद्धान्त को बताया गया है कि सृष्टि के प्रथम पुत्र ब्रह्मा हैं। उन्हीं के चार मुखों से चार वेदों का उच्चारण हुआ। चार वेद ब्रह्मा से प्रकट हुए हैं। यह जो एक सिद्धान्त बताया गया इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि भगवान् ने जो सृष्टि में पैदा होने वाला जीव या प्रथम मनुष्य था उसको ज्ञान से युक्त किया। उसके जीवन में चतुर्मुखी ज्ञान था, विचार था, भाव था, क्रिया थी और क्रिया का लक्ष्य था, जिसको कहते हैं चार मुख। चतुर्मुखी ज्ञान क्या है, जानते हो? तत्त्व का ज्ञान, तत्त्व के प्रयोग का ज्ञान, प्रयोग के परिणाम का ज्ञान और उसके उपभोग का ज्ञान। यह चार प्रकार का ज्ञान जो है, यही ब्रह्मा के चार मुख हैं और यह चार प्रकार का ज्ञान प्रत्येक जीव में होता है। जब बच्चा पैदा होता है तो उसे भी चार प्रकार का ज्ञान होता है। अब तो Child psychology के अध्ययन वाले भारत की प्राचीन मान्यताओं को स्वीकार किये हैं कि जब बच्चा पैदा होता है तो उसमें कुछ गुण वा संस्कार होते हैं। उस समय वह जानता है किन्तु व्यक्त नहीं कर सकता, समझता है परन्तु व्यक्त करने के लिए साधन नहीं। इसलिए जो संस्कार उस नवजात शिशु में डाला जाता है उसको बड़ी सावधानी से वह ग्रहण करता है। बच्चेपन में उसकी Receptive Power बहुत सजग होती है इसलिए उसमें संस्कार अधिक प्रबल रूप में पड़ते हैं। जो बातें ऋषिओं ने पहले कहीं थीं अब पश्चिम के लोग उसका अनुसंधान करके उसे यथार्थ रूप में स्वीकार कर रहे हैं।

मैं आप लोगों को यह समझा रहा था कि सृष्टि के आदि में जो पुरुष पैदा हुआ वह पूर्ण ज्ञानी था। अज्ञान कहाँ से आया? अज्ञान आता है प्रमाद से। आप यह नहीं कह सकते कि जो बहुत

बड़ा ज्ञानी है उसका पुत्र भी बहुत बड़ा ज्ञानी ही होगा। ऐसा कभी हो सकता है? अज्ञानी भी पुत्र हो सकता है, यदि उस पुत्र को प्रमाद हो जाये। ज्ञान प्राप्त करने के लिए चाह न हो, सजगता न हो तो वह पुत्र अज्ञानी हो सकता है। बड़े–बड़े ज्ञानी की सन्तानें अज्ञानी होती हैं।

आपको एक छोटी सी कहानी सुना दूँ, बड़े मज़े की बात है। बहुत पुरानी नहीं है, इंग्लैण्ड में वर्नार्डशा नाम के एक फिलौस्फर थे। स्वरूप उनका सुन्दर नहीं था, उनके मुँह के ऊपर चेचक के दाग थे, कुरूप थे लेकिन माने हुए फिलौस्फर थे। उस समय वहाँ की एक लड़की सुन्दरी चुनी गई। जब वह सुन्दरता में प्रथम नम्बर पर आई तो उसने निश्चय किया कि मैं इस समय इंग्लैंड में सबसे अधिक सुन्दर हूँ और वर्नार्डशा इंग्लैण्ड में सबसे बड़ा ज्ञानी है, इसलिए मैं अपना विवाह उससे करूँगी। वह पहुँच गई वर्नार्डशा के पास और जाकर कहने लगी, श्रीमान जी! मैं आपके पास आई हूँ। किसलिए? मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ। उसने पूछा, इसमें कारण क्या है? कहा, कारण यह है कि हमारे और आपके संयोग से जो सन्तान होगी उसमें मेरी शक्ल होगी और आपकी अक्ल होगी जो विश्व में सबसे विद्वान् और सबसे सुन्दर होगी। आप विद्वान् हैं सुन्दर नहीं हैं, मैं सुन्दर हूँ विद्वान् नहीं हूँ। हम दोनों मिल कर एक ऐसी सन्तान का निर्माण करेंगे जो विश्व में सबसे सुन्दर और सबसे विद्वान् होगा। वर्नार्डशा ने कहा, देवी! यह गारन्टी कौन दे कि उस सन्तान में हमारी अक्ल और तुम्हारी शक्ल आयेगी? कहीं दुर्भाग्य से मेरी शक्ल और तेरी अक्ल आ गई तो फिर क्या होगा? इसलिए तू दया कर मेरे ऊपर, मेरे को ऐसी सन्तान और विवाह की जरूरत नहीं है। यह मैं आपको इसलिए बता रहा था कि ये संस्कार थे। एक अज्ञानी के यहाँ भी ज्ञानी पुत्र पैदा हो सकता है और एक ज्ञानी के अज्ञानी पुत्र पैदा हो सकता है। अज्ञान तमोगुण का परिणाम है।

एक बात और समझ लो थोड़ी सी, वैज्ञानिक ढँग से समझा दूँ फिर रामायण भी सुनाऊँगा आप लोगों को। यहाँ पर थोड़ी सी फिलौस्फी समझ लो, बहुत मतलब की फिलौस्फी है। वैदिक विज्ञान यह कहता है कि प्रथम अभिव्यक्ति जो है वह सूक्ष्म है और जो व्यक्त है, उसका वह स्थूल है। आप लोग ऐसा समझ लें कि ठोस रूप में

आप लोग जो कुछ भी देख रहे हैं, यह सारे का सारा Solid तत्त्व Liquid का परिणाम है और कुछ नहीं। यह पहले मूल में Liquid था Liquid से ही Solid बना है। Liquid भी Gases का परिणाम है, वो अपने आप में Liquid तत्त्व नहीं है परिणाम है Gases का। मूल तत्त्व जो है वह Gases है। यह Space जो है वह Gases तत्त्वों से भरा हुआ है, वह हमारे और आपके बीच में दीवार नहीं बनता क्योंकि वह सूक्ष्म है। सूक्ष्म होने के नाते उसमें आवरण नहीं है। वही Gases तत्त्व यदि घनीभूत हो जाये तो उससे थोड़ा सा आवरण आने लगेगा, जैसे कोहरा हो जाये। यहाँ पर ठोस तत्त्व ही जब तरल में परिणत होने लगता है तो फोग रूप धारण करता है। फोग यदि बीच में आ जाये तो हम आपको बहुत कम देख पायेंगे, बहुत घना हो जाये तो नहीं देख पायेंगे। यदि वही फोग जल रूप में परिणत हो जाये तो बहुत बड़ी दीवार बन जायेगा, आवरण बन जायेगा, तब बिल्कुल नहीं देख पायेंगे। इसलिए आप लोग समझ गये होंगे कि मूल में जो तत्त्व है वह सूक्ष्म है, उसका परिणाम थोड़ा सा स्थूल होता है और उसका परिणाम बिल्कुल स्थूल हो जाता है। यह जो पूर्ण ठोस अवस्था है, बाद की है प्रारम्भ की नहीं।

इसी रूप से सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य का निर्माण हुआ तो उसका चित्त सूक्ष्म था, उसका चित्त सतोगुण से युक्त था, बाद में रजोगुण का प्राकट्य हुआ और उसके बाद में तमोगुण का प्राकट्य हुआ। जैसे–२ वह सूक्ष्म से स्थूल की ओर आता गया वैसे–२ उसके ज्ञान पर पर्दा पड़ता गया, ज्ञान का आवरण घटता गया इसीलिए अन्त में वह अबोध हो गया, अज्ञानी हो गया। उस अज्ञान को मिटाने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई। शिक्षा का अर्थ होता है जो कुछ अन्दर छिपा हुआ है, दबा हुआ है वा जो कुछ अन्दर निहित है उसे प्रकट करना, उसे बाहर ले आना। Bring Out draw out. उसका अर्थ यह नहीं होता कि बाहर से ज्ञान ठूसो वा भरो। इससे आप समझ गये होंगे कि वैदिक सिद्धान्त आपको बताता है कि सृष्टि का प्रथम पुरुष जो था वह ज्ञान युक्त था, यह बिल्कुल तर्कसंगत है और उसको मानने में कहीं भी अन्ध विश्वास के लिए स्थान नहीं है। इसीलिए हमारे यहाँ इस मन्त्र में यह संदेश दिया गया–

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।

वह स्वयं प्रकट हुआ परमात्मा और उससे उत्पन्न हुई सृष्टि प्रारम्भ में सब ज्ञान स्वरूप थी। ज्ञान ही आपको सांसारिक सुख प्रदान करने वाला है, अज्ञानी के लिए तो संसार में भी सुख नहीं है परलोक की बात छोड़िये। अज्ञानी यहाँ भी सुखी नहीं रह सकता। रहेगा क्या, क्या राय है आपकी? तुलसीदास जी की चौपाई में–

जहँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।

(रामा॰ ५/४०–६)

सम्पत्ति कहाँ है जहाँ सुन्दर मति है। बुद्धिमान के पास ही लक्ष्मी रहती है, मूर्ख के पास नहीं रहती। दुर्भाग्य से कहीं मूर्ख के पास लक्ष्मी आ भी जाये तो वह थोड़े दिन में ही उसको साफ कर देता है। किसमें? घूँट लगाने में, पासा फेंकने में वा नम्बर लगाने में। कुछ लोग हैं जो दस पैसे कमाते हैं तो उसमें से पाँच पैसे खर्च करते हैं और पाँच पैसे बचा लेते हैं। वो पाँच–२ पैसे इकट्ठा करते–२ एक दिन उनके पास पाँच हज़ार पाँच लाख हो जाता है, आगे उसका प्रयोग करके वे अधिक से अधिक उससे प्राप्त कर लेते हैं, वो बुद्धिमान लोग हैं। जो विवेकहीन लोग हैं उनको यदि पचास मिल गया तो वे सौ पहले खर्च किये रहते हैं।

बादशाह अकबर के समय की एक कहानी मैंने सुनी थी। बादशाह ने अपने मन्त्री बीरबल से कहा कि हमारे राज्य में जितने व्यसनी लोग हैं, उन सब व्यसनियों को ले आओ और उनको हम समाज में फैलने नहीं देंगे क्योंकि व्यसन बढ़ जाएगा तो राष्ट्र समाप्त हो जायेगा। व्यसनी जानते हो कौन हैं? नशेबाज, जिनके पास कोई न कोई नशा हो। बीरबल ने उन सबको इकट्ठा कर लिया तो बादशाह ने एक से पूछा, तुम्हारा क्या व्यसन है? वह कहता है मैं गांजा पीता हूँ। तुम्हारा खर्च कितना है? बता दिया, इतना है, उसको दे दिया। दूसरे से पूछा, तू क्या व्यसन करता है? अफीम खाता हूँ। कितना खर्च है? जितना खर्च बताया उसको दे दिया। शराब पीने वाला आया उससे पूछा, उसने बताया इतना है। एक बोतल, दो बोतल, तीन बोतल पीयेगा और कितना पीयेगा? सभी व्यसनियों को लिमिटेशन में बाँध दिया। अन्त में जुआरी आया। उससे बादशाह पूछता है कि तुम्हारा जो व्यसन है, उसका खर्च

कितना है? वह कहता है बादशाह! तुम्हारा सारा राज्य एक दाव पर। व्यसनी के लिए खर्च की कोई सीमा है? शराब आई उसके साथ–२ जुआ अपने आप आ जाता है, उसको बुलाना नहीं पड़ता, उसके लिए कष्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। याद रखो, जहाँ शराब है वहाँ जुआ है, जहाँ शराब और जुआ है वहाँ पर धीरे–२ चोरी की, बेईमानी की आदत आयेगी तथा वहाँ पर प्रत्येक बुराई धीरे–२ पहुँचने लगेगी। इसलिए शास्त्र में बताया गया है कि किसी भी प्रकार का व्यसन तुम्हारी जिन्दगी के विनाश का कारण बनेगा, तुम कभी उन्नत नहीं हो सकते।

जहाँ सुमति है, सुमति का लक्षण क्या है? क्या तुम अपने आहार में सावधान हो? क्या खाना क्या नहीं खाना, यह तुम्हें पता है? जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हो वो यदि तुम खाओ तो तुम्हारी बुद्धि की महिमा है और जो स्वाद के नाते खाओगे तो उसमें तुम्हारी बुद्धि क्या करेगी, क्या समझे? भोजन के लिए दो दृष्टि हो सकती है स्वास्थ्य और स्वाद। जो तुम खाते हो स्वास्थ्य के लिए खाते हो या स्वाद के लिए, यह तुम स्वयं समझो। किसके लिए खा रहे हो? यदि स्वाद के लिए खा रहे हो तो वहाँ बुद्धि का दिवाला है और यदि स्वास्थ्य के लिए खा रहे हो तो तुम्हारी बुद्धि वहाँ सजग है। इसी रूप से जिस वस्तु को तुम ग्रहण करते हो, उसके लिए पहले दस बार सोचो कि उस वस्तु का तुम्हारे जीवन में क्या प्रयोग है। यदि उसकी उपयोगिता है कोई, उसके बिना तुम नहीं रह सकते, उसको अंग्रेजी में कहते हैं Necessity यदि वह वस्तु तुम्हारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है तो उसको अवश्य प्राप्त करो लेकिन यदि केवल शौक पूरा करने के लिए किसी वस्तु को तुम प्राप्त करते हो तो परिणाम बुरा होगा। शायर कहता है, शौक में आकर मैंने एक कदम गलत रास्ते पर रख दिया था–

सिर्फ एक कदम रखा था गलत राहे शौक में।
मंजिल तमाम उमर मुझे ढूँढ़ती रही।।

मैं मंजिल को मिला नहीं कभी इसलिए मेरे दोस्तो याद रखो! यदि तुम बुद्धि का प्रयोग करो तो सम्पत्ति युक्त हो जाओगे। दरिद्रता तुम्हारे पास तभी आयेगी जब तुम्हारी बुद्धि का दीवाला हो जायेगा। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है–

जल संकोच बिकल भइँ मीना।
अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना।।

(रामा॰ ४/१६–८)

अबुद्ध माने अज्ञानी। जैसे अज्ञानी के अधिक कुटुम्ब हो जाये तो वह दुःखी होता है ऐसे ही जल के अभाव में मछलियाँ दुःखी होती हैं। कहने का अभिप्राय धन आता है बुद्धि से।

एक बाप मरने लगा, उसके चार लड़के थे, चारों को उसने बुलाया। चारों बच्चे बाप के पास आ गये। उसने चारों से कहा–बेटे, मेरी एक अन्तिम सीख है, तुम लोग मानोगे? उन्होंने कहा–मानेंगे। पहले तुम अपने–२ हाथ में एक–एक धागा ले आओ पतली–२ रस्सी का। चारों लड़के ले आए। उसने कहा, तोड़ो तो, लड़कों ने तोड़ दिया। उसने कहा, ये चारों टुकड़े मुझे दे दो। लड़कों से लेकर उन चारों टुकड़ों की रस्सी बना दी। चारों को रस्सी तोड़ने के लिए कहा, बारी–२ सभी ने कोशिश की रस्सी नहीं टूटी। चारों ने कहा–पिताजी यह तो नहीं टूट रहा। उन्होंने कहा–इसका अर्थ समझे तुम लोग? तुम चार भाई हो, यदि तुम अलग–२ रहोगे तो एक–२ धागे की तरह तुम टूट जाओगे। तुम बच नहीं सकते, संभल नहीं सकते और यदि तुम चारों इक्ट्ठे होकर रहोगे तो इस रस्सी के समान मजबूत हो जाओगे तो दुनिया में कोई तुम्हें तोड़ नहीं सकता। यह देख रहे हो एक धागा दूसरे धागे से लिपटा हुआ है इसलिए रस्सी बनी। यदि एक धागा, दूसरे धागे से अलग रहे तो रस्सी नहीं बन सकती। ऐसे ही तुम जब चारों एक दूसरे से एक हो जाओगे, लिपट जाओगे तो सुखी रहोगे, स्थिर रहोगे और मजबूत रहोगे। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत जैसा विशाल देश जिसके पास वेद जैसा शास्त्र हो, जिसके पास दर्शन शास्त्र जैसे अद्वितीय सांख्य और वेदान्त हों, जिसके पास राम और कृष्ण का इतिहास हो, वो देश ६०० वर्ष तक लगातार विदेशियों के पांव का आघात बना रहा। क्यों बना रहा? जानते हो? फूट के नाते। छोटे–२ राजा अपने–२ राज्य के लिए मर रहे थे, विदेशी आये एक–२ को बारी–२ खत्म करके राज्य कर लिया और उसी देश, उसी भारत को अरब जैसा असभ्य देश अपने पाँव के नीचे रौंदा था। उसी भारत के लोग जब बर्तानिया का साम्राज्य था, ज़रा देखिये, जहाँ लोग कहते थे कि सूर्य उसके राज्य में उदय होता था

और उसके राज्य में अस्त होता था, ऐसे बड़े साम्राज्य को लात मार कर निकाला वहाँ से। कैसे निकाला जानते हो? संगठन से। उस समय सारा भारत एक था, एक सूत्र में बंधा हुआ था। दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत को उसके सामने हार खानी पड़ी। हर एक जगह की यही कहानी है, आपके जीवन की भी यही कहानी है, आपके परिवार की भी यही कहानी है और आपके सामाजिक जीवन की भी यही कहानी है। यदि आपने बुद्धि और हृदय का प्रयोग किया, प्यार से रहे, परिवार को संगठित रखे तो आप एक दिन विकास की सीढ़ी पर आगे बढ़ेंगे। यदि आप उसके विपरीत चले तो विनाश की घडियाँ अधिक देर तक गिननी नहीं पड़ेंगी, याद रखो।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

भगवान् राम को अकेले वन हुआ। माता कैकेयी ने अकेले के लिए वनवास माँगा था, सीता उनकी धर्मपत्नी साथ चल पड़ी लेकिन लक्ष्मण को वनवास नहीं मिला था। राम के प्यार ने लक्ष्मण को साथ खींच लिया, भरत आये उनको साथ खींच लिया, अवधपुरवासी उनके पीछे चल पड़े। राम ने सभी को लौटा दिया। राम अकेले वन में गये, दो भाई और स्त्री उनके साथ रही। जंगल में जाकर उन्होंने इतनी विशाल सेना एकत्रित कर ली जिसकी कोई सीमा नहीं थी। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है। भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं–

वानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरख जो करन चह लेखा।।

(रामा० ४/२२–१)

उमा! मैंने अपनी आँखों से वानरों की सेना देखी है। कौन मूर्ख है जो उनकी गणना करे? इतनी बड़ी सेना राम की और रावण अपने सगे भाई को अपना नहीं बना सका, लात मार कर विभीषण को निकाल दिया। परिणाम क्या हुआ जानते हो? तुलसीदास जी ने लिखा है–

रावन जबहि विभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहि अभागा।।

(रामा० ५/४२–३)

जिस समय रावण ने विभीषण को लात मार कर निकाला उसी दिन उसका नाश निश्चित हो गया क्योंकि वह विभव रहित हो

गया, ऐश्वर्य रहित हो गया, भाग्यहीन हो गया। जो सुमति की बात नहीं मानता, कुमति को ही प्राथमिकता देता है, कुमति को ही अपनाता है तो उसके जीवन में कभी सुख–शान्ति स्थायी नहीं रह सकती। कुमति के नाते थोड़े दिन तक जो शान्ति और सुख का जलवा दिखाई देता है, वह केवल भ्रान्ति मात्र होता है, वह स्थायी नहीं रहने का। इसलिए मेरे दोस्तो यह याद रखो–

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

जहाँ सुमति है वहीं सम्पत्ति है। "जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।" जहाँ कुमति है वहाँ विपत्ति के अतिरिक्त कुछ हाथ लगने का नहीं। सुमति और कुमति का अर्थ क्या है? यदि आप सत्पुरुषों का संग करेंगे, सत्शास्त्रों का चिन्तन करेंगे, मनन करेंगे, अच्छे लोगों के साथ मिलेंगे, बैठेंगे तो आप उनसे सुमति प्राप्त करेंगे, सुन्दर बुद्धि प्राप्त होगी।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोकहुँ बेद बिदित सब काहू।।

(रामा॰ १/७–८)

तुलसीदास जी ने एक उदाहरण दिया–

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।।

(रामा॰ १/७–६)

वायु की गति उर्ध्व होती है, वही धूल जो आपके पांव के नीचे पड़ी है जब वायु का संग करती है तो आकाश तक पहुँच जाती है और वही धूल जब पानी का साथ मिलता है तो नीचे जाकर कीचड़ बन जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं, सत्संग से यानी अच्छे संग से जिसकी उर्ध्वगति है ऐसे संग से धूल भी आकाश में पहुँच जाती है और जिस की निम्न गति है, नीची गति है ऐसे पानी के संग से धूल भी कीचड़ बन जाती है। इसी रूप से जब नीच का संग आपको मिलता है तो आपकी ज़िन्दगी कीचड़ बन जाती है और यदि सत्संग मिल जाये तो आपकी ज़िन्दगी आकाश को छूने लगती है, ये सत्संग और कुसंग के परिणाम हैं। याद रखो दुनिया में अच्छे लोग भी हैं, बुरे लोग भी हैं। सत्संग किसे मिलता है? जिसकी बुद्धि में सात्त्विक संस्कार हों। कुसंग किसे मिलेगा जिसकी बुद्धि में कुत्सित संस्कार हैं, दूषित संस्कार हैं क्योंकि जो

आपके परमाणु हैं वो अपनी सजातीयता की तरफ ही आकर्षित होंगे। लोगों मे जो आकर्षण होता है, क्यों होता है? हज़ारों लोगों को आप मिलते हैं, कोई एक ऐसा व्यक्ति मिलता है जो आपको अपनी तरफ खींच लेता है और कई ऐसे मिलते हैं जिन्हें आप जानते भी नहीं, देखते भी नहीं, पता भी नहीं होता मिला था कि नहीं मिला था, कारण क्या है? एक व्यक्ति जो एक को अपनी तरफ खींच रहा है, दूसरे को नहीं खींच पाता, इसमें कारण है सजातीय परमाणु। बड़े से बड़े ऋषि, बड़े से बड़े योगी ही नहीं भगवान् स्वयं ही क्यों न हो तब भी वह सबको अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर सकते। क्यों नहीं कर सकते? क्योंकि उनमें सजातीय परमाणु नहीं हैं। रावण में वो परमाणु नहीं थे जो राम में थे। सजातीय परमाणु में ही आकर्षण होता है। जिसके चित्त में सात्त्विक परमाणु हैं वो सत्पुरुषों की तरफ आकर्षित होगा। जिसके चित्त में दूषित परमाणु हैं, वो बुराई की तरफ आकर्षित होगा, बुराई उसे अपनी तरफ खींच लेगी। अब किस प्रकार के परमाणु आपके जीवन में हैं, ये आप जान सकते हैं। आपके मस्तिष्क की क्या अवस्था है, ये आप जान सकते हैं क्योंकि सबका Mental Level एक सा नहीं है। State of Mind सबका एक जैसा नहीं है Everybody can act according to one's own state of mind. अपने चित्त की अवस्था के अनुसार ही व्यक्ति काम करता है, इसके विपरीत नहीं कर सकता। इसलिए मैं आपको बता रहा था कि सत्संग की तरफ वृत्ति होना भी सौभाग्य की बात है, साधन की बात है, संस्कारों की बात है।

एक बात और यहाँ समझ लो, गीता में एक सिद्धान्त बताया गया है, जो व्यक्ति इस शरीर में अच्छे और शुभ कर्म कर रहे हैं, मरने के पश्चात वो किसी अच्छे संस्कार वाले व्यक्ति के यहाँ पैदा होंगे–

शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।

(गीता ६/४१)

वो उत्तम कुल में क्यों पैदा होंगे? उन्होंने उत्तम कर्म किये थे, उस उत्तम कर्म का परिणाम है कि उनके संस्कार उत्तम हैं। ऐसे उत्तम संस्कार वाली जो आत्मायें हैं वो अपने लिए योग्य माता–पिता की तालाश करती रहती हैं। जैसी माता–पिता के मन की स्थिति होगी, उसके अनुसार ही आकर्षित होकर वो आत्मा उनके यहाँ पुत्र

रूप में पैदा होगी। अच्छे–२ महात्मा अपने लिए योग्य माता–पिता की तालाश करते रहते हैं। जब उनको योग्य माता–पिता मिलते हैं तो वो उनके माध्यम से जन्म लेते हैं, ऐसे ही दुष्ट आत्मायें भी बैठी हुई हैं। यह स्पेस भरा हुआ है अच्छी और बुरी आत्माओं से। अब तो वैज्ञानिकों ने भी इसका अनुसंधान करके देखा है और अमेरिका में ऐसे Spiritual Church हैं, एक नहीं हज़ारों होंगे, इंग्लैंड में भी हैं और वहाँ पर भी इसी बात का अनुसंधान कर रहे हैं कि स्पेस में दुष्ट आत्मायें भी हैं और अच्छी आत्मायें भी हैं और वो अपने लिए योग्य माता–पिता की तालाश करती रहती हैं। यदि माता–पिता दूषित हैं तो दूषित आत्मायें उनको माध्यम बनाकर सन्तान रूप में पैदा होंगी और यदि माता–पिता का जीवन शुद्ध है, आचरण शुद्ध है तो उनके माध्यम से अच्छी आत्मायें जन्म लेंगी। जैसा संस्कार माता–पिता का होगा वैसी ही आत्मायें उन्हें वरण करेंगी। गीता के छठे अध्याय में भगवान् ने एक बात कही है–

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।

(गीता ६/४१)

ऐसा विद्वान् साधक योगियों के कुल में पैदा होता है, अच्छे माता–पिता के द्वारा पैदा होता है। जन्म से उसे संस्कार मिलने लगते हैं। जैसे माता–पिता होंगे वैसे संस्कार मिलेंगे और जैसे संस्कार मिलेंगे वैसी उनकी बुद्धि बनेगी, जैसे उनके परमाणु होंगे फिर वैसे ही लोगों का संग ढूँढेंगे और वो वैसे ही लोगों के साथ रहेंगे। कभी–२ दुर्भाग्यवश ऐसी घटना हो जाती है कि दुष्ट संग में अच्छे कुल का व्यक्ति पड़ जाता है।

मैं आपको एक कथा सुनाऊँ। एक प्रचेता नाम के ऋषि जंगल में रहा करते थे, उनका आश्रम था वहाँ। उनके दस पुत्र थे। सबसे छोटा जो पुत्र था वो बहुत छोटा था तभी ऋषि की मृत्यु हो गई। वो छोटा पुत्र अपने भाईयों की आज्ञा न मान कर जंगल में भाग जाता था और वहाँ भीलों और किरातों के बच्चों के साथ खेलता था। धीरे–२ खेलते–२ उसकी वृत्ति बन गई किरातों के साथ रहने की। माँ बाप थे नहीं, भाईयों ने इतना ध्यान नहीं दिया, उसको सम्भाला नहीं। धीरे–२ उसकी आदत पड़ गई और किरातों की तरह वो धनुषबाण लेकर पक्षी मारने लगा, थोड़ा और बड़ा हुआ तो एक किरात की लड़की से उसका प्यार हो गया, वो वहीं रहने

लगा। भाइयों ने उसे पतित कह कर निकाल दिया। अब वो किरात की कन्या से विवाह करके किरातों के परिवार में रहने लगा और वैसा ही वेष बना कर। वो डाकू बन गया और उसका नाम पड़ा रत्नाकर। वो था ऋषि का लड़का, किरात नहीं था, ब्राह्मण था लेकिन संयोग ऐसा बना कि वह किरातों के साथ रहते–२ किरात बन गया। अब वो डाका मारने लगा। स्त्री हो गई, बच्चे हो गये और डाका मारना उसका काम हो गया। तुलसीदास जी ने एक जगह अपनी रामायण में लिखा है–

काल सुभाऊ करम बरिआई।
भलेऊ प्रकृति बस चुकइ भलाई।।

(रामा० १/७–२)

अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ, अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ व्यक्ति भी बुराई की तरफ लग जाता है। संस्कार कहो या कर्म की प्रबलता कह दीजिए, यही उसकी बात होती है लेकिन जो मूल में संस्कार होते हैं वो दबे होते हैं, वो जब मौका पाते हैं तो प्रकट हो जाते हैं। एक दिन संयोगवश सप्तऋषि जा रहे थे उसी रास्ते से, वो रत्नाकर डाकू दौड़ कर उनके सामने खड़ा हो गया, रुक जाओ। ऋषिओं ने उसकी ओर देखा, पूछा–क्या बात है? जो पास में है, रख दो। उन्होंने कहा हमारे पास तो कुछ भी नहीं है, हम तो ऋषि हैं। कुछ भी नहीं है तो फिर तुम अपने में सावधान हो जाओ। क्या करोगे? तुम लोगों को मारूँगा। जब हमारे पास कुछ भी नहीं है तो फिर हमें क्यों मारोगे? वो कहता है, तुम्हें यदि नहीं मारूँगा तो तुम इस रास्ते से जाओगे, जो इधर से आने वाले होंगे उन्हें तुम मना करोगे कि वहाँ डाकू रहता है इसलिए तुम इस रास्ते से न जाओ इसीलिए तुम्हें मारूँगा। ऋषियों ने सोचा–जो इतनी दूर की सोच रहा है, उसके पास बुद्धि का संस्कार है लेकिन दबा हुआ। ऋषियों ने कहा, यह पात्र है, इसे ज्ञान देना चाहिए। ऋषियों ने पूछा–चलो थोड़ी देर के लिए तुम हमें मार ही दो लेकिन मार कर करोगे क्या? यदि कोई दूसरा आयेगा, उसे मारते हो, लूटते हो, उससे लाभ क्या होता है? मैं अपने स्त्री, बच्चे का पालन करता हूँ। अरे देवता! उनका पालन तो करते हो किन्तु इतना बड़ा जो पाप कर रहे हो, इस पाप में तुम्हारे स्त्री, बच्चे कोई फल के भी भागी होंगे? वो कहता है, क्यों नहीं होंगे? हम कमा कर लेकर जाते हैं तो

खाते हैं। जब खायेंगे तो पाप नहीं भोगेंगे। ऋषियों ने कहा—"हाथ कंगन को आरसी क्या", तुम जाकर पूछ आओ, हम यहीं बैठे हैं, यदि वे तुम्हारे पाप में भागी होंगे तो हमें मार देना। वह कहता है, वाह! बड़े गुरु मिले आप, हम घर जाएँ तो आप अपना रास्ता पकड़ो। ऐसी गलती मैं नहीं कर सकता। ऋषियों ने कहा, भई! तुम इतना मत घबराओ, तुम्हारे पास रस्सी है, हमें बाँध दो। यह पेड़ है, इसके साथ बाँध कर तुम घर जाकर पूछ आओ। यह बात उसके दीमाग में बैठ गई। सप्त ऋषियों को पेड़ के साथ बाँध दिया और घर पर आ गया।

स्त्री मिली, उससे पूछा—क्यों देवी! हम लोगों की हिंसा करके जो लाते हैं, उसे तुम खाते हो, बच्चे खाते हैं, हिंसा का जो पाप होता है, उसके भोग में भी तुम सब भागीदार होंगे। स्त्री कहती है, वाह, बड़े समझदार आये तुम! तुम्हें पता है स्त्री पुरुष के धर्म की अधिकारिणी है पाप की नहीं। पुरुष के धर्म और धन में स्त्री का आधा भाग होता है लेकिन पुरुष के पाप में स्त्री का कोई भाग नहीं। पाप के लिए अर्धांगिनी नहीं है, वह धर्म और धन के लिए अर्धांगिनी है। वह मुँह देखने लगा कि जो मैं पाप करके लाता हूँ, उसका फल मुझे भोगना पड़ेगा। वह कहती है, मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, मेरे बाप ने तुम्हें सौंपा है, मेरे जीवन का तुमने उपभोग किया है। उपभोग के बदले में तुम हमारी पूर्ति करते हो, जो तुम मुझे देते हो उससे अधिक मैं तुम्हें दे चुकी हूँ फिर मैं तुम्हारे पाप में हिस्सेदार कैसे हो सकती हूँ? जो तुम मुझे आहार और वस्त्र देते हो, इससे अधिक मैं तुम्हें दे चुकी हूँ, अपना शरीर दिया, अपना सर्वस्व दिया। जितना मैंने तुम्हें दिया है उसका जन्मभर में तुम बदला नहीं चुका सकते इसलिए तुम्हारे पाप में हम भागीदार क्यों? जो तुम करते हो, तुम जानो, उसे तुम भोगो। जब स्त्री पाप में भागीदार नहीं हो रही तो बच्चे कहाँ से होंगे? जिनके लिए मैंने अब तक लोगों की हिंसा की, लोगों का गला घोंटा, हत्याएँ की, वो आज मुझे उत्तर दे रहे हैं। इस सारे का परिणाम मुझे अकेले भोगना पड़ेगा, रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। आया, सप्त ऋषियों के चरणों में गिर गया, आपकी शरण में हूँ, मेरा उद्धार कीजिए। ऋषि मुस्कराये, समझदार है, संस्कार बीच में था, जाग्रत हो गया संग पाकर के। उसने ऋषियों को बन्धनमुक्त किया और कहा कि मेरे उद्धार का कोई रास्ता

बताओ। ऋषियों ने कहा–तुम्हें राम नाम का जप करना पड़ेगा। वह कहने लगा–मेरे से होगा नहीं। मैंने जन्म भर नहीं किया, अब क्या करूँगा? उन्होंने कहा, जन्म भर नहीं किया तो अब कर ले। वो कहता है कि यह मेरे से होगा नहीं। ऋषि विचार करने लगे कि इसको कैसे समझाया जाये। उन्होंने कहा, तुम मरा, मरा कह सकते हो? उसने कहा, यह तो मैं प्रतिदिन करता हूँ। काम क्या है? मारो–मारो। ऋषियों ने कहा, तुम मरा, मरा कहो, तीन बार मरा–मरा कहने से दो बार राम बन जाता है। बड़ी अच्छी बात है। जानते हो वो कौन बना बाद में? महर्षि वाल्मीकि।

मारा मारा कहे ते मुनीस पारब्रह्म भयो।
रामा रामा कहे ते न जानि कौन पद है।।

मारा–२ करने का परिणाम हुआ कि वह डाकू एक दिन ऋषि बना और ऐसा ऋषि बना कि भारत के आदि काव्य का स्रष्टा बना, वाल्मीकि रामायण का रचयिता। महर्षि वाल्मीकि को कौन नहीं जानता? तुलसीदास जी ने लिखा है–

महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो।

किरात को मुनि बना दिया भगवान् के उलटा नाम ने।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि जो संस्कार आपके जन्मजात हैं यदि कुसंग में पड़ कर दब भी जायें तब भी कोई समय ऐसा आयेगा कि सत्पुरुषों का संग प्राप्त करते ही तुरन्त प्रकट हो जायेंगे और आपको उठाकर आगे फैंक देंगे, आपको आगे ले जायेंगे। लेकिन यदि मूल में ही कुसंग पड़ा हुआ है, मूल में ही दूषित संस्कार हैं, फिर उसके लिए तुलसीदास जी ने लिखा–

फूले फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम।।

(रामा॰ ७/१६)

ऐसा मूर्ख, मूर्ख माने जिसके मूल में ही संस्कार दूषित हैं, उसको यदि ब्रह्मा और शिव गुरु मिल जायें तब भी उसका उद्धार नहीं हो सकता। वहाँ ग्रहण करने की क्षमता नहीं है, समझने की चाह नहीं है। जैसा कल मैंने बताया था, उसके दीमाग में केवल एक ही बात है कि दुनिया में डेढ़ अक्ल है, एक मेरे पास है और आधी सबमें बँटी हुई है। इसलिए मेरे दोस्तो! जीवन में सुमति

सत्संग से मिलेगी और सुमति के द्वारा ही तुम्हें सुख मिलेगा और शान्ति मिलेगी। सुमति से सुख और शान्ति इस जीवन में देना यह जिस शक्ति का नाम है, उसे कहते हैं शंकर। तुलसीदास जी ने लिखा–

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें।
लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

(रामा॰ १/७०–८)

जिसने भगवान् शिव की अराधना नहीं की, भगवान् शंकर की अराधना नहीं की, उसको इच्छित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती चाहे करोड़ों प्रकार का प्रयत्न कर लें। जिसके ऊपर शिव की कृपा होगी, वही इच्छित फल प्राप्त कर सकता है।

जापर कृपा न करहिं पुरारी।
तऊ न पाव मुनि भगति हमारी।।

जिसके ऊपर पुरारी अथवा भगवान् शंकर कृपा नहीं करते वे भगवान् की भक्ति भी प्राप्त नहीं कर सकते यानी मुक्ति और भुक्ति दोनों भगवान् शंकर की कृपा पर निर्भर करता है। भगवान् शंकर और भगवती उमा, ये दोनों हिन्दू धर्म के आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हैं। आप तो कहेंगे कि ये तो देवता हैं, भगवान् हैं और हम इन्सान हैं, इनका अनुकरण कैसे कर सकते हैं? आप लोग वेद का मूल संदेश सुन लीजिए जहाँ पर–

यद् देवा अकुर्वन तत् कर्वाणि।

यदि देवता बनना है तो जैसे देवता लोग करते हैं तुम्हें वैसे ही करना चाहिए। विद्वान् बनना है तो जैसे विद्वान् करता है, रहता है वैसा करो, धनवान बनना है तो जैसे धनवान करता है, रहता है, वैसा करो, यदि भगवान् बनना है तो जैसे भगवान् रहता है, करता है वैसा करो। जैसा बनना है उसी को अपना आदर्श बनाओ। मनुष्य का आदर्श मनुष्य नहीं भगवान् है। मनुष्य का आदर्श देवता है। अपनी मनुष्यता को दिव्यता में परिवर्तित करने के लिए ही आपको यह मनुष्य शरीर मिला है। इस शरीर का प्रयोजन यही है कि आप मनुष्य से देव बनो। मनुष्य तो आप हैं ही, इससे देव बनना ही आपके जीवन का लक्ष्य है और देव तभी बन सकते हैं जब देव जैसा अनुकरण करें।' 'देव भूत्वा देवं यजेत' वेद का यह मन्त्र है। देवता होकर के तुम देव की उपासना कर सकते हो इसलिए शिव

और पार्वती गृहस्थाश्रम के आदर्श हैं।

शास्त्रों में बताया गया है कि भगवान् शिव और उमा जैसा आदर्श परिवार आपको नहीं मिलेगा। गणेश उनके पुत्र हैं जो कल्याणकारी हैं। षडानन उनके पुत्र हैं जो देवताओं के सेनापति हैं, जो दुष्टों के दमन में सदैव रत रहते हैं और पति–पत्नी शिव सदैव लोक कल्याण के लिए धर्म चर्चा करते हैं। आप उनका जीवन देखिये, जितने हमारे यहाँ शास्त्र हैं, हज़ारों ऐसे योग के, आगम के, ग्रन्थ हैं जहाँ केवल पार्वती ने प्रश्न किया है और भगवान् शंकर ने उत्तर दिया है। रामचरितमानस ऐसा ग्रन्थ आपको तुलसीदास जी ने दिया है जिसमें जानते हो क्या है? पार्वती का प्रश्न है और भगवान् शंकर का उत्तर। ये बड़े–२ धर्मशास्त्र केवल शिव और पार्वती के संवाद हैं। ये आदर्श हैं। स्त्री को चाहिए कि अपने पति को सदैव प्रभु चिन्तन में और सत्कार्य में लगावे और पति को चाहिए कि स्त्री का आदर करते हुए, सम्मान करते हुए उसकी रुचि के अनुसार धर्म पथ पर आगे बढ़े, धर्म का कार्य करे। यही दोनों पति–पत्नी का स्वरूप समाज के सामने शिव और पार्वती प्रकट करते हैं। तभी वे अभिन्न होते हैं, तभी शिवा अर्धांगिनी होती है। केवल गाँठ बाँध देने पर कोई किसी की अर्धांगिनी नहीं बन जाती, याद रखो। जब तक धर्मानुसार आचरण नहीं होगा, तब तक न धर्मपत्नी होगी और न धर्म पति बन सकता है। आजकल प्रत्येक पुरुष चाहता है कि मेरी स्त्री सीता बने लेकिन स्वयं राम बनने के लिए तैयार नहीं है। वह राम नहीं बनेगा, वह रहेगा रावण लेकिन उसकी स्त्री सीता होनी चाहिए। यह कभी संभव हो सकता है कि पुरुष रावण रहे और उसकी स्त्री सीता हो जाये? असंभव। किन्तु पुरुष की यही माँग हैं कि मैं भले राक्षस रहूँ लेकिन मेरी स्त्री भगवती सीता बने।

एक बार एक सज्जन मेरे से कहने लगे कि स्वामी जी रामायण में तुलसीदास जी ने तो नारियों के लिए यह कहा है–

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।

(रामा॰ ६/१६–२)

स्त्रियों का स्वभाव कवियों ने सत्य कहा, उनमें सदैव आठ अवगुण रहते हैं। मैंने उससे पूछा, रामायण पढ़ी है? कहता है, हाँ। मैंने पूछा–यह किसके शब्द हैं मालूम है तुम्हें? कहता है, यह तो

पता नहीं। मैंने कहा, ये रावण ने कहा है मंदोदरी के लिए। यह रावण की विचारधारा है, यह राम की विचारधारा नहीं है। तुलसीदास जी ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि स्त्रियों में केवल आठ अवगुण हैं और उन अवगुणों का यदि आप निरूपण करेंगे तो वे अवगुण नहीं गुण मिलेंगे। मैंने एक पुस्तक लिखी है 'नारी तुलसी की दृष्टि में'। उसमें रामायण में जितनी इस प्रकार की आक्षेपात्मक चौपाईयाँ हैं, उन सब की मैंने समीक्षा की है, उसको समझाया है कि उसका सही अभिप्राय क्या है? आप लोग पढ़ सकते हो, समझ सकते हो लेकिन यहाँ पर एक बात मेरी समझ लो। मैंने उससे कहा कि नारियों के तो आठ अवगुण थे, तुलसीदास जी ने गिना दिया। जब पुरुषों की बारी आई तो उन्होंने हाथ जोड़ लिया। उनसे पूछा गया कि कुछ पुरुषों के भी अवगुण बता दो। उन्होंने कहा, यदि एक दो हों तो मैं गिना दूँ, गिनती वाले हों तो गिना दूँ। तो फिर कितने हैं?

अवगुन सिंधु मंदमति कामी।
बेद बिदूषक परधन स्वामी।।

(रामा॰ ७/४०–७)

कहा, वे तो अवगुण के समुद्र हैं। पुरुष के अवगुण गिने नहीं जाते। समुद्र में कितना जल है, कोई माप सकता है? कोई नहीं माप सकता। इसलिए उन्होंने कहा कि देवियों में गिने–चुने आठ अवगुण हैं, मैंने बता दिया है। उसमें भी आधे से अधिक गुण हैं, अवगुण तो नाममात्र का कोई एक आध हो सकता है लेकिन पुरुषों के अवगुण की गणना नहीं। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि स्त्री हो वा पुरुष, वो केवल इसी अभिमान में न रहे कि मैं पुरुष हूँ वा मैं स्त्री हूँ, इससे हमारा उद्धार हो जायेगा अथवा इससे हमारा कल्याण हो जायेगा। उसको देवताओं का अनुकरण करना चाहिए। वेद में एक मन्त्र है–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनाँसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

(ऋग्वेद १०/१९१–२)

तुम सभी साथ–२ चलो, साथ–२ मिलकर बैठ कर बातचीत करो। साथ–२ चलोगे, एक विचारधारा के होंगे तभी तो बैठ कर आपस में बातचीत करोगे। तुम्हारा रास्ता इधर है दूसरे का रास्ता

उधर है तो बैठ कर बातचीत कौन करेगा? क्या राय है? पुरुष कहता है कि मैंने इस रास्ते जाना है, स्त्री कहती है कि मैंने इस रास्ते जाना है तो बैठ कर बातचीत कौन करेगा? समाज में ही देख लीजिए।

एक सज्जन समाज शास्त्र की बात कर रहे थे। समाज शास्त्र का मैंने गम्भीरता से अध्ययन किया है। समाज शास्त्र जिसे आप लोगों की भाषा में Sociology कहते हैं, उस समाज शास्त्र की बात हो रही थी तो वो कहने लगे कि समाज शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि मनुष्यों के समूह का नाम समाज है। मैंने कहा, मनुष्यों के समूह का नाम समाज नहीं मेरे दोस्त! यह समाज शास्त्र की गलत परिभाषा है। क्यो? मनुष्यों के समूह को समाज नहीं कहते? मनुष्यों के समूह को भीड़ कहते हैं। समाज किसे कहते हैं? समाज शब्द संस्कृत का है जिसका अर्थ होता है–

समं अजन्ति जनाः समाजः।

जहाँ समान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, समान भावना से प्रेरित हो करके, समान गति से लोग चल रहे हों, उसको समाज कहा जाता है। जहाँ मनुष्यों का समूह है उसे भीड़ कहते हैं। भीड़ और समाज में क्या अन्तर है? समाज का एक लक्ष्य होता है भीड़ का कोई लक्ष्य नहीं होता। भीड़ को हमारी भाषा में मेला कहते हैं। मेला जानते हो क्या है? भीड़ में शरीर को धक्का तो लग गया किन्तु बुद्धि को कोई धक्का नहीं लगा। वह बुद्धिमान है या अज्ञानी? उसके मन को, उसके हृदय को कोई धक्का नहीं लगा, शरीर के धक्के खा लिए। जहाँ बहुत से लोग हों वहाँ समाज नहीं बनता, जहाँ एक विचारधारा हो उसे समाज कहते हैं।

एक और उपनिषद् की कथा सुना करके फिर मैं बन्द करूँगा। एक बार भगवान् विष्णु के पास देवता और दैत्य दोनों गये। दोनों ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की। उन्होंने कहा, "प्रभो! आप तो सबके पिता हैं, सबके कारण हैं, आपके यहाँ यह भेदभाव हमें पसन्द नहीं है"। ऋषियों की बात सुनकर भगवान् ने कहा, "क्या भेदभाव भई?" कहा, "आप देवताओं की सहायता करते हो और दैत्यों का नाश करते हो"। भगवान् ने कहा, "नहीं, यह गलत है। यदि दैत्यों का नाश करना होता तो मैं प्रह्लाद को गोद क्यों उठाता? प्रह्लाद तो दैत्य था, उसे मैं हृदय से लगाता कभी? ऐसा

नहीं हो सकता। मैं बलि का कृतज्ञ बनता? ऐसा नहीं हो सकता था। अनेकों ऐसे दैत्य हुए हैं जिनको मैंने हृदय में स्थान दिया है। यह तुम लोगों की भ्रान्ति है कि मैं दैत्यों का विरोध करता हूँ और देवताओं का समर्थन। कहा, "जो आप उन की सहायता करते हैं? कहा, "वो अपने गुण से अपनी सहायता ले लेते हैं।" कहा कोई प्रमाण? भगवान् ने कहा, मैं प्रमाण दूँगा तुम सबको।

भगवान् ने देवता और दैत्य दोनों को बुलाया कि आज बैकुण्ठ में भोजन है दोनों के लिए, दोनों आमन्त्रित हैं। देवता भी आये, दैत्य भी आये, भोजन के लिए बैठा दिया गया। एक पंक्ति देवताओं की लगा दी गई और एक पंक्ति दैत्यों की लगा दी गई। भगवान् ने कहा कि हमारे यहाँ भोजन के लिए एक नियम है कि जो–२ भोजन करने बैठेगा सबके हाथ बाँध दिये जायेंगे। दोनों के हाथ में खमाचियाँ बाँध दी गई। बाँधकर बैठा दिया पंक्ति में और भोज़न परोस दिया गया। भगवान् ने मन्त्र बोल कर आदेश दिया कि भोजन करो और इतना कह कर भगवान् चले गये। लोग बड़े हैरान हुए कि क्या तमाशा कर रहे हैं आज प्रभु? देवता किसे कहते हैं, जो दूसरे को देता है। जो दूसरे को नहीं देता, लेता है वो तो लेवता है, देवता नहीं। देवताओं का यह नियम था कि दूसरे को खिला कर खाना है। दैत्य कभी दूसरे को खिलाना जानते नहीं थे। परिणाम क्या हुआ? देवता एक दूसरे के आगे बैठ गये और एक दूसरे को ग्रास खिलाने लगे, देवता खा पी लिए, एक दूसरे के मुँह धो दिये, बड़े आराम से बैठ गये और दैत्य तो कभी दूसरे को खिलाना जानते ही नहीं थे और उनका भोजन वैसे ही परसा रह गया। वो क्रोध में लाल हो गये कि भगवान् ने बुला कर हमें अपमानित किया है। उन्होंने कहा कि हमारे साथ अन्याय हुआ है, आप सदैव देवताओं का पक्ष लेते हो। भगवान् ने कहा कि आप लोग आइये देख लीजिए, देवताओं के भी वही खमाची बंधी हुई थी, वो भी बैठे हुए थे लेकिन उनकी थाली साफ थी। उनके मुँह धुले हुए थे, वो आनन्द से बैठे मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा, ये कैसे हो गया? कहा, इनसे सीख लो, कैसे हो गया? प्रभु ने देवताओं से पूछा तो उन्होंने बता दिया। दैत्यों ने कहा कि यह तो हमसे नहीं होगा कि हमारा हाथ किसी के मुँह में जाये। भगवान् ने कहा कि यदि यह नहीं हो सकता तो फिर तुम लोग भूखे ही रहोगे।

जो दूसरे को खिलाना नहीं जानता, उसका पेट कभी भर नहीं सकता, यह सिद्धान्त है। चाहे किसी स्तर पर तुम सोच लो। घर में हो, परिवार में हो, समाज में हो, जो दूसरे को खिलाना नहीं जानता, उसका पेट कभी नहीं भर सकता। चाहे तुम्हारे पास लाखों नहीं करोड़ों की सम्पत्ति हो जाये तब भी तुम भूखे मरोगे। दुनिया की कोई शक्ति तुम्हारा पेट भरने में समर्थ नहीं है, यदि तुम दूसरे को खिलाना नहीं जानते तो! रामायण की कथा के अन्त में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है--

रामादिवत् समाचरेत् न रावणादिवत्।

रामायण की इतनी बड़ी कथा आपने लिखी, इसका gist क्या है? महर्षि ने कहा कि मैंने इस कथा में लिखा है कि तुम राम जैसा आचरण करना, रावण जैसा नहीं करना। मनुष्य का आराध्य देवता है, मनुष्य का उपास्य देवता है, मनुष्य के लिए आदर्श देवता है। मनुष्य किसका अनुकरण करे? देवता का। यदि उसे देवता बनना है तो देवता का अनुकरण करे और यदि उसे राक्षस बनना है तो दरवाज़ा खुला है। आप लोग जानते हैं ना? विद्वान् बनाने के लिए विद्यालय की आवश्यकता होती है और मूर्ख बनाने के लिए किसी पाठशाला की आवश्यकता नहीं, अपने आप बन जायेगा वो। यदि आपको कुछ उत्पन्न करना है ज़मीन से तो Cultivation की ज़रूरत है, you should try to cultivate and remove all the undesirable things whatever are there. लेकिन धरती को यदि बंजर बनाना है तो उसमें न खाद की आवश्यकता है, न हल की, न पानी की ज़रूरत है। किसी को मूर्ख बनाना है तो उसे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं, मूर्खता अपने आप आयेगी और यदि विद्वान् बनाना है तो you should try to do something तुम जरूर उसके लिए प्रयत्न करोगे। विद्वान् बनने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा, जन्म से नहीं विद्वान् होंगे। देवता बनने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी। यदि आप को किसी चोटी पर चढ़ना है तो आप उड़कर जायेंगे? नहीं, चढ़कर जायेंगे, मेहनत करनी पड़ेगी और यदि आपको हज़ार फुट नीचे खड्डे में कूदना है तो कितनी देर लगेगी? दो मिनट। छलांग मारिये, नीचे जाइये, बड़ा आराम है नीचे कूदने में और बड़ी मेहनत है ऊपर चढ़ने में लेकिन परिणाम दोनों का क्या है जानते हैं? इसी रूप से जो लोग इस संसार में आराम से जिंदगी बिताना चाहते हैं

वो नीचे खड्डे में कूदने की तैयारी कर रहे हैं। परिणाम उनको बतायेगा कि क्या होगा और जो लोग अपना विकास करना चाहते हैं वो कठिनाई का जीवन यापन करते हुए चढ़ते हैं, वो अपने शिखर पर चढ़ते हैं और वहाँ पर वो दिव्य वायु का आस्वादन करते हैं इसलिए याद रखो मनुष्यमात्र के लिए भगवान् शिव और पार्वती आदर्श हैं।

रामायण में यही बात समझाई गई, शिवपुराण में यह बात समझाई गई कि शिव ऐसा योगी बनो, गृहस्थ रहते हुए भी योगी। शिव गृहस्थ थे, दो लड़के थे उनके लेकिन योगी थे। महासती पार्वती गृहस्थ में रहते हुए योगिनी हैं। उनका सम्बन्ध भोग के लिए नहीं निर्माण के लिए हुआ है, सृजन के लिए हुआ है। इसी रूप से यदि तुम गृहस्थ निर्माण के लिए करते हो, सृजन के लिए करते हो तो तुम महान् हो, देवता बनोगे और यदि तुम्हारा जीवन किसी देवता का अनुकरण नहीं करेगा तो जिन्दगी में दुःख के सिवा कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। अभी तक रोते आये हो, आगे भी रोते रहोगे। थोड़े दिन के लिए यदि तुम्हें शान्ति और सुख का आभास होता है, वो भ्रान्ति के सिवा और कुछ नहीं है।

आज शिवरात्रि का परम पवित्र दिन है। कहीं–२ शिवरात्रि को शिव और पार्वती के विवाह के दिन के रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन उनको पता नहीं है कि आज के दिन शिव पार्वती का विवाह नहीं हुआ था, आज के दिन तो सृष्टि का प्रथम पुरुष पैदा हुआ था। आज के दिन वो प्रभु जो अर्धनारीश्वर था, वह स्त्री और पुरुष दो भागों में विभक्त हुआ था जिससे मनुष्यता का जन्म हुआ था, इसलिए भगवान् विष्णु और भगवान् शिव ने उसकी अराधना की थी। प्रलय की महारात्रि समाप्त हुई थी और प्रभात हुआ था कल्याणमय में, इसलिए इसको कहते हैं शिवरात्रि। आज शिवरात्रि है। यह कब से हिन्दू मनाते आ रहे हैं, इसकी कोई तिथि मिति नहीं है। कितने लाख वर्ष से मनाया जा रहा है, कुछ पता नहीं है। पहले तो यह भ्रान्ति थी लोगों को कि शिव पूजा तो बाद में शुरू हुई, अब तो हज़ारों वर्ष के शिवलिंग मिले हैं और दुनिया के हर देश में। South America में भी शिवलिंग प्राप्त हुए हैं यानी शंकर जी की पूजा का प्रचलन बहुत प्राचीन है। ढ़ाई हज़ार वर्ष पुराना अवशेष मिला है पेरू में और Argentina में शिव की पूजा तथा गणेश की पूजा का तीन हज़ार वर्ष पुराना अवशेष मिला है। रोम के पोप ने अभी कुछ

वर्ष पूर्व एक शिवलिंग भारत के शंकराचार्य जी को भेंट किया और उनके पास वह कब से था, यह उन्हें भी पता नहीं। बहुत प्राचीन काल से रोम में कहीं था जो उन्हें मिला था और मक्का का संग–ए–अस्मद जिसे कहते हैं, वो शिवलिंग के सिवा और कुछ नहीं है और मक्का के मुसलमानों को यह भी भ्रान्ति है कि यदि किसी दिन कोई हिन्दू प्रयत्न करके गंगा जल लाकर इस पर चढ़ा देगा तो उस दिन मुसलमानों का नाश हो जायेगा, इसीलिए भारत से जो मुसलमान जाते हैं, वो भय के मारे किसी मुसलमान को उसके अन्दर नहीं घुसने देते। भारत का मुसलमान अन्दर जाकर शिव का दर्शन नहीं कर सकता, संग–ए–अस्मद को स्पर्श नहीं कर सकता। जो लोग भारत से हज करने गये थे उन्होंने बताया कि वहाँ उनके लिए रस्सी बंधी होती है जिसे चूम करके आते हैं वो। वहाँ पर शिवलिंग है जिसको संग–ए–असमद वा काला पत्थर कहते हैं। मक्का में मुकेश भगवान् का शिवलिंग है। आपने सुना होगा, हिन्दू लड़कों के नाम होते हैं मुकेश। मुकेश क्या है? ये मक्केश हैं और मक्का जो है यह संस्कृत के मक से बना है। मक माने यज्ञ स्थान और मक्केश माने होता है यज्ञेश, यज्ञ का अधिपति वा यज्ञ पुरुष। यज्ञपुरुष कौन है? भगवान् शिव। यह शिव पुराण में आया है। इसलिए आज विश्व के विद्वान् ये स्वीकार करने लगे हैं कि यह मक्का ही नहीं, पूरा Middle East जो है ये शिव मन्दिर से भरा हुआ था। शैव लोग यहाँ निवास करते थे और शिव की उपासना आज से लाखों वर्ष पूर्व सारे विश्व में फैली हुई थी। आजकल के अनुसंधान करने वाले भी उनको हज़ारों वर्ष का पुराना मानते हैं इसलिए मैं आपको बता रहा था कि भगवान् शिव आदिदेव हैं, महादेव हैं और अन्य देव हैं। उपनिषद में कहा है–

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीडयम्।।

(श्वेता॰ ६/७)

वह पतियों का पति, देवताओं का देव महादेव है, ईश्वरों का ईश्वर वो महादेश्वर है, इसलिए हम आप भाग्यशाली हैं कि आज भगवान् के अवतरण दिन पर जिस दिन वह ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ था, जिस दिन घोर अंधकार मिटा था, आज उस दिन पर,

महाशिवरात्रि पर्व पर हम भगवान् शिव का चिन्तन कर रहे हैं, उनकी महिमा का श्रवण एवं गान कर रहे हैं। हम आप भाग्यशाली हैं कि हम शाश्वत सनातन धर्म के उत्तराधिकारी हैं। हमारे संस्कार में यह महान् संस्कृति, महान् धर्म, महान् सिद्धान्त और महान् दर्शन हमें उपलब्ध हुआ है। आप लोगों ने जितनी बातें सुनी हैं, उन पर मनन करेंगे और विचार करेंगे तो मैं समझता हूँ कि जैसे मुझे अपने पर गौरव है वैसे आप लोगों को भी अपने पर गौरव होगा हिन्दू होने का, भारतीय होने का। इन्हीं शब्दों के साथ मैं भगवान् शंकर से प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी करुणा से आप सबमें अपनी दिव्य भक्ति का प्रकाश करें। दिव्य ज्ञान प्रदान करके आप सबको धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपने विचारों को यहीं विश्राम देता हूँ।

आज हमारे यज्ञ का बारहवां और पूर्णाहुति का दिन है। कल से मैं यहाँ नहीं रहूँगा। जैसा कि मैंने आपको बताया था कि हमारा मिशन है "ब्रह्मर्षि मिशन"। इसके इग्लैण्ड, कैनेडा, अमेरिका में सनातन धर्म के प्रचार के लिए केन्द्र हैं और अब तो यहाँ भी उसकी स्थापना हो गई है और भारत में हम "ब्रह्मर्षि मिशन" के माध्यम से कार्य कर रहे हैं। १० वर्ष से मैं विदेशों में कार्य कर रहा हूँ। आप लोगों की श्रद्धा, भावना को मैंने गत १२ दिन से अनुभव किया है। जितनी बातें आपने सुनी हैं उन्हें अपने हृदय में धारण करो तथा अपने अन्य साथियों को समझाओ। अपने सद्ग्रन्थों को पढ़ो तथा सनातन धर्म में आया हुआ अज्ञान, भ्रान्तियाँ वा अन्धविश्वास, ये हिन्दू विचारधारा के विपरीत हैं, इन्हें तुम लोग दूर करो। चण्डीगढ़ के पास मेरा आश्रम है, आप लोग आओ, पढ़ो, अध्ययन करो तथा प्रशिक्षित होकर यहाँ अपने लोगों में प्रचार करो। इससे आपको गौरव होगा, आपके माता–पिता को भी गौरव होगा और इससे आपके धर्म की वृद्धि होगी। आपका धर्म यदि प्रतिष्ठित होगा तो विश्व में आपकी कीर्ति तथा प्रतिष्ठा होगी। इन्हीं शब्दों के साथ पुनः भगवान् सर्वेश्वर से, शंकर से प्रार्थना है कि आप सभी को सन्मार्ग पर ले चलने की शक्ति दें, क्षमता दें, सामर्थ्य दें तथा अपनी अनन्य भक्ति प्रदान करें।

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय

हमारे प्रकाशन

शक्ति तत्त्व बोध
आपकी अपनी बात
गीता ज्ञान विज्ञान योग
श्री हनुमत विनय पच्चीसी
श्री चण्डिकाशतक • श्री श्यामशतक
मानस में धर्मरथ • रामो विग्रहवान् धर्म:
मानस महाकाव्य में नारी • गीता तत्त्व बोध
क्या वर्ण-व्यवस्था अभिशाप है? • राम नाम महिमा
मानस के मोती • जीवन विज्ञान • भारत की आत्मा
योगाकुंर • साधना सूत्र • गीता कर्म विज्ञान • समाधान
तत्त्व चिन्तन • सन्त सन्देश • भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र)
राम और रामायण • क्रियायोग • मानव पतन में हेतु • योग पथ
विश्व को हिन्दुओं का योगदान • मानस में वैदिक सिद्धान्त
सन्त लक्ष्ण • श्री हनुमत हृदय • संस्कृत भाषा का महत्व
ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति • सहज समाधि भली
श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय १ एवं २)
ब्रह्मविद्या विज्ञान-प्रथम • ब्रह्मविद्या विज्ञान—द्वितीय
नारी! तुलसी की दृष्टि में • शिव तत्त्व बोध
विश्व की समस्याओं का हल—अध्यात्मवाद
हिन्दू धर्म सूत्र • गीतोक्त बुद्धियोग
चंडी दी वार (भगवती की स्तुति)
काव्य सुधा • श्री शिव शतक
The Science of *Pranav (om)*
(Commentary on Mandookyopanishad)
Science of Stable Wisdom
How to be a Yogi • Towards Divinity
Yoga for life • The Hindu & its way of life
Essence of the Gita • Basic Principles of Yoga
Lord Hanuman-Our Ideal • Meditation Technique
Science of the Absolute Knowledge
(Commentary on Ishopanishad)

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
पिन-१३४१०२,
फोन: ०१७३३-६५१७०, ६५२७०, ६५२०५

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
२८-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
फोन: ०११-२८२१६६०, २८२१९४३

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-७००१४१

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
(अंग्रेजी मीडियम)
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड, लुधियाना
फोन : ०१६१-६६६४०६, ६०८४०६

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A. Chandigarh
Phone : 0172/775390. 540128

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड, उधमपुर (जे०के०)
फोन :०१९९२-७१०८०

Brahmrishi Mission School
Jarar. Devvan. Piplaage
Bhunter. Kullu (H.P.)
Ph. 01902-65518.66043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road. Opp. New Water Works. ABOHAR-152116
Ph. : 01634-29615. 30615

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड, यमुनानगर-१३५००१ (हरियाणा)
फोन : ०१७३२-७९८४६

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चककिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही, वाराणसी (उ०प्र०)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड, भूपतवाला, हरिद्वार (उ०प्र०)
फोन : ०१३३-४६१०१८

श्री गीता रामायण सेवा संघ
अशोक नगर, मोक्ष मार्ग, उदयपुर (राजस्थान)
फोन : ०२९४-४१४१४०

Brahmrishi Misson
278. Heston Road. Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0181-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street.
East Kitchener. Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246. North Mantua Street. Kent.
Ohio- 44240. U.S.A..
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717. Loosduinseweg.
2571 AM-Denhaag. Nederland.
Ph.: 070-3620961

ॐ

शिव तत्त्व बोध



ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

एकत्वमनुपश्यतः

ब्रह्मर्षि मिशन

दिव्यालोक प्रकाशन

ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर, हरियाणा